प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

पहली बार : दिसम्बर १९५८

मूल्य
ढाई रुपया

मुद्रक
देवीप्रसाद शर्मा,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली

समर्पण

कोई तीन साल की बात है, गाधीजी ने मुझसे
और चलण पर एक ऐसी सरल पुस्तक लिखो जो ए
समझ सके।" उसी आज्ञा का फल यह पुस्तक है।

सारी कहानी दो हिस्सो मे सुनाई गई है। जब।
था तब तो सोचा था कि पूर्व भाग मीमासा का होगा .।र
की हुडी का इतिहास होगा और सारा-का-सारा स्वय मैं ,
मीमासा-भाग समाप्त करते-करते जब इतिहास-भाग के
इकट्ठा करने लगा तब स्मरण आया कि "फेडरेशन आफ
आफ कामर्स ऐण्ड इडस्ट्री" के तत्वावधान मे श्रीपारसनाथ
साल पहले, रुपए की हुण्डी का एक अच्छा इतिहास अंग्रेजी
इसलिए उपयुक्त यही लगा कि मैं श्रीपारसनाथ जी से कह
का इतिहास-भाग भी वही लिख दे और उसमे यथासम्भव
बातो का समावेश कर दे।

इस तरह मीमासा-भाग मैने लिखा और इतिहास-भाग
नाथ जी ने।

जिनकी आज्ञा से यह सब कुछ हुआ वे तो फाटक के भीतर
इसलिए छपने के पहले इसे गाधीजी को दिखा देना असम्भव थ।
बिना दिखाए ही यह छापाखाने मे जा रहा है।

गाधीजी की आज्ञा थी कि इस जटिल विषय को सरल भाषा मे
जाय। हम दोनो ने कोशिश तो यही की है, पर कहा तक सफलता
है यह तो पाठक ही बता सकेगे।

जिनकी आज्ञा से यह पुस्तक लिखी गई उन्ही महापुरुष के चर
यह सर्मापत की जाती है।

मकर सक्रान्ति, स० २०००]   घनश्यामदास बि

(पूर्व भाग) ।

मीमांसा

विषय-सूची

विषय

में प्राण-प्रतिष्ठा के बाद विष्णु-तुल्य ही इसलिए बन जाती है कि भक्ति-भाव से पूजने पर वह विष्णु की प्राप्ति करा देती है। कागज का टुकड़ा वैसे तो कागज ही है, पर नोट निकालनेवाली संस्था उसमें प्राणप्रतिष्ठा स्थापन करके उसे सजीव बना देती है—उसे कीमत का संपूर्ण प्रतिनिधित्व दे देती है।

पर शायद नोट की संपूर्ण उपमा हुण्डी से दी जा सके, क्योंकि नोट एक तरह की बेमीयादी हुण्डी है, जो चाहे जब नोट निकालनेवाली संस्था से सिकराई जा सकती है। इस संबंध में यह बता देना आवश्यक है कि रुपए की मुद्रा भी एक प्रकार का चांदी पर छपा हुआ नोट-मात्र ही है। रुपए के भीतर जो चांदी है उसकी कीमत पूरे एक रुपए की नहीं है। रुपए में पहले कुल १६५ ग्रेन अर्थात् ११/१२ तोला चांदी थी और उस चांदी की कीमत, आज से कुछ समय पहले के भाव से (अर्थात् १०० तोले= ६२॥) कुल ०-९-२॥ पाई की होती थी। हाल में नया रुपया ढाला गया है जिसमें चांदी की मात्रा पहले से बहुत कम है अर्थात १८० ग्रेन में कुल ९० ग्रेन। चांदी का भाव इस समय प्राय १०० तोले= १२०) है। इस दर से भी नए रुपए की चांदी की कीमत प्राय उतनी ही सी होती है। इसके माने यह हुए कि यदि रुपया चलाने-वाली सरकार की अवहेलना करके, रुपए की मुद्रा के भीतर भरी हुई चांदी की कीमत के आधार पर ही, हम रुपए को बेचे, तो रुपए की कीमत हमें कुल प्राय ॥-)॥ मिले। इसलिए रुपए के चांदी के सिक्के और नोट को हम स्वयसिद्ध मुद्रा नहीं कह सकते।

पर वर्तमान समय में शायद ही ऐसा कोई मुल्क है जहां स्वयसिद्ध मुद्रा कायम हो। १९३३ तक अमरीका का डॉलर स्वयसिद्ध मुद्रा थी, पर वहां भी सिक्के के दामों में जब से सरकारी दस्तन्दाजी शुरु हुई और सिक्के के दाम गिराए गए तब से स्वयसिद्ध मुद्रा, अर्थात् ऐसी मुद्रा जिसकी पूरी कीमत मुद्रा के भीतर ही हो, नहीं रही। जहां तक खयाल किया जाता है, आज सभी सुसभ्य देशों में नोटों का, अर्थात् प्रतीक-मुद्रा का ही चलण है।

इस प्रणाली अर्थात् नोटों के चलण के लाभ और हानियां अनेक है। इसका विश्लेषण आगे चल कर करेंगे।

नोट क्यों आया ?

पर स्वयसिद्ध मुद्रा के बाद प्रतीक-मुद्रा अर्थात् नोट का आविर्भाव कैसे हुआ, इसका विचार भी कर ले।

जब ससार में लेन-देन बढा और लाखो का लेखा और करोडो पर कलम चलने लगी तब स्वभावतया जिस मुद्रा को हमने 'कम वजनी और घनमूल्यवाली' माना था वह भी अधिक वजनी मालूम देने लगी। एक गाहक के यहा से हमे आज दस लाख रुपए का भुगतान मगाना है और दूसरे को उतना ही भेजना है, तो यदि सब-का-सब लेन-देन सुवर्ण-मुद्रा मे ही हो, तो करीब २५,००० सुवर्ण मुद्राए—यदि एक सुवर्ण मुद्रा की कीमत ४० रुपए मान ले तो—हमे देनी और लेनी होगी। इन मुद्राओ का वजन भी करीब ८ मन होगा। २५ ००० सुवर्ण-मुद्रा के गिनने के लिए कितना समय चाहिए, और उस वजन को उठाने के लिए कितने आदमी चाहिए! उसमे समय की कितनी बरबादी होगी, इसकी कल्पना आसान है। इसके अलावा यदि सिक्को द्वारा भुगतान हो तो सिक्को की घिसाई और उसके द्वारा होनेवाली धन की छीजत का भी प्रश्न तो है ही। इन सब असुविधाओ और क्षतियो के बचाव के लिए नोट अर्थात् प्रतीक-मुद्रा ने प्रवेश किया। इसमे न गिनने का इतना झझट, न इतना वजन। १०० नोट यदि १०-१० हजार के दे दिए तो दस लाख का भुगतान समाप्त हुआ।

चेक क्यों चला ?

पर आगे चल कर व्यापार और लेन-देन ज्यादा बढा तब तो प्रतीक-मुद्रा भी असह्य मालूम होने लगी और सारा लेन-देन चेक-द्वारा ही होने लगा। चेक एक तरह का आज्ञा-पत्र है, जो आज्ञा देनेवाला अपनी बैक के नाम लिखता है कि इतना रुपया अमुक सज्जन को दिया जाय। और उस आज्ञापत्र पानेवाले को उतनी रकम बैक से मिल जाती है। स्वयसिद्ध मुद्रा का प्रतिनिधित्व प्रतीक-मुद्रा को मिला, और उसके बाद एक कदम आगे

चले तो प्रतीक मुद्रा का स्थान चेक को मिला। सिक्के की प्रगति की यह कथा काफी दिलचस्प है।

हमारे देश मे तो बडे शहरो को छोड कर चेक का चलण कही नही है। चेक तो वही चल सकता है जहा प्रथम तो बैंक हो, दूसरे जहा लेन-देन का काम भी ज्यादा हो और बडी-बडी रकमो का लेन-देन हो। चूकि गावो मे यह स्थिति नही है, इसलिए हमारे देश मे तो, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चेक का चलण बडे शहरो तक ही सीमित है, और नोटो का कस्बो और बडे गावो तक। छोटे गावो मे तो चादी और ताबे के सिक्को का ही चलण है। पर ये चादी-ताबे के सिक्के भी तो, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, एक तरह के धातु पर छपे नोट—प्रतीक-मुद्रा ही है, क्योंकि उनकी स्वयसिद्ध कीमत का उनकी निर्धारित कीमत से कोई मेल नहीं खाता।

नोट से लाभ

प्रतीक मुद्रा-प्रणाली के लाभ तो स्पष्ट है। वजन कम होता है। लेन-देन मे, गिनती करने मे, समय की बचत होती है। मुद्रा हाथो मे से रोज-रोज निकले, उससे धातु की जो छीजत होती है उसकी बचत होती है। पर एक और भी लाभ है। मान लीजिए, सारे देश के लेन-देन के कारोबार के लिए १० करोड सुवर्ण-मुद्राओ की जरूरत है। यदि प्रति मुद्रा की ४० रुपए कीमत मान ले, तो इस हिसाब मे ४०० करोड रुपए के सोने की, देश के लेन-देन की सहूलियत के लिए जरूरत होगी। पर यदि नोटो का चलण है तो यही काम बहुत थोडे सोने से चल जाता है। आखिर नोट का काम तो इतना ही है कि वह उतनी निर्धारित मुद्राओ का स्वामित्व नोट के स्वामी को सौपता है।

यह सही है कि आज ऐसा कोई मुल्क नही है जहा नोट के बदले बैंक सुवर्ण-मुद्रा दे दे। पर इससे नित्य-प्रति के व्यवहार मे कोई बाधा नही पहुँची है। यदि सुवर्ण-मुद्रा भी हमे नोटो के बदले में मिलती तो उस मुद्रा का उपयोग भी हम जिन्स, सम्पत्ति या मनुष्य-श्रम

खरीदने में ही तो करते। और जब तक किसी मुल्क की साख सुरक्षित है तब तक सुवर्ण-मुद्रा प्रचलित न हो तो भी नोट क्रय-विक्रय में वही काम देता है, जो काम सुवर्ण-मुद्रा देती। इसलिए सुवर्ण-मुद्रा का अभाव किसीको नहीं खटकता। साख सुरक्षित है या नहीं, इसका पता भी तो, हमारे नोट की कीमत विदेशों में क्या है, इसीसे लगता है। इस प्रश्न का विवेचन तो आगे चल कर करेंगे, यहां तो मुद्रा के बजाय नोट-चलण में क्या-क्या किफायत है उसका दिग्दर्शन कराना है।

बताना तो यह था कि नोट का क्षेत्र इतना ही है, कि वह उतनी निर्धारित मुद्राओं का स्वामित्व नोट के स्वामी को सौंपता है। मसलन, आपके पास दस सुवर्ण-मुद्रा का नोट है। (यह उदाहरण-मात्र है क्योंकि, जैसा कि ऊपर बताया गया है, आज किसी भी मुल्क में स्वयसिद्ध मुद्रा का चलण नहीं है) तो आप चाहे जब नोट-प्रसार करनेवाली बैंक या संस्था के पास जाकर अपना नोट देकर उसके बदले में १० सुवर्ण-मुद्राएं माग सकते हैं, जिसके कि आप अधिकारी हैं, और वह बैंक आपको १० सुवर्ण-मुद्राएं दे देगी, जिसके लिए कि वह बाध्य है।

पर ऐसे किसी भी साधारण समय की कल्पना नहीं की जा सकती जबकि तमाम नोटवाले अपने नोट बैंक को पेश करके बैंक से नोटों के बदले में मुद्रा मांगेंगे। यदि देश के कारोबार के लिए १० करोड सुवर्ण-मुद्राओं के चलण की जरूरत है, और लोग अपनी सुविधा के कारण मुद्राओं में नहीं, पर प्रतीक मुद्रा अर्थात् नोटों से अपना काम चलाना चाहते हैं, तो यह स्पष्ट है कि जब तक नोट चलानेवाली बैंक की साख साबित है तब तक कोई समझदार व्यक्ति नोट को भुना कर मुद्रा मांगने के झझट में न पड़ेगा। इसलिए बैंक सावधानी के लिए १० करोड सुवर्ण-मुद्राओं के प्रतीकों के पीछे केवल ३ करोड सुवर्ण-मुद्रा अपने कोष में रखे तो भी पर्याप्त है।

इसके माने यह हुए कि यदि हम अपना कारोबार केवल सुवर्ण-मुद्राओं से ही चलाना चाहते हैं तब जहां १० करोड सुवर्ण मुद्राओं के लिए ४०० करोड रुपए के सोने की जरूरत होगी वहां, यदि हम नोट-

प्रथा को अपना ले तो, कुल १२० करोड रुपए के सोने मे ही काम चल जायगा—अर्थात बैंक १२० करोड रुपए के सोने के आधार पर आसानी से ४०० करोड रुपए की कीमत की प्रतीक-मुद्राओ का प्रसार कर देगी। बैंक को सोने मे रोकना पडा कुल १२० करोड रुपया। नोट-प्रसार किए कुल ४०० करोड रुपए की कीमत के। नोट-प्रसारिणी बैंक का तलपट ऐसी हालत मे इस प्रकार होगा—

४०० करोड—नोट चलण मे डाले, उसकी कीमत आई	१२० करोड—सोना खरीदा २८० करोड—ब्याज पर रोका
४०० करोड	४०० करोड

इस तरह २८० करोड रुपए का नाणा बेव्याज जो बैंक को मिल गया उसे लोगो को उधार देकर बैंक मुनाफा बना खाएगी। देश के लिए यह किफायतसारी अवश्य ही ग्राह्य चीज है। इस तरह नोट ने अपने गुणो से समाज को मुग्ध करके अपना सिक्का जमा लिया।

नोट से हानि

पर "जड चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार।" नोटो मे गुण हैं तो अवगुण भी है। एक अवगुण तो प्रत्यक्ष है। चूकि स्वयसिद्ध मुद्रा की कीमत तो इसके गर्भ मे ही है और प्रतीक-मुद्रा (नोट) की कीमत तो, जब तक प्रतीक-मुद्रा का प्रसार करनेवाली बैंक सलामत है, तभी तक कायम है, इसलिए राज-दुराजी के जमाने में नोटो मे लोग सहज ही विश्वास खो बैठते है और स्वयसिद्ध सिक्को का सग्रह करके उन्हे दबाने लगते है।

इस महायुद्ध मे पोलैण्ड, फ्रास वगैरह मुल्को मे जहा-जहा राज गिरने की सम्भावना हुई वहा लोग नोटो मे विश्वास खो बैठे। पर चूकि स्वयसिद्ध मुद्रा का इन मुल्को मे चलण नही था इसलिए लोग जवाहरात या सोना–ऐसी वस्तुओ का सग्रह करने लगे, या ऐसी वस्तुओ को लेकर देश के बाहर भागने लगे। यहा भी, जब फ्रास की हार हुई, उस जमाने मे लोगो ने

रुपयों का बुरी तरह सग्रह करना शुरू किया। यों तो जैसा कि पहले बताया जा चुका है, रुपए का सिक्का भी एक तरह का नोट ही था, क्योंकि इसकी चादी की कीमत तो कुल ९ आने ३॥ पाई थी। पर रुपए के सिक्के के पक्ष में कुछ बाते थी। आखिर इसकी स्वयसिद्ध कीमत कागज के नोट की कीमत से तो ज्यादा ही थी। इसलिए लोगों ने घबड़ाहट में इनका सग्रह करना शुरू कर दिया।

यह सग्रह करने का मर्ज यहा तक बढा कि छोटी रकमो के लेन-देन के लिए रुपए का सिक्का कुछ दिनो के लिए दुर्लभ-सा होने लगा था। सिक्कों की कोई कमी तो न थी, पर जब लोग भय से पागल-से हो जाते है उस समय बुद्धि से काम नही लिया जाता। इसलिए भयभीत लोगो ने चादी के रुपयो की धरोहर इकट्ठी करके सिक्के का अकाल-सा पैदा कर दिया और अन्त मे इस कठिनाई को दूर करने के लिए सरकार ने एक रुपए का नोट भी छापा और सिक्के दबा बैठने के विरुद्ध कानून भी बनाया। इस बीच में लोगो म भी विश्वास का पुन सचार होने लगा। पर भय के या अविश्वास के जमाने मे स्वयसिद्ध मुद्रा की या तो चादी के रुपए-जैसी अर्धस्वयसिद्ध मुद्रा की साख तो कैसे सुरक्षित रहती है और प्रतीक-मुद्रा की साख कैसे नेस्तनाबूद होने लगती है, इसका आभास इस और पिछले महायुद्ध के इतिहास से मिल सकता है।

इस दृष्टि से हम कह सकते है कि स्वयसिद्ध मुद्रा के मुकाबिले मे प्रतीक-मुद्रा का सबसे बडा दोष तो यह है कि प्रतीक-मुद्रा की कीमत के स्थायित्व के बारे मे या सुरक्षितता के बारे मे घबडाहट के जमाने मे पूरा यकीन तो कभी हो ही नही सकता। पर क्या इस सुरक्षितता के लिए इतनी बडी कीमत चुकानी वाजिब होगी, कि स्वयसिद्ध मुद्रा का ही चलण रख कर हम सुवर्ण-मुद्राओ के भार का वहन करे, उनके गिनने-सम्हालने के झझट में समय खोवे और उनकी छीजत—जो मुल्क के धन की छीजत होगी—उसे बरदाश्त करे ? और इसके अलावा, जो काम १२० करोड रुपए के सोने से चल सकता है उसके लिए, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ४०० करोड रुपए की रकम को सोने मे फसा के रखे ?

प्रथा को अपना ले तो, कुल १२० करोड रुपए के सोने से ही काम चल जायगा—अर्थात बैंक १२० करोड रुपए के सोने के आधार पर आसानी से ४०० करोड रुपए की कीमत की प्रतीक-मुद्राओ का प्रसार कर देगी। बैंक को सोने मे रोकना पडा कुल १२० करोड रुपया। नोट-प्रसार किए कुल ४०० करोड रुपए की कीमत के। नोट-प्रसारिणी बैंक का तलपट ऐसी हालत मे इस प्रकार होगा—

४०० करोड—नोट चलण मे डाले, उसकी कीमत आई	१२० करोड—सोना खरीदा
	२८० करोड—व्याज पर रोका
४०० करोड	४०० करोड

इस तरह २८० करोड रुपए का नाणा बेव्याज जो बैंक को मिल गया उसे लोगो को उधार देकर बैंक मुनाफा बना खाएगी। देश के लिए यह किफायतसारी अवश्य ही ग्राह्य चीज है। इस तरह नोट ने अपने गुणो से समाज को मुग्ध करके अपना सिक्का जमा लिया।

नोट से हानि

पर "जड चेतन गुण दोषमय विश्व कीन्ह करतार।" नोटो मे गुण हैं तो अवगुण भी है। एक अवगुण तो प्रत्यक्ष है। चूकि स्वयसिद्ध मुद्रा की कीमत तो इसके गर्भ मे ही है और प्रतीक-मुद्रा (नोट) की कीमत तो, जब तक प्रतीक-मुद्रा का प्रसार करनेवाली बैंक सलामत है, तभी तक कायम है, इसलिए राज-दुराजी के जमाने मे नोटो मे लोग सहज ही विश्वास खो बैठते है और स्वयसिद्ध सिक्को का सग्रह करके उन्हे दबाने लगते है।

इस महायुद्ध मे पोलैण्ड, फ्रास वगैरह मुल्को मे जहा-जहा राज गिरने की सम्भावना हुई वहा लोग नोटो मे विश्वास खो बैठे। पर चूकि स्वय-सिद्ध मुद्रा का इन मुल्को मे चलण नही था इसलिए लोग जवाहरात या सोना—ऐसी वस्तुओ का सग्रह करने लगे, या ऐसी वस्तुओ को लेकर देश के बाहर भागने लगे। यहा भी, जब फ्रास की हार हुई, उस जमाने मे लोगो ने

रुपयों का बुरी तरह संग्रह करना शुरू किया। यों तो जैसा कि पहले बताया जा चुका है, रुपए का सिक्का भी एक तरह का नोट ही था, क्योंकि इसकी चांदी की कीमत तो कुल ९ आने ३॥ पाई थी। पर रुपए के सिक्के के पक्ष में कुछ बातें थी। आखिर इसकी स्वयसिद्ध कीमत कागज के नोट की कीमत से तो ज्यादा ही थी। इसलिए लोगो ने घबडाहट मे इसका संग्रह करना शुरू कर दिया।

यह संग्रह करने का मर्ज यहा तक बढा कि छोटी रकमो के लेन-देन के लिए रुपए का सिक्का कुछ दिनो के लिए दुर्लभ-सा होने लगा था। सिक्को की कोई कमी तो न थी, पर जब लोग भय से पागल-से हो जाते है उस समय बुद्धि से काम नही लिया जाता। इसलिए भयभीत लोगो ने चादी के रुपयो की धरोहर इकट्ठी करके सिक्के का अकाल-सा पैदा कर दिया और अन्त मे इस कठिनाई को दूर करने के लिए सरकार ने एक रुपए का नोट भी छापा और सिक्के दबा बैठने के विरुद्ध कानून भी बनाया। इस बीच मे लोगो मे भी विश्वास का पुन सचार होने लगा। पर भय के या अविश्वास के जमाने मे स्वयसिद्ध मुद्रा की या तो चादी के रुपए-जैसी अर्धस्वयसिद्ध मुद्रा की साख तो कैसे सुरक्षित रहती है और प्रतीक-मुद्रा की साख कैसे नेस्तनाबूद होने लगती है, इसका आभास इस और पिछले महायुद्ध के इतिहास से मिल सकता है।

इस दृष्टि से हम कह सकते है कि स्वयसिद्ध मुद्रा के मुकाबिले मे प्रतीक-मुद्रा का सबसे बडा दोष तो यह है कि प्रतीक-मुद्रा की कीमत के स्थायित्व के बारे मे या सुरक्षितता के बारे मे घबडाहट के जमाने मे पूरा यकीन तो कभी हो ही नही सकता। पर क्या इस सुरक्षितता के लिए इतनी बडी कीमत चुकानी वाजिब होगी, कि स्वयसिद्ध मुद्रा का ही चलण रख कर हम सुवर्ण-मुद्राओ के भार का वहन करे, उनके गिनने-सम्हालने के झझट मे समय खोवे और उनकी छीजत—जो मुल्क के धन की छीजत होगी—उसे बरदाश्त करे? और इसके अलावा, जो काम १२० करोड रुपए के सोने से चल सकता है उसके लिए, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ४०० करोड रुपए की रकम को सोने मे फसा के रखे?

राज-दुराजी में अरक्षितता

आज हमारे देश मे नोटो का कुल चलण प्राय ८०० करोड रुपए की कीमत का होगा। पर कुछ समय पहले यह चलण २५० करोड रुपए का था। इसके माने यह है कि यदि रिजर्व बैंक, जो इन नोटो का प्रसार करनेवाली बैंक है, उसकी साख को ठेस पहुँचता तो इन २५० करोड के नोटो की कीमत को खतरा था।

पर ऐसी स्थिति की हम कल्पना करे तब तो यह जानना चाहिए कि इससे कही ज्यादा खतरा तो सरकारी प्रोमिसरी नोटो की रकम को हो सकता था और इन सरकारी प्रोमिसरी नोटो मे तो प्रजा की कुल रकम लगभग १००० करोड के लगी हुई थी—अर्थात् नोटो की २५० करोड की कीमत से चौगुनी रकम तो प्रोमिसरी नोटो में लगी हुई थी। इससे पता लगेगा कि नोटो की सुरक्षितता की जब हम बात करते है तब हम भूल जाते है कि किसी भी राष्ट्र के पतन के कारण होनेवाली क्षति से बचने का तो कोई रामबाण उपाय है ही नही, और उस होनेवाली सारी क्षति मे, नोटो की कीमत नेस्तनाबूद हो जाने के कारण होनेवाली क्षति का स्थान अपेक्षाकृत छोटा है।

नोट का स्वामी यह सहज ही कह सकता है कि सारी क्षति क्या होगी इससे मुझे क्या मतलब—मुझे तो अपने नोट की कीमत के नाश मे होने वाली क्षति का ही दर्द है। पर इसका उत्तर तो यह है कि देश के सिक्के की नीति व्यक्ति की सुविधा के लिए नही, पर समष्टि की सुविधा के लिए बनाई जाती है, और इस दृष्टि से स्वयसिद्ध मुद्रा से प्रत्येक मुद्रा की सुरक्षितता कम होने पर भी देश के लिए प्रतीक-मुद्राशैली का त्याग और केवल स्वयसिद्ध मुद्रा की नीति का ग्रहण बेशी खर्चीला होगा।

३

प्रतीक-मुद्राशैली म एक दोष और है---यदि उसे दोष कहा जाय तो---और उस दोष का वर्णन करने से पहले कुछ तत्सम्बन्धी बातो का विवेचन करना आवश्यक जान पडता है।

हमने बताया है कि नोट-प्रसार करनेवाली संस्था यदि ४०० करोड़ रुपयों के पीछे १२० करोड रुपए का भी सोना रखे तो पर्याप्त होगा, क्योंकि जब तक बैंक की साख अक्षत है तब तक कौन नोट को भुना कर बदले मे सुवर्ण-मुद्रा मागेगा ? इसलिए नोट की धाक अशत तो जो नोटो के पीछे सोना पडा है उस पर, बाकी नोट-प्रसारक बैंक की दक्षता, सावधानी और नेकनीयती पर है।

मान लीजिए कि १२० करोड के सोने के मद्दे ४०० करोड रुपए के नोटो के बजाय बैंक ने किसी भी कारणवश, अपनी मर्जी से या बाध्य होकर, ८००करोड रुपए के नोट चलणमे डाल दिए, तो जो सोने की मिकदार पहले प्रतिशत नोटो के पीछे ३० की थी वह सिर्फ १५ की रह गई। ऐसी हालत मे सहज ही नोटो की साख मे लोगों को कुछ शक होने लगेगा। और, मान लीजिए कि यदि नोट-प्रसारक बैंक ने ८०० के बजाय उसी १२० करोड रुपए की कीमत के सोने की पूजी के बल पर १६०० करोड के नोट चलण मे डाल दिए, तब तो फिर नोटो की साख जोरो से डूबने लगेगी। और यदि १६०० करोड के बजाय ३२०० करोड के नोट चलण मे डाल दिए तब तो लोगो मे घबराहट फैल जायगी और लोग नोटो से दूर भागने लगेगे, क्योंकि ३२०० करोड के पीछे यदि कुल १२० करोड का ही सोना हो तब तो प्रति सौ नोट के पीछे केवल ३॥। रुपए का ही सोना रहा,जो बैंक की देनदारी को देखते हुए अत्यन्त अल्प कहा जायगा।

यह अनहोना-सा उदाहरण जानबूझ कर ही दिया है। कोई समझदार बैंक जानबूझ कर सुख-शांति के जमाने मे ऐसी बेहूदी हद तक नही जाती।

पर असाधारण समय मे ऐसी घटनाए कई मुल्को मे हुई भी है। भारतवर्ष की ही बात लीजिए। इस समय जहा नोट प्राय ८०० करोड रुपए के है वहा सोना कुल ४८ करोड रुपए का है।

नोटो का प्रसार करना आसान काम है। उसके लिए जरूरत है बस कुछ कागज की। टेढे समय मे या तो सरकार को कोई कर्ज देनेवाला नही मिलता, या मिलता भी है तो बहुत कडे सूद पर। इसलिए कई बार ऐसा हुआ है कि सकटापन्न सरकार ने अपनी आवश्यकताओ की पूर्त्ति न तो टैक्स लगा कर की, न कर्ज लेकर—उसने बस नोट छापनेवाली मशीनो को दिन-रात चला कर अपना मतलब पूरा किया। प्राय ऐसा भी हुआ है कि जिस सरकार ने यह तरीका अख्तियार किया उससे औचित्य की सीमा का उल्लघन हुए बिना न रह सका—और वह इतनी दूर आगे बढ गई कि उसका दिवाला निकल के ही रहा।

फ्रास की इतिहासप्रसिद्ध क्राति के समय वहा कुछ नोट जारी किए गए थे, जिन्हे assignat कहते थे। महन्त-मठाधीशो की जो जायदाद जब्त कर ली गई थी उसीकी पुश्ती या आधार पर ये नोट जारी किए गए थे। मगर उस जायदाद की कीमत से कही अधिक के नोट निकाल दिए गए, और इसका नतीजा यह हुआ कि इनकी कीमत बहुत नीचे गिर गई। कुछ काल बाद सरकार को मजबूर होकर इन नोटो को चलण से हटा लेना पडा।

२४ साल पहले रूस मे, कम्यूनिस्ट क्राति के समय भी ऐसी ही बात हुई। वहा चलण मे जो सिक्का था उसका नाम रूबल (Rouble) था। क्राति से पहले एक रूबल की कीमत प्राय २ शिलिग अर्थात् १।=) थी। मगर बाद इसकी कीमत यहा तक गिर गई, कि कुछ समय तक रूस मे आध सेर रोटी के २५० रूबल और आध सेर चीनी के ९०० रूबल लगते थे।

फुलावट और गिरावट

इस तरह थोडे सोने की पूजी पर बेहद परिमाण मे नोट निकालने की नीति को अग्रेजी मे Inflationary policy कहते है। हम इस अग्रेजी

परिभाषा के लिए "चलण की फुलावटी नीति"–इस मुहाविरे का प्रयोग कर सकते है। इसी तरह किसी कारणवश नोट-प्रसारक वैक यह भी कर सकती है कि १२० करोड की कीमत के सोने के मद्दे ४०० करोड रुपए की कीमत के नोट चलण मे न रख कर केवल २०० करोड रुपए के नोट ही चलण मे रखे, या तो और भी घटा कर १२० करोड के ही रखे। इस नीति को अंग्रेजी मे Deflationary policy कहते हैं। हिन्दी मे हम इसे "चलण की गिरावटी नीति" कह सकते हैं।

इस फुलावटी नीति या गिरावटी नीति का क्यो प्रयोग किया जाता है, इसका विवेचन भी आवश्यक है। पर यह विवेचन करने के पहले, नोट कैसे अधिक परिमाण मे चलण में डाल करके फुलावट पैदा की जाती है और कैसे नोट कम करके गिरावट की जाती है, इस प्रयोग को भी हम समझ लें।

कोई नोट-प्रसारक वैक विना सरकार की मर्जी के तो फुलावट या गिरावट ज्यादा हद तक कर ही नही सकती। इसलिए जब सरकारी मर्जी से यह काम होता है तो सरकारी सहयोग भी अपने-आप मिल जाता है। ऐसी हालत मे यदि फुलावटी नीति का प्रयोग करना होता है तो एक तरीका तो यह है कि सरकार जितना खर्च करती है उससे कर कम उगाहती है—याने, मान लीजिए कि सरकार का खर्चा सालाना १००० करोड है, तो कर लगा कर सरकार ने उगाहा केवल ७५० करोड, और बाकी जो २५० करोड का घाटा है उसको वैसा-का-वैसा रखा, अर्थात् कर वसूल करके उसकी पूर्ति नही की। नतीजा यह होता है कि कोष मे आया ७५० करोड, और कोष से निकला १००० करोड। यह २५० करोड जो कोष से वेशी निकला वह सरकार ने कहा से निकाला? बस, सरकार ने सीधा-सा काम किया। उसने २५० करोड के नोट छापकर, या नो वैक से नोट छपवाकर उसे उधार लेकर लोगो को चुका दिया, और इस तरह २५० करोड चलण मे ज्यादा प्रवेश कर गया।

यह तरीका तो तभी काम मे लाया जाता है जब कि सरकार आर्थिक कठिनाइयो मे फसी हुई होती है, या तो दिवालिया बनने की

विस्तार और संकोच

स्वभाव से और उचित परिमाण से, आवश्यकतानुसार जो नोटो के चलण मे कमी या वेशी हो उसे स्वाभाविक सकोच या विस्तार कहना चाहिए।

मान लीजिए, देश मे धन वढा है, चीजो के दाम तेज है। विदेश के लोग हमारा माल धडाधड ले रहे है। हमने अपना माल वेच कर इस साल विदेशो से ५० करोड का सोना खरीदा। उसीके मद्दे १०० करोड के नोट चलण मे रखे, हाला कि नियम के हिसाव से १५० करोड के भी नए नोट निकाल सकते थे। नए नोट, विना सोने का कोप वढाए नही निकाले। इसके अलावा पहले जो सोना १२० करोड का और नोट ४०० करोड के थे, अव वह सोना १७० करोड का और नोट ५०० करोड के हो गए। इस तरह कुल सोना, जो पहले नोटो के अनुपात से ३० प्रतिशत था, वह अव ३४ प्रतिशत हो गया। दूसरे, यह सारा काम जरूरत के मुताविक हुआ। देश की सम्पत्ति वढ रही थी, दाम वढ रहे थे, चलण मे ज्यादा नोटो की जरूरत भी थी। इसलिए जो हुआ, ठीक हुआ। यह स्वाभाविक विस्तार हुआ।

इसी तरह मान लीजिए, देश मे भयकर अकाल पडा, भूमिकम्प हुआ या प्लेग-महामारी हुई। इसके कारण देश की सम्पत्ति इस साल कम हो गई। वाहर से माल मगाया ज्यादा, और भेजा कम। इसलिए हमे २५ करोड सोना कुल वाहर भेजना पडा। वैक ने इस २५ करोड सोने के मद्दे ५० करोड के नोट चलण म से निकाल लिए। इस हिसाव से अव नोटो का चलण ४०० करोड से घट कर ३५० करोड रह गया, और सोना रह गया १२० करोड से घट कर कुल ९५ करोड, जो नोटो की कुल कीमत का २७ प्रतिशत हुआ। पर चूंकि यह सब सावधानी से, आवश्यकतानुसार हुआ, और सोने का परिमाण भी ३० से गिर कर २७ प्रतिशत रह गया, इसलिए इसे स्वाभाविक सकोच कह सकते है।

अर्थशास्त्री आम तौर से फुलावट या गिरावट, इन दो ही परिभाषाओं का प्रयोग करते हैं। पर मेरा ख्याल है कि यह यथार्थ नहीं है। संकोच और गिरावट में कुछ भेद तो है ही, और इसी तरह विस्तार और फुलावट में भी भेद है। यह भेद अवश्य सूक्ष्म है, पर इस भेद को मान लेना ही शायद ज्यादा शास्त्रीय है, इसलिए मैंने यह भेद मान कर फुलावट–विस्तार, और गिरावट—संकोच, ऐसी अलग-अलग परिभाषाएँ रखी हैं। यह भेद इसलिए मान लिया है कि जहां फुलावट और गिरावट कृत्रिम उपायों से की जाती है, और विशेष हेतु को लेकर की जाती है, संकोच और विस्तार आवश्यकतानुसार स्वभावतया ही होते हैं। तो भी यह सही है कि यह भेद सूक्ष्म-सा ही है।

चूंकि फुलावट या गिरावट कृत्रिम उपायो से और विशेष हेतु के लिए की जाती है, इसलिए, यह क्यो की जाती है और इसका क्या फल होता है, यह समझना भी जरूरी है। पर इसी सिलसिले मे एक और मत का उल्लेख आवश्यक है।

जिन्सो के दाम मे घटा-बढी के, मोटे तौर पर, दो कारण हो सकते है—एक तो उन जिन्सो से ही सम्बन्ध रखनेवाला, दूसरा उस द्रव्य से सम्बन्ध रखनेवाला जिसके द्वारा दाम सूचित किया जाता है, जैसे नोट या धातु का सिक्का। एक चीज की कीमत कल दो पैसे थी, आज तीन पैसे है। अर्थशास्त्री इसका कारण दो जगह ढूढेगा। हो सकता है कि पैसे के परिमाण मे कोई अन्तर नही पडा है, पर वह चीज घट चली है—कल जितनी उपलभ्य थी आज उतनी नही है—और इस घटी के अनुपात से उसका दाम बढ गया है। और हो सकता है कि चीज के परिमाण मे कोई अन्तर नही पडा है, पर पैसे का परिमाण बढ गया है, और इस वृद्धि के अनुपात से उस चीज का दाम बढ चला है।

यहा जो सवाल पैदा होता है वह यो रखा जा सकता है, कि दाम बढा वह चीज महगी होने से या द्रव्य सस्ता होने से ? अगर हम Value के अर्थ मे मूल्य और Price के अर्थ मे दाम शब्द व्यवहृत करे तो इसे यो रख सकते है कि उस वस्तु का अपना मूल्य चढ जाने के या द्रव्य का अपना मूल्य गिर जाने के कारण दाम बढा ?

वस्तुओ के मूल्य मे घटा-बढी के कारण ढूढ निकालना कठिन प्रयास है। एक फसल मारी गई अनावृष्टि से, दूसरी बाढ या जल-बाहुल्य से, तीसरी टिड्डियो के आक्रमण से। तीनो चीजे कम हो गई, उनकी माग ज्यो-की-त्यो बनी रही, फलत उनका मूल्य बढ गया—अर्थात् उनके दामो मे तेजी आ गई। सम्भव नही कि कोई भी ऐसा मत प्रतिपादित किया जा सके

जो अनावृष्टि, बाढ़ और टिड्डियो का आक्रमण-जैसे विभिन्न, असम्बद्ध कारणो को अपने घेरे मे लाकर तज्जनित जटिलता को किसी भी हद तक सरलता मे परिणत कर सके। वास्तव मे जहा तीन कारण दिए गए है वहा तीन सौ तो क्या, तीन हजार भी हो सकते है। किसी वस्तु के मूल्य मे इस कारण भी वृद्धि हो सकती है कि लन्दन के "टाइम्स" अखबार ने एक खास तरह की राय जाहिर कर दी—या राष्ट्रपति रुजवेल्ट ने किसी पत्रकार के तत्सम्बन्धी प्रश्न को मजाक मे उडा दिया—या किसी करोड-पति ने स्वप्न देखा कि वह उस वस्तु के ढेर पर बैठा हुआ आसमान की ओर उठता जा रहा है। जहा दाम मे घटा-बढी किसी वस्तु के मूल्य मे घटा-बढी का प्रतिबिम्ब है वहा इस घटा-बढी पर कोई सूत्रात्मक मत या नियम प्रकाश नही डाल सकता—जिज्ञासु को प्रत्येक कारण का अलग अन्वेषण और उसकी अलग व्याख्या करनी पडेगी।

द्रव्य-परिमाण-मत

द्रव्य अर्थात् रुपए-पैसे के मूल्य मे घटा-बढी के कारण न तो इतने अधिक है, न इतने विभिन्न। इसलिए इनके सम्बन्ध मे Ricardo नामक अंग्रेज अर्थशास्त्री के समय से एक ऐसा उपयोगी मत चला आता है, और उसका नाम है "द्रव्य-परिमाण-मत" (Quantity Theory of Money)। जितने भी दाम होगे, द्रव्य के ही रूप मे होगे। इसलिए द्रव्य के रूप में वृद्धि या ह्रास के जो भी कारण होगे वे दामो के प्रसग मे सर्वत्र लागू होगे।

इस मत का निचोड यह है —

द्रव्य के मूल्य मे घटा-बढी का दामो पर उल्टा असर होता है और वे उसी अनुपात से तेज या मन्दे हो जाते है। मान लीजिए कि किसी वस्तु का दाम होता है ४ ग्रेन सोना। अगर सोने का मूल्य घट कर आधा हो जाय, तो उस चीज का दाम ४ ग्रेन की जगह ८ ग्रेन सोना हो जायगा।

अब यह देखना है कि द्रव्य के मूल्य मे घटा-बढी होती क्यो है। इसके चार कारण हो सकते है —

(१) द्रव्य के परिमाण का घटना-बढना। सोना या चादी खानो से

ज्यादा निकली तो उसका मूल्य कम हो गया—कम निकली तो उसका मूल्य बढ गया। अगर सिक्के सोना-चादी के है तो उनके मूल्य मे भी ऐसी ही घटा-बढी होगी और चीजो के दाम मे —उसी हिसाब से— फर्क पडेगा। अगर चलण मे सोना-चादी के सिक्को की जगह कागजी नोट है और इनका परिमाण बढता-घटता है, तो इनके मूल्य मे भी उसी प्रकार अन्तर पडेगा और चीजो के दाम उसी प्रकार तेज या मन्दे होगे।

(२) हो सकता है कि द्रव्य का परिमाण ज्यो-का-त्यो बना हुआ है, पर उसके चलण या रफ्तार मे कुछ खास कारण या कारणो से तेजी आ गई। इस तेजी का असर वही होगा जो उस द्रव्य का परिमाण बढने का होता। कारण यह कि रफ्तार मे तेजी के माने है उतने ही द्रव्य का ज्यादा चक्कर लगाना, अर्थात् द्रव्य के परिमाण का बढ-सा जाना। अगर चलण या रफ्तार धीमी हो गई तो इसका असर उल्टा पडेगा, क्योकि इसका अर्थ होगा द्रव्य के परिमाण का घट-सा जाना। जब कोई रुपए को अपने पास रखना नही चाहता तब दाम चढते है, जब लोग रुपए को दबाकर बैठ जाते है तब दाम गिरते है।

(३) द्रव्य की माग, अवस्था-विशेष मे, इस कारण कम हो जाती है कि लोग भुगतान के लिए चेक या हुण्डी-पुरजे का अधिकाधिक व्यवहार करने लगते है। ऐसी अवस्था मे दाम गिरते नही, ऊपर चढते है, क्योकि द्रव्य की माग कम हो गई, द्रव्य का मूल्य गिर गया, चीजो के दामो में तेजी आ गई। चेक और हुण्डी भी तो आखिर द्रव्य के ही प्रतीक है। उनकी सख्या बढ गई तो एक प्रकार से वह द्रव्य ही बढ गया, क्योकि यदि चेक-हुण्डी न होती तो उनके स्थान की पूर्ति नोटो को करनी पडती। इसलिए इस पहलू को यो भी बताया जा सकता है कि द्रव्य-परिमाण बढ गया, इसलिए द्रव्य के दाम गिर गए, और चीजो के दाम चढ गए।

(४) मगर इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि वाणिज्य-व्यापार या लेन-देन की वृद्धि के कारण द्रव्य की माग बढ जाय। माग की पूर्ति न की जाय और चलण मे द्रव्य न बढाया जाय तो स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था मे द्रव्य का मूल्य बढ़ेगा—अर्थात् चीजो के दाम गिरेगे।

द्रव्य के मूल्य मे घटा-बढी के कारणो को समझाने के लिए ऊपर यह मान लिया है कि जहा एक बात बदलती है वहा और सब बाते समान बनी रहती है। पर प्रकृत जीवन मे ऐसी अवस्था बहुत कम मिलती है। एक नहीं, अनेक बाते प्राय साथ-ही-साथ बदलती रहती है और परस्पर-विरोधी शक्तियों की मुठभेड-सी बनी रहती है। घटा-बढी का जो अन्तिम कारण बताया गया है उस पर फिर एक नजर डालिए। लिखा है कि द्रव्य की माग बढने से उसका मूल्य बढेगा और चीजो के दाम गिरेगे। मगर सम्भव है कि जहा एक ओर द्रव्य की माग बढे वहा, दूसरी ओर, साथ-ही-साथ उसका परिमाण भी इतना बढ जाय कि उसके मूल्य मे किसी प्रकार की वृद्धि न हो और दामों पर कोई असर न पडे। वास्तव में वस्तु-स्थिति कभी-कभी इतनी जटिल होती है कि उसका पूरा विश्लेषण करना और यह जान लेना कि वह कौन-कौन से कारणो के फलस्वरूप बनी है, अत्यन्त कठिन कार्य हो जाता है। पर जटिल-से-जटिल अवस्था मे भी द्रव्य के मूल्य मे घटा-बढी उपरोक्त कारणो से ही होती है—चाहे उनमे से एक मौजूद हो, चाहे एक से अधिक। माग बढेगी या परिमाण कम होगा तो उसके मूल्य मे वृद्धि होगी। माग घटेगी या परिमाण बढेगा, तो मूल्य मे ह्रास होगा। यह सरल या जटिल प्रत्येक अवस्था के लिए सत्य है।

उपरोक्त विश्लेषण को सामने रख कर ही हम "द्रव्य-परिमाण-मत" के शुद्ध स्वरूप को समझ सकते है, जो यह है कि सिक्का—चाहे वह स्वय-सिद्ध मुद्रा हो चाहे प्रतीक मुद्रा—जब चलण मे ज्यादा होता है तो जिन्सो के दाम—बढे चलण के अनुपात से—बढ जाते है; और सिक्का चलण में कम होता है तो, जितना कम होता है उसी अनुपात से, जिन्सो के दाम गिरते है।

यह बात सहज ही समझ मे आ सकती है। मान लीजिए कि अचानक सोने की नई खाने निकल आई और सोने की पैदाइश बेहद बढ चली। उसके कारण सोने के दाम गिर गए, यहा तक कि सोने के दाम पहले से आधे हो गए—तो स्वभावतया ही, यदि हम विदेशो मे खरीद से ज्यादा माल बेचते रहे है तो बदले मे पहले जितना सोना खरीदते थे उसके बजाय

उतने ही माल के लिए दुगुना सोना हमे मिल सकेगा। सोना दुगुना मिलेगा, उस पर फिर नोट भी ज्यादा चलण मे वढेगे। जैसे, पहले यदि १० करोड का नया सोना हम हर साल खरीदते थे और उसके मद्दे ३० करोड के नए नोट चलण मे रखते थे, तो अव उतने ही माल के वदले मे विदेशो मे हमे १० करोड के वजाय (क्योकि सोने के दाम आधे हो गए) २० करोड का सोना मिलेगा, जिसके मद्दे हम आसानी से ६० करोड़ के नए नोट चलण मे रख सकेगे। नए नोट चलण मे आने से व्याज गिरेगा, नाणा मन्दा होगा और वहुतायत से उधार मिल सकेगा। कोई भी चीज कम होती है तो वह महगी हो जाती है, ज्यादा होती है तो सस्ती होती है। चूकि नाणा ज्यादा हो गया, इसलिए नाणा सस्ता हो गया। नाणा सस्ता हो गया, इसके माने दूसरे शब्दो मे यह हुए कि चीजे महगी हो गई। दर असल जव हम कोई चीज खरीदते है तो उस चीज का नाणे के साथ तबादला-मात्र होता है, याने नाणा हम वेचते है और चीज खरीदते है। जव नाणा सस्ता होता है तो सस्ते मे विकेगा---अर्थात् जिन्सो के साथ नाणे की अदला-वदली मे, यदि नाणा सस्ता है तो, हमे नाणा ज्यादा देना पडेगा। दूसरे शब्दो मे इसका अर्थ यह हुआ कि चीजो के दाम महगे हो गए।

जव नोट चलण मे वढ जाते है तो नाणा आसानी और सहूलियत से और वहुतायत से कम व्याज पर मिलने लगता है। ऐसी हालत मे लोगो को अपना व्यवसाय वढाने की फिक्र होती है। नए कारोवार मे रुपया लगाने मे किसीको हिचकिचाहट नही होती। नतीजा यह होता है कि व्यापार पनपता है, हर चीज के दाम वढते है। पर इस मत के पूर्णतया सिद्ध होने की कई एक शर्ते है। एक शर्त तो यह है कि द्रव्य का चलण वढा—चाहे नोटो का या सिक्को का—उतना ही यदि व्यापार और लेन-देन भी वढ गया, तो फिर दाम नहीं वढेगे। दाम तो तभी वढेगे जव कि चलण अपेक्षाकृत वढ गया हो—अर्थात् यदि व्यापार वढा है रुपए मे एक आना, और चलण वढ गया रुपए मे दो आना, तभी नाणा मन्दा है, ऐसा हम कहेगे। ऐसी हालत मे रुपए की छूट होगी और इसके कारण चीजो के दाम वढेगे।

इसके विपरीत यदि व्यापार या लेन-देन की जरूरत बढी रुपए मे एक आना और चलण बढा पौन आना हो, तो यह कहा जायगा कि अपेक्षाकृत चलण मे सकोच हुआ है, और इसलिए चीजो के दाम झुकाव की ओर होगे। असल मे तो इस मत की सिद्धि के लिए हमे यह शर्त लगानी होगी कि यदि दो तुलनात्मक स्थितिया और हर बात मे बिल्कुल यकसा है, तो फिर यह नि सकोच कहा जा सकता है कि द्रव्य-परिमाण (नोट या सिक्को का चलण) बढने पर, जितना परिमाण बढा उसी अनुपात मे चीजो के दाम बढेगे और नाणा सस्ता होगा। और द्रव्य-परिमाण घटने पर, जितना परिमाण घटा उसी अनुपात से, चीजो के दाम गिरेगे।

द्रव्य की पंगुता

यहा, फुलावट और गिरावट के सम्बन्ध मे, हमे एक बात कहनी है जो, जाहिरा तौर पर, अब तक जो कुछ कहा जा चुका है उसके विपरीत जान पडती है। हर हालत मे फुलावट या गिरावट के नतीजे वही नही होते जो ऊपर बताए जा चुके है। सभव है, फुलावट होते हुए भी दाम समान-से बने रहे, या उनमे तेजी भी आए तो नाममात्र की। और सभव है, गिरावट होते हुए भी जिन्सो के दाम चढ जाय। आप कह सकते है कि "यह खूब रही! और अगर यह सच है, तो इससे तो 'द्रव्य-परिमाण-मत' का खोखलापन ही साबित हुआ। आप दोनो बातो का सामञ्जस्य कैसे करते है?"

फुलावट होते हुए भी, अगर लोगो के खर्च करने का वेग उस हिसाब से नही बढता और द्रव्य या पैसा पगु-सा होकर बैठा या पडा रहता है तब दामो मे उतनी तेजी नही आ सकती, जितनी फुलावट को देखते हुए सभव जान पडती है। इस महासमर मे इग्लैण्ड की बात लीजिए। वहा फुलावट काफी हो चुकी है, पर उस अनुपात मे दाम नही बढ पाए है। कारण यह है कि लोग मौजूदा हालत मे मनोवाञ्छित रीति से जिन्स नही खरीद सकते। उनके पास पैसा अधिक है, उनकी क्रयशक्ति बढ गई है, पर वह पैसा तरह-तरह के नियत्रणो के कारण निष्क्रिय-सा पडा हुआ है। सरकार को लडाई के लिए हर तरह की जिन्स की जरूरत है--

और सख्त जरूरत है। अगर बाजार मे उन जिन्सो को खरीदते समय सरकार को सर्वसाधारण की प्रतियोगिता का सामना करना पडे, तो उसकी समस्या बडी जटिल हो जाय, और लडाई के लिए जैसी तैयारी होनी चाहिए, न हो सके। उस प्रतियोगिता को सरकार ने विभिन्न उपायो से बहुत कुछ रोक दिया है। इस कारण लोगो की क्रय-शक्ति अशक्त-सी हो गई है—उनके पास पैसा अधिकाधिक होते हुए भी वह उसे एक हद से आगे खर्च करने मे असमर्थ है। फिर दाम फुलावट के हिसाब मे बढे तो कैसे ?

मान लीजिए कि लडाई बन्द होते ही सरकार की नीति फुलावट से गिरावट की हो गई, तो क्या दाम गिरने लगेगे ? आज आय-वृद्धि होते हुए भी व्यय करने के मार्ग बन्द है, इसलिए उस पैसे का दामो पर जो असर पड सकता था वह नही पड रहा है। पर, कल अगर वह मार्ग खुल गए, और लोग मनमाना खर्च करने के लिए स्वतन्त्र हो गए तो गिरावट के बावजूद भी जिन्सो के दामो मे बेहद तेजी आ सकती है।

साराश यह कि दामो की दृष्टि से प्रधानता इस प्रश्न की है कि कितना पैसा खर्च हो रहा है—न कि इस प्रश्न की, कि कितना पैसा मौजूद है। साधारण समय मे यह भेद कोई खास अर्थ नही रखता, क्योकि लोग अपने पैसे को मनमानी रीति से खर्च करने के लिए स्वतन्त्र रहते है। पर इस महासमर-जैसे असाधारण समय मे—जबकि पैसा होना एक बात है, उसे मनमानी रीति से खर्च करने की स्वतन्त्रता होना दूसरी बात—यह भेद विशेष महत्वपूर्ण है। फिर भी यह बात कोई ऐसी नही, जिसका "द्रव्य-परिमाण-मत" से मेल या सामञ्जस्य न हो सके। वास्तव मे यह उसी मत के अन्तर्गत है, क्योकि वह द्रव्य के परिमाण पर ही नही, उसके चलण या रफ्तार पर भी जोर देता है। हम अपने शब्दो को दोहराते है—"जब कोई रुपए को अपने पास रखना नही चाहता तब दाम चढते है, जब लोग रुपए को दबा कर बैठ जाते है तब दाम गिरते है"। इस समय रुपया अधिक होते हुए भी दबा हुआ है, इसलिए दाम जितने ऊचे हो सकते थे, नही है।

५

पर चलण के स्वाभाविक विस्तार और सकोच से जो असर चीजो के दामो पर पडता है उससे कही अधिक जोरदार असर चीजो के दामो पर चलण की फुलावट और गिरावट के कारण पडता है। चूकि विस्तार या सकोच तो अपने-आप करीब-करीब स्वभाव मे ही होता है, इसकी गति भी मन्द होती है और इसका असर भी सह्य और मृदु होता है।

पर चूकि फुलावट और गिरावट जान-बूझ कर की जाती है, इसकी गति द्रुत होती है। इसलिए जितनी ही कस कर फुलावट या गिरावट की नीति काम मे लाई जाय, उतना ही अधिक तात्कालिक असर इस नीति का जिन्सो की कीमत पर होगा। और खास कर फुलावट की नीति मे तो—यदि अत्यधिक, बेपरिमाण, फुलावट की जाय तो—लोगो का नोटो से विश्वास इस कदर भाग जाता है कि वे नोटो को एक रात भी अपने पास रखना नापसन्द करते है और अपना पूजी-पल्ला जिन्सो मे ही रोकना पसन्द करते है। इसका नतीजा यह होता है कि चीजो के दाम अनाप-शनाप बढ जाते है। और व्याज की दर भी बढने लगती है।

लडाई के बाद जर्मन मार्क और रूसी रूबल के चलण की फुलावट यहा तक बढी कि साधारण समय मे जितने नोट चलण मे थे उससे कई लाख गुने नोट चलण मे रख दिए गए। नतीजा यह हुआ कि नाणा कागज के टुकडो की तरह इतना सस्ता हो गया कि उसकी कोई कीमत ही नही रह गई और जर्मनी मे जिस चीज के दाम साधारण समय मे १-२ मार्क रहे होगे उसके दाम लाखो मार्क तक हो गए। ज्यो-ज्यो मार्क छप-छप कर जोर से चलण में आने लगे, त्यो-त्यो बडी तेजी के साथ चीजो के दाम बढने लगे—यहा तक कि हर मिनिट दाम ऊँचे जाने लगे। कहा जाता है कि जब एक नानबाई अपने गाहक को रोटी बेचकर उसके मार्क पाता था तो उसे यह चिन्ता होती थी कि ताजा रोटी बनाने के लिए आटा खरीदते-खरीदते

कही आटे के दाम बढ न जाय । इसलिए वह रोटी बेचते ही मार्क लेकर बेतहाशा दौड कर आटेवाले की दूकान पर पहुँच कर आटा ले लेता था और मार्क से पिण्ड छूटने पर ही शान्ति से सास लेता था ।

बेहद फुलावट के नतीजे

उस जमाने की इससे भी ज्यादा मजेदार कई सच्ची कहानिया प्रचलित है । जब मार्क की कीमत कौडी से भी कम होने जा रही थी, तब तो ऑस्ट्रिया और जर्मनी के लोगो का विश्वास इस बुरी तरह डुल गया कि कई लोगो ने तो अपनी कफन-काठी भी मरने के पहले खरीद कर रख दी ताकि बाद मे कही दाम बेशुमार ज्यादा न बढ जायँ ।

एक प्रतिष्ठित भारतीय कोठी का कुछ मार्क एक जर्मन व्यापारी से पावना था । वह मार्क हजारो की तादाद मे था, जिसकी साधारण समय मे हजारो रुपए कीमत थी । भारतीय कोठी ने जब जर्मन व्यापारी से रुपया मागा और लिखा कि आप हमारे मार्क भेज दीजिए, तो जर्मन व्यापारी ने जवाब लिखा कि "महाशय, आपके २५,००० मार्क पावने थे, पर मै जो यह खत आपको लिख रहा हू उसके टिकिट और, लिफाफे के दाम ही तो ढाई लाख मार्क हो जाएगे । इस हिसाब से यदि मै हिसाब लगाऊ तो उल्टा मेरा ही आप से पावना निकलेगा ।"

कहते है, ऑस्ट्रिया मे दो भाई थे, जिनमे से एक के पास २०-३० हजार क्राउन थे, जिसके कारण वह सम्पन्न माना जाता था । और दूसरा शराबी था, जो नित्य जितना कमाता था उसका एक बडा हिस्सा शराब मे बरबाद कर देता था और शराब की बोतले घर मे जमा रखता था । जब क्राउन की फुलावट हुई तब, जो भाई सम्पन्न था उसके क्राउन तो कौडी के हो गए, पर जो शराबी था उसकी खाली बोतलो की कीमत लाखो क्राउन हो गई । नाणे की फुलावट क्या-क्या करामात दिखाती है, इसका यह एक मजेदार उदाहरण है। अस्तु ।

मान लीजिए कि हमारे यहा २५० करोड रुपए के नोटो का चलण

है, उन्हे वढा कर २५,००० करोड के नोटो का कुल चलण कर दिया जाय–अर्थात् सौगुना चलण वढा दिया जाय, तो स्वभावतया रुपए की साग सौआ हिस्सा रह जायगी। और जो मेथी की सब्जी आज दो पैसे सेर मिलती है उसके दाम २०० पैसे सेर, अर्थात् एक सेर मेथी की कीमत करीव-करीव ३ रुपए हो जायगी।

ऊपर हमने वताया है कि नाणा चलण मे ज्यादा होता है तो चीजो के दाम पनपने लगते हैं और सस्ते व्याज मे उधार मिलने लगता है। पर यह सस्ते व्याज की वात केवल नियत्रित विस्तार तक ही सीमित है—अर्थात् व्यापार को पनपाने के लिए या केवल मौसिमी टान को मेटने के लिए ही जव हम चलण मे सिक्का ज्यादा डालते है, और सो भी नियत्रण के साथ स्वल्प मात्रा मे, तभी तक व्याज मदा रहता है। पर जहा फुलावट की नीति जोर से शुरू की और चलण मे लोगो का विश्वास कपित हुआ कि व्याज की दर जोर से वढने लगती है।

जर्मनी मे फुलावट के जमाने मे चीजो के दाम कैसे वढ गए, इसका उदाहरण हमने ऊपर दिया है। उस जमाने मे व्याज की दर भी यहा तक वढी थी कि एक जमाने मे व्याज १२०० प्रतिशत–अर्थात् १०० सिक्के का व्याज एक साल का १२०० रुपया हो गया। आपने यदि कुल १०० सिक्के उधार दिए तो एक साल के वाद आपको अपने देनदार से १२०० सिक्के व्याज के मिल गए। ऐसी विपम स्थिति हो गई थी।

यह कुछ अनहोनी-सी वात लगती है कि इतनी ऊची व्याज की दर हो सकती है—और सो भी एक सुसभ्य देश मे। कावुली व्याज कडा होता है। पठान लोग गरीवो को अत्यत ऊचे व्याज पर उधार देते है। पर यह १२०० प्रतिशत का व्याज तो कावुलियो से भी वाजी मारता है। पर उस समय की परिस्थिति को देखते हुए इसमे कोई आश्चर्य की वात नही है।

जैसा कि हमने पहले वताया है, जव फुलावट नीति जोर से शुरू होती है तो चलण का मूल्य धडाधड गिरने लगता है। मान लीजिए, जिस चलण का मूल्य आज एक माना है उसका मूल्य एक साल मे सतारा रह

गया, और भय यह हो कि शायद महीने-बीस दिन के बाद $\frac{1}{2}$ रह जाय या इससे भी कम हो जाय, तो फिर चलण अपने पास कोई नही रखेगा। इसलिए जिस नानबाई का हमने उदाहरण दिया है वह बेतहाशा दौड कर मार्क का आटा खरीद कर ही दम लेता था। ऐसी जहा हालत हो वहा फिर चलण को अपने पास कौन रखे ? जिसने उधार दिया वह तो मारा गया, क्योकि साल भर के लिए यदि किसी ने १०० मार्क उधार दिए और मार्क के दाम गिर कर साल भर मे $\frac{1}{2}$, रह जाय, तो जो मार्क उसे वापिस मिलेगे वे सौ के बजाय आधे मार्क का सा काम देगे। इसके माने यह हुए कि यद्यपि उसे वापिस १०० मूल रकम और १२०० व्याज के, कुल १३०० मार्क मिले, पर १३०० की कीमत $\frac{1}{2}$ के हिसाब से $\frac{1300 \times \frac{1}{2}}{100} = 6\frac{1}{2}$ मार्क ही कुल रह गई। इतना व्याज पाने पर भी कर्ज देनेवाला घाटे मे ही रहा। यही कारण है कि इस तरह की फुलावट की नीति के जमाने मे नाणा प्रचुर मात्रा मे होते हुए भी व्याज की दर बेहद बढ जाती है, क्योकि उधार देनेवाले को बडी जोखिम उठानी पडती है।

फुलावट का कर्ज पर असर

फुलावट मे प्रतीक की साख मे ठेस पहुच गई और प्रतीक की मिकदार चलण मे ज्यादा हो गई। इसलिए, जैसा कि पहले बता चुके है, जिन्सो के दाम भी बढ गए। पर किसी कर्जदार को एक सौ का देना था और पावनेदार का उतना ही पावना था तो—यद्द पि जब दोनो का लेन-देन हुआ था तब प्रतीक स्वयसिद्ध मुद्रा का सच्चा प्रतिनिधि रहा हो—आज प्रतीक स्वयसिद्ध मुद्रा का प्रतिनिधित्व खो बैठा, तब भी पावनेदार को वही सौ मिलेंगे, और देनेवाले को वही सौ देने पडेगे। फुलावटके कारण प्रतीक की करामान कम हो गई,इससे लेन-देन की निर्धारित रकम पर कोई असर नही पडेगा।

पहले जो एक रुपया दस सेर गेहू खरीद सकता था, अब फुलावट के कारण रुपए की साख गिर गई और जिन्सो के दाम बढ गए, इसलिए चाहे दस सेर गेहू के बदले ८ सेर ही खरीद सके, पर पावनेदार देनदार मे

यह नही कह सकता,"भाई साहब—मैंने जब आपको उधार दिया तब रुपए की सारी सोलह कला संपूर्ण थी। प्रतीक के स्वामी को बैंकवाले आठों पहर छूट मे स्वयसिद्ध मुद्रा देते थे। अब वह बात नही रही। फुलावट की नीति के कारण प्रतीक हतश्री हो गया। इसकी कलाए घट गई। १० सेर गेहू के बजाय अब इसके बदले मे ८ सेर गेहू ही मिल सकते है। इसलिए मेरा रुपया जो पहले सोलह कलावाला था उसीको लौटाने की आपकी जिम्मेवारी है। इसलिए आप या तो मुझे स्वयसिद्ध मुद्रा का प्रतीक लौटाइए, और यदि आप मुझे घटे दाम का रुपया लौटाना चाहते है तो सौ के ऋण के बजाय आपको सवा सौ देना होगा।" यदि पावनेदार ऐसी बात कहे तो देनदार अवश्य ही कहेगा,"तुम कहा आकाश-पाताल की बाते कर रहे हो? मालूम होता है तुम्हारे दिमाग की कोई कील गिर भागी है, इसलिए बेहतर है कि तुम अपनी चिकित्सा कराओ।"

लाभ और हानि

पर बावजूद इस प्रश्नोत्तरी के यह तो मानना ही पडेगा कि इस फुलावट की नीति के कारण पावनेदार को घाटा हुआ, और देनदार को लाभ, क्योंकि पावनेदार का जो पावना था, वह था पूर्णकला रुपया या सुवर्ण-मुद्रा, और अब वापिस मिल रहा है उसे घटी कीमत का प्रतीक, जो पुराने रुपए की अपेक्षा कम जिन्स खरीद सकता है। पर चूकि कानून का यह तकाजा है कि फुलावट या गिरावट के कारण प्रतीक की कीमत मे चाहे जो घटा-बढी हो (उस घटा-बढी को निश्चित रूपेण मापने का कोई साधन नही है, और यदि हो भी तो वह सरकार को मान्य नही है) उससे पावनेदार या देनदार के पावने देने की रकम पर कोई असर नही होगा—अर्थात् यदि स्वयसिद्ध मुद्रा के चलण के समय का १०० का पावना देना है, तो वह फुलावट-नीति के समय भी १०० का ही पावना देना माना जायगा।

करोडो का देना-पावना हर मुल्क मे होता है और उस देने-पावने की रकम ज्यो-की-त्यो बनी रहती है, इसलिए सर्वसाधारण को प्रतीक की कीमत गिर गई है या बढ गई है, इसका थोडी घटा-बढी मे कोई पता भी नही

चलता। पर पता न भी रहे तो भी उसके असर से लोग वचित नही रहते। यदि दाम चढते हैं तो सभी को उसका फल भुगतना पडता है, और गिरते है तब भी यह सभी को लागू पडता है।

एक सावधान और सम्पन्न व्यक्ति ऑस्ट्रिया मे कैसे दरिद्र हो गया और उसका भाई, जो शराबी था, कैसे धनिक बन गया, इसका उदाहरण हम पहले दे आए है। यद्यपि फुलावट के कारण प्रतीक-मुद्रा की दर कितनी गिर गई है, इसकी माप-तौल का सर्वसाधारण को पूरा पता नही चलता, पर जाननेवाले तो जानते ही है कि फुलावट के कारण प्रतीक की कीमत कम हो जाती है और इसके फलस्वरूप पावनेदार को, नकद रुपया रखनेवाले को, जिन्सो की खपत करनेवाले को, मजदूरपेशा लोगो को, और जिनकी आय निर्धारित है उनको (जैसे जमीदार, पेन्शनयाफ्ता लोग, नौकरीपेशा लोग, कर वसूल करनेवाली सस्थाएँ—जैसे सरकार, म्युनिसिपैलिटी, कॉलेज, स्कूल इत्यादि) हानि होती है, और कर्जदार लोग, कारखानेवाले, माल पैदा करनेवाले, (जैसे किसान, जुलाहा, बढई, लोहार, चमार आदि) इन लोगो को लाभ होता है।

गिरावट की नीति मे, जिन्हे फुलावट मे लाभ होता है, उनको हानि है, और फुलावट मे जिन्हे नुकसान है, उनको लाभ है।

इस फुलावट या गिरावट के कारण हमारी मुद्रा की कीमत पर विदेशो मे क्या असर होता है, इसका भी जरा विवेचन कर ले ।

हमने पहले बताया है कि प्रतीक-मुद्रा तो स्वयसिद्ध मुद्रा की प्रतिनिधि-मात्र है—अर्थात् एक सुवर्ण-मुद्रा की कीमत का प्रतीक हम नोट-प्रसारक बैंक के पास पेश करे, तो हम एक सुवर्ण-मुद्रा पाने के अधिकारी होगे और बैंक एक सुवर्ण-मुद्रा देने के लिए बाध्य होगी। पर यह अधिकार और जिम्मेवारी, दोनो-के-दोनो फुलावट-नीति के प्रवेश करते ही समाप्त हो जाते है, और गिरावट-नीति के आने पर दोनो और भी सुरक्षित बन जाते है ।

कारण स्पष्ट है । थोडे मे सोने की पूजी पर एक तरफ तो अत्यधिक और बेपरिमाण प्रतीक चलण मे डाल दिए जाय, और दूसरी तरफ प्रतीक के स्वामी का प्रतीक के बदले मे स्वयसिद्ध मुद्रा पाने का अधिकार अक्षुण्ण बना रहे और बैंक प्रतीक-मुद्रा के बदले मे सुवर्ण-मुद्रा देने के लिए बाध्य हो—ये दोनो बाते असगत है, क्योंकि १२० करोड की कीमत के सोने के आधार पर यदि ३२०० करोड के नोट चलण मे डाल दिए जाय और उनमे से यदि २०० करोड की कीमत के नोटवाले भी अपने अधिकार का उपयोग करे और बैंक से नोट भुना कर सुवर्ण-मुद्रा मागे, तो बैंक को अपना दरवाजा बन्द करने के सिवा कोई चारा न होगा। कुल पूजी ही यदि १२० करोड है,तो फिर २०० करोड के नोटो का भुगतान बैंक चुका ही कैसे सकती है? ज्यादा से ज्यादा—३२०० करोड के नोटो मे से—कुल १२० करोड ही तो चुका सकती है। बाकी के नोटो के पीछे जब कोष मे सोना ही नही रहता, तो फिर नोटो की पुश्ती ही नेस्तनाबूद हो जाती है, और इसलिए नोटो की साख शून्यवत् रह जाती है। इसलिए जहा फुलावट-नीति के प्रयोग का विचार हुआ कि प्रतीक मुद्रा के स्वामी का सुवर्ण-मुद्रा पाने का अधिकार समाप्त हुआ ।

गिरावट की नीति मे, इसके विपरीत, यह अधिकार और भी ठोस बन जाता है, क्योकि चलण के नोटो के परिमाण के मुकाबिले मे बैंक के कोष मे स्थित सोने का परिमाण और भी बढ जाता है। इसलिए स्वभावतया प्रतीक-मुद्रा की साख बढ जाती है। पर फुलावट-नीति में तो प्रतीक नाममात्र का प्रतीक रहता है। पहले प्रतीक की कीमत जो एक सुवर्ण-मुद्रा थी, फुलावट होने पर अब उसकी कोई निश्चित कीमत नही रही। अब प्रतीक की कीमत उसकी साख की घटा-बढी के अनुसार घटती और बढती रहती है। और वह साख फुलावट के परिमाण के पीछे कमो-बेश होती रहती है। यदि फुलावट ज्यादा होती है तो, जैसा कि ऊपर बताया है, प्रतीक की कीमत ज्यादा गिर जाती है, और यदि फुलावट अपेक्षाकृत कम होती है तो प्रतीक की कीमत कम गिरती है।

जब तक प्रतीक और स्वयसिद्ध मुद्रा का कानूनन सम्बन्ध था, दोनो गँठजोडे-से बधे थे, तब तक तो प्रतीक की निर्धारित कीमत कायम थी। पर जहा प्रतीक और स्वयसिद्ध मुद्रा का तलाक हुआ कि कीमत की स्थिरता गायब हुई। यद्यपि कहने के लिए तो प्रतीक फिर भी एक सुवर्ण-मुद्रा का नोट ही होगा, जैसा कि इग्लैण्ड मे एक पाउण्ड का नोट आज भी एक पाउण्ड का नोट ही कहलाता है, पर उसके माने यह नही कि उसके पीछे एक पाउण्ड की सुवर्ण-मुद्रा पडी है, जिसे हम चाहे जब बैंक ऑफ इग्लैण्ड से माग लेगे और वह हमे दे देगी। इस तलाक के बाद असल मे तो प्रतीक की कीमत कटी पतग की तरह हो जाती है,और जैसे हवा के झोको के बल पर पतग गिरती है या उठती है, उसी तरह प्रतीक की कीमत भी चलण की फुलावट की कमी-बेशी के आधार पर झिलोरे खाती रहती है।

प्रतीक की कीमत और विदेशी बाजार

यह सही है कि सर्वसाधारण को फुलावट या गिरावट के कारण प्रतीक की दर मे क्या घटा-बढी हुई, इसका कोई पता नही चलता, क्योकि उनकी नजरो के सामने तो सिवाय जिन्सो की कीमत की घटा-बढी के और कोई ऐसे लक्षण नही आते जिनसे उन्हे प्रतीक की नई कीमत का

प्रत्यक्ष ज्ञान हो। उनके सामने रुपए की वही पहलेवाली शक्ल है, वही देनदार-पावनेदार की रकम है, वही रुपए का नाम है।

पर विदेश मे लोग हमारे प्रतीक की कीमत के सम्बन्ध मे इतने अन्धकार में नही रहते। उन्हे हमारे प्रतीक की कीमत का और उसमे रोज होनेवाली घटा-बढी की करीब-करीब सही माप-तौल मिल जाता है, और इसलिए, जैसे मनुष्य अपने चेहरे को स्वय नही देख सकता किन्तु दर्पण की सहायता से अपने मुह की बदसूरती या सुन्दरता की सही माप-तौल कर सकता है, उसी तरह हमारे प्रतीक का विदेशी लोग क्या दर-दाम करते है, इससे उसकी कीमत का अधिक सही ज्ञान हमे हो सकता है। विदेशी बाजार एक तरह दर्पण का काम देते है, क्योंकि उन्हीके द्वारा हम अपने प्रतीक की सही कीमत का पता लगता है।

पर विदेशी बाजार हमारे दर्पण क्यो बन जाते है ? यदि विदेशो से हम माल न तो खरीदे और न उन्हे बेचे, तब तो किसको फुर्सत है कि हमारे चलण की क्या कीमत होनी चाहिए, इसपर कोई विदेशी बहस करने बैठेगा। पर चूकि हम विदेशो मे जिन्स मोल लेते है और बेचते है, इसलिए हमारे चलणी प्रतीक की कीमत को हर समय कूतते रहना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। यह क्यो ?

मान लीजिए, आप लन्दन के बाजार मे कुछ चीजे मोल लेते है, तो उनका दाम आप यदि भारतीय नोटो मे चुकाना चाहेगे तो कोई दूकानदार आपको माल न बेचेगा, इसलिए आपको वह दाम अग्रेजी नोटो मे चुकाना पडता है। अग्रेजी नोट आप कहा से लाते है ? आपके घरवाले हिन्दुस्तान मे किसी विदेशी बैक को रुपया देते है और उसकी कीमत का अग्रेजी द्रव्य खरीद कर आपको उसी बैक की मार्फत भेज देते है, जो आपको अग्रेजी नोट या सिक्को की शक्ल मे मिल जाता है। पर इसी तरह यदि सब लोग यहा से इग्लैण्ड भेजनेवाले ही होगे, और मगानेवाला कोई न रहेगा, तब तो कारोबार अपने-आप कुछ दिन के बाद बन्द हो जायगा। पर चूकि जैसे भेजनेवाले है वैसे ही लन्दन से द्रव्य मगानेवाले भी है, इसीलिए यह दुतरफा

कारोबार चलता रहता है, और जब हम रुपए से अंग्रेजी पाउण्ड खरीदते है (लन्दन धन भेजने के लिए) या तो पाउण्ड बेच कर रुपया खरीदते है (लन्दन से धन मगाने के लिए) तब जिस कीमत मे या तो हम रुपया बेच कर पाउण्ड खरीदते है, या पाउण्ड बेच कर रुपया खरीदते है, उससे हमे पता लग जाता है कि हमारे प्रतीक (चलण) की विदेश मे क्या कीमत है।

विदेश में कीमत कैसे बनती है ?

प्रश्न का उत्तर यह है कि हर चीज की कीमत लेने और बेचनेवालो की गरज पर अवलम्बित है। वैसे ही इस विषय मे भी होता है।

पर इसे ज्यादा स्पष्टतया समझ लेना आवश्यक है। यदि हम विदेशो मे माल ज्यादा लेते है और कम बेचते है, जैसे कि हमने १०० का माल तो लिया और ६० का बेचा, तो हमे विदेशो को ४० चुकाना बाकी रहा। यह ४० हम कैसे चुकाएँगे ?

इसके तीन तरीके हो सकते है।

एक तरीका तो है पावनेदार को सोना भेज कर। सोने के सभी ग्राहक होते है, और तमाम मुल्को ने करीब-करीब सोने की एक निर्धारित कीमत कायम कर रखी है, उस निर्धारित कीमत पर, हर मुल्क की नोट-प्रसारक बैंक प्राय सोना खरीदने को तैयार रहती है। इसलिए पावनेदार को सोना भेज कर हमारा कर्ज चुकाने मे तो कोई कठिनाई है ही नही। पर हर साल सोना भेज कर तो वही मुल्क माल खरीद सकता है जिसके पास सोने की बडी-बडी खाने हो और जहा सोने की बडी मिकदार में पैदाइश भी हो। इसलिए सोना भेज कर दाम चुकाने का यह तरीका चाहे १-२ साल के लिए भले ही चले, पर हर मुल्क के लिए निरन्तर इस तरीके का चलाना व्यावहारिक नही हो सकता।

दूसरा तरीका है—जहा माल खरीदा वही लोगो से धन उधार लेकर माल का दाम चुकाया। यह तरीका भी विशेष समय के लिए चाहे उपयुक्त हो, पर निरन्तर नही चल सकता। निरन्तर उधार कौन देता जायगा ?

आखिर कभी तो वापिस चुकाना ही होगा। इसलिए यह तरीका भी निरन्तर नहीं चल सकता।

अब एक तीसरा तरीका है, जो दाम चुकाने के लिए सर्वदा व्यावहारिक होता है। यह तरीका यह है कि अपने यहा बनी चीजो को या अपनी सेवा या श्रम को विदेश मे बेचकर उससे जो द्रव्य मिले, हम उसीसे अपना विदेशी देन चुकावे।

उपरोक्त तीन तरीको मे से प्रथम दो तरीके तो सर्वदा और बडे परिमाण मे चल ही नही सकते। तीसरा ही एकमात्र तरीका है, जो हमे विदेश के भुगतान चुकाने मे हमारा सहायक हो सकता है। हर मुल्क के लिए यह लाजिमी है कि या तो वह विदेशी व्यापार से मुह मोडे या विदेश मे माल लेने और बेचने की कीमत को एक हद तक समतल पर रखे—अर्थात् जितना-सा ले उतना-सा ही बेचे।

इसके कुछ अपवाद है सही। मान लीजिए कि हमारे पास ऐसी चीजे है जिनके बिना दुनिया का काम ही नही चल सकता है, तो विदेश-वाले हमसे हमारी जिन्से खरीदते जाएँगे और बदले मे हमे सोना भेजते जाएँगे। या तो ऐसा भी हो सकता है, जैसा कि इग्लैण्ड के सम्बन्ध मे था। इग्लैण्ड ने तमाम दुनिया को कर्जदार बना रखा था, इसलिए यद्यपि इग्लैण्ड बेचता था कम, खरीदता था दुनिया मे ज्यादा—उस ज्यादा खरीदे हुए माल की कीमत—अपने कर्जदारो से ब्याज-वसूली का जो धन आता था, उसीसे चुका देता था। पर ऐसे अपवादो को छोड कर यह मानना होगा कि विदेशी खरीद और बिक्री की कीमत को समतल पर लाना हमारे लिए आवश्यक है।

पर जब तक हम इस लेवा-बेची को समतल पर नही लाते तब तक यदि विदेशो मे हम जितना बेचते है उससे हम ज्यादा खरीदते है, तो उसकी कीमत चुकाने के लिए हमे हर समय अपने द्रव्य याने मुद्रा को बेच कर विदेशी द्रव्य याने विदेशी मुद्रा खरीदने की जरूरत बनी रहती है। इसके कारण हमारे प्रतीक का दाम विदेशो मे झुकाव की ओर—अर्थात् गिरने की ओर होगा। और यदि हम विदेशो मे जितना लेते है उससे वहा ज्यादा बेचते है, तो उस बेचाण की कीमत को स्वदेश लाने के लिए या तो हमे वहा सोना मिल

जायगा, अन्यथा हम हर समय विदेशी द्रव्य-प्रतीक के बेचवाल और अपने चलण-प्रतीक के लेवाल रहेगे। नतीजा यह होगा कि हमारे प्रतीक की कीमत विदेशो मे चढाव की ओर होगी।

जब फुलावट की नीति होती है तब, हमने बताया है कि, हमारे प्रतीक की कीमत कम हो जाती है। पर किस समय कितनी कीमत गिरी, उसका सही अन्दाज भी, जैसा कि ऊपर बताया है, विदेशी बाजारो से ही लगता है। विदेशो मे हमारे द्रव्य की कीमत कैसे भिन्न-भिन्न, पर तमाम सजोगो के कारण, कायम होती है, इसकी कुछ कल्पना उपरोक्त चित्रण से ही की जा सकती है। इन तमाम सजोगो मे कई सजोग ऐसे होगे जो विदेशो मे हमारे चलण की कीमत को चढानेवाले होगे, और कई ऐसे सजोग होगे जो हमारे चलण की कीमत को गिरानेवाले होगे। इन सब सजोगो के जोड-बाकी के बाद शेष जो सजोग कीमत बढाने या घटाने के पक्ष का रह जाता है उसीका फिर एकपक्षीय असर होता है।

जब फुलावट की नीति हमारे यहा बरतती है तो हमारी जिन्सो के दाम हमारे देश मे तो बढते है, पर चूकि विदेशो मे तो न फुलावट है, न गिरावट, स्पष्ट है कि वहा दाम साधारणतया स्थिर रहेगे—अर्थात् न चढेगे, न गिरेगे। "साधारणतया"—पाठको का ध्यान इस क्रिया-विशेषण की ओर आकृष्ट किया जाता है। अवस्था-विशेष मे—जैसा कि आगे चल कर बताया गया है—एक देश मे दाम गिरने मे दूसरे देश या देशो मे भी मन्दी आ सकती है।

अच्छा, तो हमने कहा कि फुलावट की नीति के कारण अपने देश मे हमारी जिन्सो के दाम बढते है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि हमने फुलावट-नीति धारण की, उस समय हमारे यहा गेहूँ का दाम १ रुपए का १० सेर था। और यह भी मान लीजिए कि उसी जमाने मे हमारे १ रुपए के सिक्के की कीमत किसी एक विदेशी मुल्क मे १ मार्क जितनी थी। इसके माने हुए कि हमारे यहा और वहा, दोनो जगह १ मार्क मे १० सेर गेहूँ मिल सकते थे। (१ रुपया=१ मार्क। १ रुपया=१० सेर गेहूँ। इसलिए १ मार्क=१० सेर गेहूँ।) अब हमारे यहा तो फुलावट की

नीति जारी हो गई, उसके कारण गेहूँ के दाम अन्य जिन्सो के दामो के साथ चढ गए और अब एक रुपए मे केवल ८ सेर ही गेहूँ मिलता है। पर उस विदेश मे तो आज भी वही भाव है जो पहले थे, याने १ मार्क का भाव १० सेर गेहूँ ही है। (इस उदाहरण मे हमने यह मान लिया कि और तमाम स्थिति दोनो मुल्को मे यकसा है, इसलिए जिन्सो के दाम भी, यदि हमारे यहा फुलावट न हो तो यकसा रहते।)

अब मान लीजिए कि हमने उस विदेश मे एक मार्क की कोई चीज खरीदी, उसकी कीमत चुकाने के लिए बदले मे हमने वहा गेहूँ बेचा। अब गेहूँ यहा मिलता है १ रुपए का ८ सेर। वहा भाव है १ मार्क का १० सेर गेहूँ। हमे १ मार्क वहा भेजना चाहिए, क्योकि हमने १ मार्क की वस्तु ली है। तो हमको एक मार्क चुकाने के लिए वहा दस सेर गेहूँ बेचना पडा, जिसका कि हमे यहा स्वदेश में १$\frac{१}{४}$ रुपया देना पडा। इसके माने यह हुए कि पहले जहा १ रुपए की कीमत १ मार्क थी, अब १$\frac{१}{४}$ रुपए की कीमत १ मार्क हुई। दूसरे शब्दो मे हमारे रुपए की दर १ मार्क से गिर कर ८० मार्क रह गई। $\frac{\text{१ मार्क}}{\text{१}\frac{१}{४}\text{ रुपया}}$ = .८० मार्क। अर्थात् २० प्रतिशत कीमत गिर गई।

विदेशी मुल्को में हमारे द्रव्य की कीमत को शास्त्रीय भाषा मे हुण्डी की दर कहते है। जब हमारे चलण की कीमत विदेशो मे बढती है तो हम कहेगे कि हमारी हुण्डी की दर तेज है। हमारे चलण की कीमत गिरी, तो कहेगे कि हुण्डी की दर मन्दी है।

१०	घिसाई
५	व्याज
१०	मुनाफा
१००	

अब मान लीजिए फुलावट-नीति के कारण जिन्सो के दाम बढे और जिस माल का कारखानेदार को पहले १०० रुपया मिलता था उसका अब १२५ रुपया मिलेगा। इसके साथ-साथ, मान लीजिए, कच्चे माल का दाम भी बढा और मजदूरी भी उसी अनुपात से बढी, तो फिर मुनाफे पर क्या असर होगा ? नीचे के तलपट से इसका स्पष्ट अन्दाज लग जायगा।

	पुरानी कीमत रुपया	नई कीमत रुपया
कच्चा माल	५०	६२॥
मजदूरी	२५	३१।
घिसाई	१०	१०
व्याज	५	५
मुनाफा	१०	१६।
	१००	१२५

उपरोक्त तफसील से पता लगेगा कि जहा कच्चे माल और मजदूरी का दाम २५ रुपया प्रतिशतक बढा वहा घिसाई और व्याज मे पुराने और नए खर्च मे कोई फर्क नही पडा। कारण प्रत्यक्ष है। जैसा कि हम पहले बता चुके है, फुलावट और गिरावट के कारण लेन-देन की रकम पर कोई प्रभाव नही पडता। १०० रुपए हमने कर्ज ले रखा था तो आज भी हमे १०० रुपया ही चुकाना है। इसलिए व्याज पर कोई असर नही पडता। और घिसाई पर भी क्या असर पडेगा ? इसलिए मुनाफा जो पहले १० रुपए एक अदद पर था, वह अब १६। हो गया। या तो यो भी हो सकता है कि कारखानेदार की आज यह शक्ति है कि पहले जहा

बाहर की चीज का पड़ना १०० रुपए का था और कारखानेदार मुनाफे को अक्षुण्ण रखते हुए १०० रुपए से कम मे नही बेच सकता था, आज वह विदेशी माल का पड़ता १२५ रुपया होने पर भी १० रुपए का ही मुनाफा रखे तो ११८ रुपया १२ आने मे बेच सकता है।

इस हिसाब से यह सही है कि कारखानेदार का मुनाफा बढ गया, और यदि वह अपने दाम नही घटाता तो मुनाफा १० के बजाय १६। हो गया, याने ६२॥ प्रतिशत बढ गया। पर साथ ही यह भी जानना चाहिए कि जिन्सो के दाम बढने के कारण उस मुनाफे की ताकत ६२॥ प्रतिशत नही बढी। यदि जिन्सो के दाम औसतन सवाए हो गए है, जैसा कि हमने हिसाब लगाया है, तो फिर दाम बढने के पहले जो करामात १३ रुपए मे थी वही आज १६। मे है। मान लीजिए कि पहले १३ रुपए मे १ मन पाट मिलता था और अब पाट के दाम बढ कर सवाए हो गए—अर्थात् १६। हो गए, तो पहले के १३ और अबके १६। रुपए की क्रय-शक्ति मे कोई फर्क नही पड़ा। खैर।

तो अब इस परिस्थिति के दो असर साथ-साथ हुए। एक तो स्वदेशी उद्योग-धधो पर, और दूसरा विदेशी आयात पर और निर्यात पर। स्वदेशी उद्योग-धधो पर अच्छा असर हुआ। विदेशी आयात मुरझाने लगा, और निर्यात पनपने लगा।

सबसे पहले स्वदेशी उद्योग-धधो को लीजिए।

यह स्वाभाविक है कि जब मुनाफा बढता है तो कारखानेदार या माल उपजानेवाले को ज्यादा माल पैदा करने की चाह होती है। ऊपर के हिसाब मे हमने मान लिया है कि मजदूरी भी अन्य जिन्सो के दामो के साथ-साथ बढने लगती है। पर व्यवहार मे ऐसा होता नही। जब जिन्सो के दाम बढते है तो मजदूरी भी जब तक उसी अनुपात से नही बढती तब तक कारखानेदार को हमारी कूत मे भी मुनाफा अधिक रहता है। इसके फलस्वरूप कारखानेदार माल ज्यादा पैदा करने लगता है, कार-खाना बढाने भी लगता है। नए-नए कारखाने भी खुलने लगते है। अधिक लोगो को मजदूरी मिलने लगती है।

१०	घिसाई
५	व्याज
१०	मुनाफा
१००	

अव मान लीजिए फुलावट-नीति के कारण जिन्सो के दाम वढे और जिस माल का कारखानेदार को पहले १०० रुपया मिलता था उसका अव १२५ रुपया मिलेगा। इसके साथ-साथ, मान लीजिए, कच्चे माल का दाम भी वढा और मजदूरी भी उसी अनुपात मे वढी, तो फिर मुनाफे पर क्या असर होगा ? नीचे के तलपट से इसका स्पष्ट अन्दाज लग जायगा।

	पुरानी कीमत	नई कीमत
	रुपया	रुपया
कच्चा माल	५०	६२॥
मजदूरी	२५	३१।
घिसाई	१०	१०
व्याज	५	५
मुनाफा	१०	१६।
	१००	१२५

उपरोक्त तफसील से पता लगेगा कि जहा कच्चे माल और मजदूरी का दाम २५ रुपया प्रतिशतक वढा वहा घिसाई और व्याज में पुराने और नए खर्च मे कोई फर्क नही पडा। कारण प्रत्यक्ष है। जैसा कि हम पहले वता चुके है, फुलावट और गिरावट के कारण लेन-देन की रकम पर कोई प्रभाव नही पडता। १०० रुपए हमने कर्ज ले रखा था तो आज भी हमें १०० रुपया ही चुकाना है। इसलिए व्याज पर कोई असर नही पडता। और घिसाई पर भी क्या असर पडेगा ? इसलिए मुनाफा जो पहले १० रुपए एक अदद पर था, वह अव १६। हो गया। या तो यो भी हो सकता है कि कारखानेदार की आज यह शक्ति है कि पहले जहा

बाहर की चीज का पडता १०० रुपए का था और कारखानेदार मुनाफे को अक्षुण्ण रखते हुए १०० रुपए से कम मे नही बेच सकता था, आज वह विदेशी माल का पडता १२५ रुपया होने पर भी १० रुपए का ही मुनाफा रखे तो ११८ रुपया १२ आने में बेच सकता है।

इस हिसाब से यह सही है कि कारखानेदार का मुनाफा बढ गया, और यदि वह अपने दाम नही घटाता तो मुनाफा १० के बजाय १६। हो गया, याने ६२॥ प्रतिशत बढ गया। पर साथ ही यह भी जानना चाहिए कि जिन्सो के दाम बढने के कारण उस मुनाफे की ताकत ६२॥ प्रतिशत नही बढी। यदि जिन्सो के दाम औसतन सवाए हो गए है, जैसा कि हमने हिसाब लगाया है, तो फिर दाम बढने के पहले जो करामात १३ रुपए मे थी वही आज १६। मे है। मान लीजिए कि पहले १३ रुपए मे १ मन पाट मिलता था और अब पाट के दाम बढ कर सवाए हो गए—अर्थात् १६। हो गए, तो पहले के १३ और अबके १६। रुपए की क्रय-शक्ति मे कोई फर्क नही पडा। खैर।

तो अब इस परिस्थिति के दो असर साथ-साथ हुए। एक तो स्वदेशी उद्योग-धधो पर, और दूसरा विदेशी आयात पर और निर्यात पर। स्वदेशी उद्योग-धधो पर अच्छा असर हुआ। विदेशी आयात मुरझाने लगा, और निर्यात पनपने लगा।

सबसे पहले स्वदेशी उद्योग-धधो को लीजिए।

यह स्वाभाविक है कि जब मुनाफा बढता है तो कारखानेदार या माल उपजानेवाले को ज्यादा माल पैदा करने की चाह होती है। ऊपर के हिसाब मे हमने मान लिया है कि मजदूरी भी अन्य जिन्सो के दामो के साथ-साथ बढने लगती है। पर व्यवहार मे ऐसा होता नही। जब जिन्सो के दाम बढते है तो मजदूरी भी जब तक उसी अनुपात से नही बढती तब तक कारखानेदार को हमारी कूत मे भी मुनाफा अधिक रहता है। इसके फलस्वरूप कारखानेदार माल ज्यादा पैदा करने लगता है, कारखाना बढाने भी लगता है। नए-नए कारखाने भी खुलने लगते है। अधिक लोगो को मजदूरी मिलने लगती है।

इसका प्रभाव बाहर से आनेवाली चीजो पर भी पडता है। चूकि कारखानेदार का मुनाफा बढा है, इसलिए उसमें यह ताकत आ जाती है कि वह मुनाफे को थोडा कम करके भी विदेशी चीजो के मुकाबिले मे अपना माल सस्ता बेच सके। विदेशी चीजो का ऐसी प्रतिद्वद्विता मे टिकना मुश्किल हो जाता है। विदेशी आयात पर इससे बुरा असर पडता है।

इसके विपरीत, निर्यात पर अच्छा असर होता है, क्योकि जब ऊचे पडता की वजह से यहा दाम ऊचा हो गया पर विदेशो मे हमारी चीज का दाम वही पुराना है, तब यहा के उपजानेवाले थोडा सा यहा भाव मदा कर दे तो विदेश मे भाव पुराने दामो से भी सस्ता हो जायगा। और इस तरह विदेशो मे हमारे माल की बिक्री बढेगी। साराश यह कि अपनी मुद्रा की कीमत गिरा देने से हमारे कल-कारखाने, उद्योग-धधे सब पनप उठते है, विदेशी आयात पर प्रहार होने लगता है; विदेशी निर्यात जागने लगता है। इस तरह देश की समृद्धि बढ़ने लगती है।

दर गिरने से लाभ स्थायी या अस्थायी ?

यह प्रश्न हो सकता है कि जरा हुण्डी के हेरफेर से या मुद्रा की कीमत कम कर देने से समृद्धि बढने का क्या वास्ता? वास्ता है। वह इस तरह से।

एक आलसी मनुष्य है, वह न खेत बोता है, न मेहनत करता है। इसलिए दारिद्र्य ने उसके घर पर प्रभाव जमा रखा है। अब किसीने उससे कहा कि हम तुम्हे रोजमर्रा कुछ मिठाई खिलाएगे, कुछ तमाशे दिखाएगे और कुछ अच्छे कपडे भी देगे, बशर्ते कि तुम अपने खेत को मेहनत के साथ जोतो और उसमे जो फसल हो उसका आधा हिस्सा हमे दे दो। वह आलसी मिठाई और अच्छे कपडो के प्रलोभन मे आकर काम करने लगता है, और अन्त में अच्छी फसल तैयार कर लेता है। फसल के आधे हिस्से की आमदनी वह प्रलोभन देनेवाले सज्जन को सौंप देता है। इस सज्जन को तो, उसने जितना मिठाई इत्यादि पर खर्च किया था उसकी पूरी कीमत उस फसल के आधे हिस्से में से वसूल हो जाती है, और उस आलसी को अच्छा खाने-पहनने को मिला, और आधी फसल मिली जिससे उसकी

समृद्धि बढ़ गई। इसके अलावा उसकी आदत भी तो बदली। काम करते-करते वह आलसी कर्मशील बन गया। प्रलोभन देनेवाले सज्जन का कुछ व्यय नहो हुआ, और आलसी कर्मण्य बन गया।

अब कोई कहे कि हुण्डी की दर गिरने और समृद्धि से क्या वास्ता? तो यह भी कहा जा सकता है कि आलसी के मिष्टान्न-भोजन से उसकी समृद्धि का क्या वास्ता? पर बात यह है कि गिरती हुई हुण्डी की दर, या दूसरे शब्दो में, गिरती हुई मुद्रा की कीमत माल उपजानेवालो के दिलो मे एक तरह का उत्साह और तृष्णा पैदा करती है, जो उन्हे ज्यादा काम करने के लिए खदेड़ती है, और इस तरह देश की समृद्धि पर इसका अच्छा असर होता है।

ठीक इसका विपरीत असर गिरावट की नीति का होता है।

हमने यह बताया है कि यह अच्छा असर मुद्रा की गिरती हुई कीमत का होता है। पर एक दफा कीमत गिरा दी गई, फिर भी क्या उसका असर होता है?

होता है, पर आंशिक। हमने पप का पहिया घुमाया और पानी कुए म से निकलने लगा। जब पहिया घुमाना बन्द कर दिया तब पानी भी निकलना बन्द हो गया। इसी तरह जब हुण्डी की दर गिरती ही रहती है तब तो चीजो के दाम भी बढते ही चले जाते है और उससे पैदा होनेवाले नतीजे—जैसे उद्योग-धधो की उन्नति, अधिक माल की पैदाइश, बेकारो को रोजगार, विदेशी आयात को ठेस, निर्यात की पुष्टि इत्यादि अपना प्रभुत्व जमाए रखते हैं। उसी तरह हुण्डी की गिरी हुई दर भी एक जगह आकर जब स्थिर हो जाती है और लोगो को उसकी स्थिरता मे विश्वास आ जाता है, तब गिरती हुई हुण्डी से जो नतीजे पैदा हुए थे वे धीरे-धीरे करके रफा होने लगते हैं—अर्थात् पप में से पानी निकलना धीरे-धीरे बन्द हो जाता है।

पर इसके माने यह नहीं कि हुण्डी गिरा कर फिर स्थिर कर दी तो उसका कोई असर ही नही हुआ। जो पानी कुए से निकल आया उसकी भी तो कोई कीमत है। उस निकले हुए पानी से हमने सिंचाई की,

धान पैदा किया, उससे हम पुष्ट बने। पुष्ट बन कर हमने मेहनत ज्यादा की। उस मेहनत से फिर नई सम्पत्ति पैदा की, और इस तरह से समृद्धि-चक्र जो चला तो फिर चलता ही गया। इस दृष्टि से गिराई हुई मुद्रा की दर का लाभ भी एक दृष्टि मे स्थायी-सा हो गया।

पर यह भी कोई कह सकता है कि फिर हुण्डी की दर गिरने मे इस तरह लाभ होता है तो हम दर को गिराते ही क्यो न जायें? स्थिर करे ही क्यो? इस रामबाण औषधि से अघाना ही क्यो? अफसोस! मकरध्वज के सेवन से शरीर की चपलता अवश्य बढती है, पर वह स्वय मनुष्य की क्षुधा को नही मेटता। और ज्यादा सेवन से तो शरीर का अन्त भी हो सकता है। फिर यदि हम मुद्रा की दर को गिराते ही चले जायँ तो एक समय ऐसा आ सकता है कि जब मुद्रा की साख मे किसीको श्रद्धा ही न रहे और मुद्रा स्वय नेस्तनाबूद हो जाय। और फिर तज्जनित हानि-लाभ भी कहा रहे? जब शरीर ही नही तो प्राण कहा? मुद्रा ही मर मिटे, तो उससे होनेवाले हानि-लाभ कहा रहे? और यदि मुद्रा की कीमत गिरा देना ही एक जादू का डडा हो, जो एक पल मे समृद्धि पैदा कर दे, तो फिर हर मुल्क ही इसका प्रयोग क्यो न करे? और यदि हर मुल्क इसका प्रयोग करने लग जाय तो दो देशो के बीच जो हुण्डी की घटा-बढी से हानि-लाभ होता है वह होने ही नही पाए। दो लकीर पास-पास मे हो, और एक बडी हो, तो दूसरी छोटी कहलायगी। पर यदि बडी को काट कर छोटी कर दी जाय तो, जो पहले छोटी थी वह अब बडी कहलायगी।

हुण्डी गिरने के माने भी तो यही है कि हमने अपनी मुद्रा की दर गिरा दी, अन्य मुल्कवालो ने नही गिराई। ऐसी हालत मे अपेक्षाकृत हमारी मुद्रा सस्ती हो गई। पर यदि दूसरे देशवालो ने भी गिरा दी, तो फिर हमारी हुण्डी की दर दूसरे देशो के मुकाबिले मे नीची नही रही। और ऐसी हालत मे विदेशी आयात-निर्यात पर कोई अच्छा-बुरा असर नही हुआ। बताना तो यह है कि हुण्डी गिरने का असर पूर्णतया स्थायी नही है, एक अश मे स्थायी है। मकरध्वज-सेवन का कुछ तो लाभ शरीर को मिलता ही है। हुण्डी गिराने से समाज की आर्थिक स्थिति को जो एक मर्तबा लाभ मिलता

है उसका स्थायी असर भी रह ही जाता है। ठीक इसके विपरीत, गिरावट-नीति द्वारा मुद्रा की दर चढ़ा कर समाज की आर्थिक स्थिति को हानि पहुँच जाती है, वह भी स्थायी नुकसान कर बैठती है। छाती में जो मेल लगा उसका घाव तो रुझ गया, पर उसका दाग तो रह ही गया, और वह जगह भी सदा के लिए नाजुक बन गई।

कभी-कभी तो ऐसा देखा गया है कि ससार की बडी-बडी ऐतिहासिक घटनाओं की तह में एक छोटी-सी घटना हुई है, जिसको इतिहास लिखने-वालों ने कम महत्व दिया। प्रशिया के फ्रेडरिक दी ग्रेट को महान बनने का मौका यों मिला कि ऑस्ट्रिया का शाहन्शाह मर गया। पर ऑस्ट्रिया का शाहन्शाह भी तो इसलिए मरा कि वह एक रोज कुकुरमुत्ते की तरकारी बहुत परिमाण में खा गया। 'विधि का लिखा को मेटनहारा' यह उक्ति सही है। पर विधि भी जब कोई बडी होनहार को घटने बैठता है तब शुरुआत एक नगण्य चीज से करता है। ऑस्ट्रिया के शाहजादे के खून ने यूरोप में खून की नदियां बहा दी। दुर्योधन और अर्जुन, जब दोनों श्रीकृष्ण के पास महाभारत-युद्ध के लिए सहायता मांगने गए तब यदि दुर्योधन श्रीकृष्ण के सिरहाने न बैठ कर पैताने बैठता, या तो श्रीकृष्ण की सेना न लेकर स्वयं श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में लेता, तो महाभारत-युद्ध का अन्त क्या होता, यह बताना कठिन है।

पर कोलम्बस ने अमेरिका का आविष्कार किया, और नई दुनिया से व्यापार-रोजगार चमक उठा। उसके कारण यूरोप भर में सरसब्जी फैल गई, ऐसा यूरोप के आर्थिक इतिहासज्ञ मानते हैं। अमेरिका की भूमि क्या मिली, यूरोप के लिए तो गडा सोना मिल गया। और केलीफोरनिया में तो सचमुच सोने की खानें मिल गईं जिन्होंने यूरोप की समृद्धि की खूब वृद्धि की। इन सबका यूरोप पर कितनी मात्रा में असर हुआ, यह चाहे न मापा जा सके, पर जो जाहोजलाली की बाढ यूरोप में आ गई उसने उसको सदा के लिए सम्पन्न कर दिया, इसमें कोई शक नहीं।

इसलिए हुण्डी गिरने का असर चाहे अस्थायी हो, पर एक मर्तबा

मिला हुआ सहारा कमजोर शरीर के पनपने मे काफी सहायता पहुचा देता है।

फुलावट—नियंत्रित और अनियंत्रित

फुलावट-नीति के शुभ परिणामो का भी हमने जिक्र किया और अति मात्रा मे उसके बुरे नतीजे का भी वर्णन किया। यहा यह समझ लेना चाहिए कि जहा फुलावट-नीति केवल व्यापार-रोजगार को चमकाने के लिए, उद्योग-धधो को पनपाने के लिए काम मे लाई जाती है, वहा फुलावट स्वल्प मात्रा मे, और नियन्त्रण के साथ, उपयोग मे लाई जाती है।

हम बता चुके है कि जब फुलावट द्रुत गति से अनियन्त्रित होकर चलती है तब ब्याज सस्ता नही, महगा—अत्यन्त महगा हो जाता है। महगा ब्याज भी रोजगार-व्यापार के लिए घातक है। इसलिए स्वेच्छा से जब फुलावट-शस्त्र का प्रयोग होता है तब सारी नीति पर इस हिसाब से नियन्त्रण रखा जाता है कि जिसमे सिक्के की साख मे से लोगो की श्रद्धा न टूटे, लोगो मे इसके सम्बन्ध में भय या घबराहट का सचार न हो, ब्याज की दर साधारणतया ठीक हो और दामो मे तेजी इतनी ही आवे जितनी कि सचालक चाहते हो। इसके माने यह हुए कि ऐसी नीति तो स्वेच्छा से ही काम मे लाई जाती है, और उसी हालत मे काम मे लाई जा सकती है जबकि देशकी सरकार प्रजा का विश्वासभाजन हो, बलिष्ठ हो और देश और परदेश मे उस सरकार और उस देश की पूरी धाक हो। और चूकि यह सारा-का-सारा खेल अपने देश मे उद्योग-धधो को प्रोत्साहन देने के लिए और लोगो मे नई आर्थिक जागृति पैदा करने के लिए खेला जाता है इसलिए यह फुलावट भी स्वल्प मात्रा मे ही होती है।

पर इसके विपरीत, जहा फुलावट अनियन्त्रित होती है—जैसा कि रूस, जर्मनी वगैरह के सम्बन्ध मे हम ऊपर बता चुके है—तब इसका परिणाम दूसरी तरह का होता है। यह सही है कि उस फुलावट मे भी कल-कारखाने बेहद पनपते दिखाई देते है, पर मुद्रा की शक्ति का इस जोर मे ह्रास होता चला जाता है कि वह करोडो का मुनाफा हजारो के मुकाबिले में भी बलहीन

होता है। और दूसरी तरफ सरकार और देश की साख में इतने जोर का धक्का पहुँचता है, कि जिनके पास पूंजी होती है वे तबाह हो जाते हैं। लोग अपना माल-मत्ता, सम्पत्ति आदि बाहर भेजने लगते हैं। परस्पर की साख मे भी विश्वास हट जाता है। अन्तरराष्ट्रों मे देश की साख कौड़ी की रह जाती है। सारा आर्थिक तन्त्र छिन्न-भिन्न हो जाता है।

ऐसी स्थिति अवश्य ही अवाछनीय है, और यह स्पष्ट है कि जान-बूझ कर ऐसी स्थिति को कोई निमन्त्रण नही देता। यह तो मजबूरी से ही आती है। देश का दिवाला निकलने का दूसरा नाम यह उग्र फुलावट है, जिसे राज-दुराजी के जमाने में ही सरकार बलात् बाध्य होकर अपनाती है। सरकार को जब राजतन्त्र चलाने के लिए कर-सग्रह मे भी कठिनाई आने लगती है तब कागज, स्याही और प्रेस की शरण लेकर इस जोर से नोट छापना शुरु करती है कि इस ताण्डव नृत्य को देख कर एक छिन के लिए भी कोई अपने पास नोट रखने की हिम्मत नहीं करता।

८

हम वता चुके है कि चलण का मूल्य स्थिर नही, पर घटता-बढता है। तो भी जन-समाज के मन पर एक ऐसी थोथी और वेवुनियाद छाप पडी हुई है कि चलण का मूल्य स्थायी है। यदि ऐसा नही होता तो जिस निर्भयता के साथ लोग रुपया उधार देते है और सरकारी कागजो मे लगाते है वैसा कभी नही होता। पर मनुष्य तो प्राय वर्तमान का पुजारी होता है, और पुरानी स्मृति कटु भी हो तो उसे भूल जाता है। इसलिए जब तक कोई भयकर युद्ध, विप्लव या आकस्मिक घटना के कारण चलण की कीमत बुरी तरह नही गिरने लग जाती तव तक साधारण मनुष्य को तो पता भी नही चलता कि चलण की कीमत गिरी है क्या ! साधारण फुलावट यदि नियन्त्रित हो तव तो आम जनता को पता भी नही चलता कि पर्दे के पीछे क्या नाटक खेला जा रहा है। तो भी जिन्सो के दामो के आकडो का हम सूक्ष्म अध्ययन करे तो हमे सहज ही पता लग जायगा कि पिछले सौ सालो मे चलण के मूल्य मे घटा-बढी होती ही रही है।

जिन्सो के दामो के आकडे कैसे तैयार होते है इसका सक्षिप्त विवरण भी जान लेना चाहिए। मान लीजिए कि हमारे देश के गरीब किसान अधिकतर गेहूँ, बाजरा, मोट, चना, घी, तेल, दियासलाई, कपडा, गुड, इत्यादि—४० या ५० चीजो का उपयोग करते है। तो आकडे तैयार करने वाले विशेषज्ञ उन सब जिन्सो के दामो का एक गड-पडता निकाल लेते है। वह गड-पडता साधारण तरह से यो निकाला जाता है कि जिस साल को हम बुनियादी साल मानते है उसके गड-पडता का अक सौ मान लिया जाता है। मान लीजिए, सन् १९१४ को हमने बुनियादी साल माना। उस साल मे

गेहूँ का भाव था	५ रुपया मन
जौ का भाव था	४ रुपया मन

तेल का भाव था	२० रुपया मन
घी का भाव था	४० रुपया मन
गुड का भाव था	५ रुपया मन
कपडे का भाव था	४ आने गज

(यह महज उदाहरण है, इसीलिए ४०-५० चीजो के दाम न देकर सिर्फ ६ जिन्सो के दाम दिए है।)

तो हमने उस साल की जिन्सो की कीमत १०० के अक पर कायम कर दी। अब १९४१ मे मान लीजिए—

गेहूँ का भाव था	६। रुपया मन (याने २५ प्रतिशत बढा)
जौ का भाव था	५ रुपया मन (याने २५ प्रतिशत बढा)
तेल का भाव था	१५ रुपया मन (याने २५ प्रतिशत घटा)
घी का भाव था	८० रुपया मन (याने १०० प्रतिशत बढा)
गुड का भाव था	२॥ रुपया मन (याने ५० प्रतिशत घटा)
कपडे का भाव था	६ आने गज (याने ५० प्रतिशत बढा)

तो—

१ वस्तु मे	२५ प्रतिशत	बढा
१ "	२५ "	बढा
१ "	२५ "	घटा
१ "	१०० "	बढा
१ "	५० "	घटा
१ "	५० "	बढा

तो १२५ प्रतिशत कुल बढा, और ६ जिन्सो द्वारा १२५ प्रतिशत को विभाजित किया तो फल यह निकला कि एक जिन्स पर २०⅚ प्रतिशत वृद्धि हुई ($\frac{१२५}{६}$=२०⅚ प्रतिशत)—अर्थात् जिन्सो की दर १०० से बढ कर १२०⅚ हो गई। तात्पर्य यह हुआ कि जिस चलण की क्रय-शक्ति १९१४ मे १०० थी वह १९४१ मे २०⅚ प्रतिशत कम हो गई। दूसरे शब्दो मे, चलण का दाम २०⅚ प्रतिशत गिर गया।

सूचक अंक

इस तरह जिन्सो की दर के जो अक तैयार किए जाते है उन्हे हम "सूचक अक" के नाम से पुकार सकते है। अब १९१५ से १९४० तक के सूचक अक नीचे की तालिका मे देते है। इससे पता लगेगा कि चलण की क्रय-शक्ति मे कितनी घटा-बढी हुई है, अर्थात् चलण की कीमत किस कदर घटती या बढती रही है।

कलकत्ते मे कुछ खास चीजों के थोक दाम

१९१४ = १००

१९१५	औसत	११२	१९२८	औसत	१४५
१९१६	,,	१२८	१९२९	,,	१४१
१९१७	,,	१४५	१९३०	,,	११६
१९१८	,,	१७८	१९३१	,,	९६
१९.१९	,,	१९६	१९३२	,,	९१
११२०	,,	२०१	१९३३	,,	८७
१९२१	,,	१७८	१९३४	,,	८९
१९२२	,,	१७६	१९३५	,,	९१
१९२३	,,	१७२	१९३६	,,	९२
१९२४	,,	१७३	१९३७	,,	१०२
१९२५	,,	१५९	१९३८	,,	९६
१९२६	,,	१४८	१९३९	,,	१०८
१९२७	,,	१४८	१९४०	,,	१२०

पर यह भी सही है कि चलण की कीमत के स्थायित्व मे जितनी श्रद्धा यूरोपवासियों की रही उतनी इस देश के लोगो की न रही। हमारे पिछले इतिहास मे समय-समय पर इतने राज्य बदलते रहे है, इतने दगे-फसाद होते रहे है कि इसके कारण भारतवासियो को स्वभाव मे ही सोने-चादी में मोह ज्यादा रहा। इसके विपरीत इंग्लिस्तान मे, बाहर के आक्रमणो मे

मुक्त रहने की वजह, वहा के लोगो मे काफी अमन-चैन रहा। नतीजा यह हुआ कि स्वभाव से ही चारो ओर शान्ति और व्यवस्था दिखाई देती रही, और इसलिए उन्हे अपनी सरकार की साख मे श्रद्धा भी ज्यादा रही। लदन नाणे का एक वृहत् बाजार बन गया और अग्रेजो की देखा-देखी हमने भी सरकारी कागजो में और तरह-तरह के शेयरो म रुपया लगाना सीख लिया।

चलण की कीमत गिरती आई है

पर बताना तो यह था कि चलण की कीमत स्थायी नही रही, और दूसरी बात यह बतानी थी कि चलण की कीमत गिरा कर अपना उल्लू सीधा करने का तरीका इतिहास मे हर सल्तनत ने—जब वह विपद्ग्रस्त हुई तब—बिना किसी हिचकिचाहट के अख्तियार किया है। रोम की प्राचीन सरकार ने हजारो साल पहले अपने चलण को अशत खोटा करके अपना खजाना भरा, तभी से हर सल्तनत ने यह पाठ सीख लिया। और चलण के दाम गिरा कर प्रजा की बिना जानकारी के कर-वसूली का यह अद्भुत तरीका मौके-मौके पर हर सरकार ने विपद् के समय अपने लाभ के लिए कामयाबी के साथ आजमाया।

बात यह है कि सिक्का जैसा भी हो, अच्छा या बुरा, उसके चलण का सपूर्ण अधिकार तो हर देश की सरकार के पास रहता है। और इस अधिकार का दुरुपयोग करके भी यदि कोई सल्तनत अपना दिवाला दबा सके और राज्यच्युत होने से अपने-आपको बचा सके तो कौन ऐसी सयमी सल्तनत हो सकती है जो इस अधिकार का दुरुपयोग करने के लोभ का सवरण कर सके? इसलिए जहा किसी सल्तनत पर आफत आई, कोई बडा बलवा होने को है या कोई बडा युद्ध छिड गया और धन की बडी राशि की जरूरत आ पडी और प्रजा सीधी तरह से देने को तैयार नही, यदि जबरन लिया जाय तो क्राति की आग धधक उठती है, लोगो की रही-सही सहानुभूति भी गायब हो जाती है, तो ऐसे विकट समय में सबसे सीधा और सहज मार्ग कर-वसूली का यही रह जाता है कि नोट छापे जाओ

और उसीसे अपना खर्च चलाए जाओ। धन की जरूरत पडी और सीधी अगुली से घी न निकला तो फिर चलण के दाम गिरा कर टेढी अगुली से —चाहे वह फिर अधिकार का दुरुपयोग ही क्यो न हो—घी निकाला!

पर एक बात और है। चलण के दाम गिराने मे ऐसी विपद्ग्रस्त सरकार का तो स्वार्थ रहता ही है, पर प्रजा के एक दल-विशेष की भी सहानुभूति रहती है। हमने पहले बताया है कि चलण के दाम गिरने से कर्जदार और बधी मालगुजारी देनेवाले और अन्य ऐसे लोग, जिनका दायित्व बधी हुई रकम मे हो, उन्हे लाभ होता है। इसलिए ऐसे सब लोग चलण के दाम गिरने के स्वभाव से ही पक्षपाती होते है, और विपद्ग्रस्त सरकार को तमाम ऐसे लोगो की सहानुभूति अपने आप मिल जाती है। प्रख्यात अर्थ-शास्त्री श्री केयन्स ने सच कहा है —

"चलण का मूल्य जब गिरता है तब उसका लाभ केवल सरकार तक ही सीमित नही रहता। किसान, कर्जदार और अन्य लोग, जिन्हे अपने-अपने क्षेत्र मे एक निर्धारित रकम देनी पडती है—मसलन व्याज या माल-गुजारी इत्यादि—वे सब-के-सब उस लाभ मे शरीक हो जाते है। जैसे आर्थिक क्षेत्र मे आजकल व्यापारी लोग समाज के एक रचनात्मक और क्रियात्मक अग माने जाते है, वैसे ही प्राचीन समय मे किसान इत्यादि एक विशिष्ट अग माने जाते थे, और सल्तनत पर इनका प्रभाव तो पडता ही रहता था। कोई भी सासारिक परिवर्तन, जो द्रव्य के मूल्य को ठेस पहुचाता था, वह नए आदमियो के लिए एक रसायन का काम कर जाता था। यह परिस्थिति पुराने लोगो की दौलत का नाश करके नए लोगो के पास दौलत ला देती थी। जिन्होने धन सग्रह करके रखा था उनका खातमा करके व्यवसायशील लोगो को यह परिस्थिति सहायक हो जाती थी। कुदरत का यह खेल ऐसा लगता है मानो सग्रह और क्रिया के बीच के सग्राम मे द्रव्य के मूल्य का गिरना क्रिया का पक्ष लेना रहा हो। द्रव्य के मूल्य के गिरने की प्रवृत्ति ने बपौती धन और उस पर चक्रवृद्धि व्याज खानेवाले इन्सान की खासियत पर काफी आक्रमण किया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि बपौती सपत्ति को अकर्मण्य होकर भोगने की वृत्ति को इसने जबरदस्त धक्का मारा।

इस परिक्रिया ने हर पीढ़ी को बपौती सम्पत्तिके उत्तराधिकार से एक तरह से वंचित-सा कर दिया। जो हो, विपद्ग्रस्त सरकार की जरूरतें और कर्ज-दार वर्ग की आवश्यकताएं, इन दो प्रभावों ने मिल कर, कभी एक तो कभी दूसरी शक्ति ने, द्रव्य के मूल्य का लगातार घटाना जारी रखा है। यह क्रिया ईसा के ६०० साल पहले, जब पहले-पहल सिक्का चला, तभी से न्यूनाधिक रूप से चलती आ रही है।"

फुलावट का यह एक दिलचस्प पहलू है। किस तरह समाज की भिन्न-भिन्न श्रेणियों का स्वार्थ सिक्के के मूल्य के साथ बंधा है, किस तरह जान-बूझ कर समाज की कुछ श्रेणियां चलण के मूल्य को गिरा देने के पक्ष में रहती हैं और असाधारण समय में लुढ़कती हुई सल्तनत के लिए भी चलण का मूल्य गिराना कितना उपयोगी शस्त्र है, यह ऊपर के कथन से जाहिर होता है।

६

फुलावट एक तरह का कर—प्रच्छन्न कर है, यह कम लोग जानते है। पर यह ध्रुवसत्य है कि एक कमजोर सरकार भी, जिसके कर लगाने के अन्य सब साधन सूख गए हो, और जिसके लिए कोई भी कर उगाहना असभव-सा हो गया हो, इस अन्तिम शस्त्र का उपयोग करके प्रच्छन्न कर उपार्जन कर सकती है। इस प्रच्छन्न कर का यह मजा है कि कोई कितना ही सरकार का विरोधी क्यो न हो, वह भी इस कर से बच नही सकता। इस पहलू को कुछ और विश्लेषण के साथ समझाने की जरूरत है।

जहा हमने "द्रव्य परिमाण मत" का जिक्र किया है वहा यह बतला दिया है कि अन्य सब स्थिति समान रूप से वर्तती हो तो जितना ही चलण मे हम द्रव्य का अधिक प्रवेश करावेगे उसी अनुपात से द्रव्य का मूल्य गिरेगा और जिन्सो के दाम चढगे। इसका फिर एक उदाहरण दे देना अच्छा होगा।

मान लीजिए कि सामान्य अवस्था में हमारे यहा २५० करोड रुपए के नोट चलण मे है, जिनकी सोने की कीमत १० करोड तोला सोना है। (एक तोला सोने की कीमत=२५ रुपए। इसलिए १० करोड तोला सोना×२५=२५० करोड रुपए) तो यदि हमने चलण मे २५० करोड रुपए के नोट और छाप कर डाल दिए, तो भी सोने की कीमत तो वही १० करोड तोले की रहेगी। पर चूकि चलण में नोट अब ५०० करोड के हो गए, इसलिए जहा पहले २५० करोड रुपए के नोटो की कीमत १० करोड तोला सोना थी, अब ५०० करोड रुपए के नोटो की कीमत १० करोड तोला सोना रही—अर्थात् नोटो की सोने की माप में जो कीमत पहले थी उससे आधी हो गई। इसके माने यह भी हुए की जिन्सो की कीमत दुगुनी हो गई—अर्थात् नोटो का चलण दुगुना हुआ, उसके अनुपात से नोटो का मूल्य तो आधा रह गया, पर जिन्सो का मूल्य दुगुना हो गया।

अब सरकार को जो नए २५० करोड रुपए नए नोट छापने के कारण हासिल हुए वह सारा-का-सारा धन उन लोगो की जेब से निकला, जिनके पास चलण की धरोहर थी—अर्थात् ऐसे लोगो की जेब से निकला जो रुपया उधार देने का काम करते थे—जैसे बैंक, साहूकार इत्यादि, या तो जिन्हे जेब-खर्च के लिए भी अपनी जेब मे कुछ नोट रखने पडते थे। इस २५० करोड की क्रय-शक्ति अवश्य ही पहले के मुकाबिले में घट गई, क्योकि जिन्सो के दाम जो चढ गए। पर जब फुलावट-नीति पहले-पहल शुरु होती है तब लोगो के अज्ञान के कारण जिन्सो के दाम अचानक नही चढ जाते, और इसलिए नए २५० करोड की क्रय-शक्ति भी शुरु-शुरू में पहले से बिल्कुल आधी शायद न होगी। अब सरकार इस तरह से यदि २५० करोड का कर उगाहती तो सैकडो झमेले होते, पचासो तरह का विरोध होता, कर-कानून बनाना पडता। इसके विपरीत, इस तरह से चुपचाप नोट छाप कर चलण में प्रवेश करा देने से सरकार ने चुपचाप अपना काम बना लिया।

इस कर से बचना असंभव-सा है

कोई कह सकता है कि क्या इस कर से कोई बच भी सकता है? हा, कल्पना में बच सकता है, पर व्यवहार मे शायद ही। आखिर यह कर उसी की जेब से निकलता है, जिसके पास द्रव्य की धरोहर हो। जैसा कि हम पहले बता चुके है, यह कर एक तो इस तरह के लोगो की पाकेट से निकलता है जो उधार रुपया देते है; दूसरे, ऐसे लोग जिन्हे क्रय-विक्रय के लिए रोजगार-धंधे के लिए कुछ-न-कुछ रुपया तो सिलक मे रखना ही पडता है, उनकी जेब से भी यह कर निकलता है।

अब ये दोनो तरह के लोग कर से इस तरह बच सकते है कि उधार देनेवाले तो उधार देना बन्द कर दे, घर मे जवाहरात इत्यादि रख छोडें, और क्रय-विक्रयवाले नोट का व्यवहार तक करना छोड दे। पर यह नामुमकिन है। सूद पर उधार देनेवाले शायद उधार देना बन्द करके अपना धन जिन्सो में रोक दें, पर नित्य की खरीद-फरोख्त के लिए रुपए

का व्यवहार बन्द करना, यह दवा मर्ज से भी कहीं ज्यादा कष्टप्रद है। हम गहरे उतरने पर देखेंगे कि रोजमर्रा की खरीद-फरोख्त के लिए जो रुपया हम उपयोग में लाते हैं उसके कारण हर व्यक्ति पर यह नई तरह का कर इतनी कम मिकदार में पड़ता है कि बजाय इसके कि वह रुपए का व्यवहार बन्द कर दे, एक नागरिक इस कर को अदा करना अधिक पसन्द करेगा।

हम एक अन्तिम सीमा का उदाहरण ले लें। मान लीजिए सरकार चलण में इतना द्रव्य प्रविष्ट करती है कि जिसके कारण हर महीने द्रव्य का मूल्य करीब आधा ही रह जाता है। अब यदि रोजमर्रा के व्यवहार के लिए हर मनुष्य दो दिन से ज्यादा फरोख्त किए हुए माल का रुपया अपने पास नहीं रखता, तो इसके माने यह हुए कि रुपए की एक महीने में १५ बार पलटाई हुई—अर्थात् १५ बार भिन्न-भिन्न कामों के लिए उसी रुपए का उपयोग हुआ। द्रव्य का मूल्य गिरा एक महीने में ५० प्रतिशत। रुपए की पलटाई हुई एक महीने में १५ बार। तो ५०—१५=३ ३३। अर्थात् हर सौदे की लेवा-बेची पर ३ ३३ प्रतिशत कर पड़ा। याने, १०० रुपए में जिस सौदे को खरीदते उसके १००+३ ३३, अर्थात् १०३ ३३ रुपए असल में आपको देने पड़े। यह कर असाधारण जमाने के लिए इतना कम है कि केवल इससे बचने के लिए ही कौन रुपए का व्यवहार बन्द करेगा?

इसलिए, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस कर से अत्यन्त विरोधी भी बच नहीं सकता, और निकम्मी-से-निकम्मी सरकार भी यह कर उगाह सकती है। असल में तो इस शस्त्र का उपयोग भी वही सरकार करती है, जिसका दिवाला निकलने जा रहा हो। हां, अल्प मात्रा में, और नियंत्रण के साथ, तो उद्योग-धंधों को पनपाने के लिए, जैसा कि पहले बता चुके हैं, हर अच्छी सरकार भी फुलावट-नीति को समय-समय पर काम में लाती है।

पर यह भी सही है कि जिस तरह हर चीज की सीमा होती है वैसे ही इस शस्त्र की करामात के बारे में भी कहा जा सकता है। जब साख में लोगों की कोई श्रद्धा नहीं रहती तब लोग महज खरीद-बिक्री के लिए, और

भी भी अत्यन्त कम समय के लिए ही, अपने पास नोट रखते हैं। नतीजा यह होता है कि चलण को व्यवहार मे लानेवाले इतने कम हो जाते हैं कि फिर हजारो मन नोट छाप कर चलण मे प्रविष्ट करने पर भी कोई लम्बी रकम सरकार को हासिल नहीं होती। इसलिए इस शस्त्र की धार भी अत मे करीब-करीब भूठी-सी पड जाती है।

ऐसी भयकर फ्लावट का एक परिणाम और होता है। सरकार का कर्ज तो अपने-आप चुक जाता है। जब द्रव्य का मल्य इतना गिर जाय कि रुपया एक कौडी का भी न रहे तो, फिर हजारो-अरबो का देना-पावना भी केवल हिसाव-बहियो की शोभा की चीज रह जाता है, और इस तरह सरकार का कर्ज अपने-आप रफा हो जाता है। चूकि सारा-का-सारा यह कर द्रव्य के धरोहरधारी की जेब से निकला, इसलिए इसे हम यदि पूजी-कर की भी उपमा दे तो यह अनुपयुक्त उपमा न होगी। पर यह पूजी-कर घुमाके नाक पकडने-जैसी चीज है। सीधे रास्ते से पूजी-कर लगाने मे मनुष्य शास्त्रीय विधि का उपयोग कर सकता है। पर लुढकती हुई सल्तनत मे सीधा मार्ग अख्तियार करने की हिम्मत कहा? इसलिए यह अशास्त्रीय और भद्दा मार्ग ऐसी विपद्ग्रस्त सरकार के लिए ज्यादा आसान होता है।

हमने अबतक फुलावट-नीति की चर्चा की। उससे पाठक के दिल पर यही असर होगा—और वह स्वाभाविक है, क्योंकि सारे विवेचन मे ध्वनि भी वही निकलती है—कि फुलावट या गिरावट की क्रिया का सचालन केवल सरकार या नोट-प्रसारक बैंक के हाथ में ही रहता है। किन्तु यह बात अशत ही सही है। हद दरजे की भयकर फुलावट या गिरावट का सचालन तो अवश्य ही या तो सरकार कर सकती है या उसके इशारे से नोट-प्रसारक बैंक। पर, एक सीमा के भीतर, फुलावट या गिरावट अन्य बैंक या अन्य साहूकार भी पैदा कर सकते हैं।

हमने बतलाया है कि धन का प्रतीक मुद्रा, मुद्रा का प्रतीक नोट और नोट का या मुद्रा का प्रतीक चेक या हुडी हो जाती है। जिस आसामी की साख अच्छी है उसकी हुडी भी धन ही है। फुलावट या गिरावट नोटो के अधिक विस्तार या सकोच से पैदा होती है, क्योंकि नोट धन के प्रतीक है। तो उसी तरह चेको और हुडियो-द्वारा भी तो धन का प्रसार या सकोच किया जा सकता है, क्योंकि यह भी तो धन के प्रतीक हैं। वह इस तरह होता है—

मान लीजिए एक बैंक है या एक साहूकार है। उसके पास रुपया सिल्क में नकद पडा है, अथवा, सरकारी कागजो में, कम व्याज मे रुका पडा है। न तो वह अक्रिय रकम किसी तरह के वाणिज्य-व्यवसाय मे लगती है, न लेन-देन में काम आती है। उधार लेनेवालो की कमी नही, पर उन्हे बैंक या साहूकार की उस अक्रिय पूजी से कोई लाभ नही मिल रहा है। अब व्यापार को पनपते देखकर पूजी के स्वामी उस बैंक या साहूकार की रुपया उधार देने की इच्छा होती है। वह व्यापारियो एव अन्य उधार लेनेवालो को रुपया देना शुरू करता है और इस तरह उस धन का उपयोग होने लगता है। अक्रिय रकम अब सक्रिय बन जाती है और जितनी ही रकम सक्रिय बनती जाती है, उतनी ही बाजार में नाणे की बहुतायत होती जाती है।

उधार की फुलावट

इस बहुतायत का वही असर होता है जो नोट-प्रसार के कारण होता है, वल्कि नोट-प्रसार से पैदा हुई फुलावट की अपेक्षा , उधार-द्वारा की गई फुलावट कभी-कभी ज्यादा शक्तिशाली भी होती है । एक करोड रुपए का नया नोट हम चलण मे डालते है और सौ करोड का नोट पहिले से चलण में है, तो साधारणतया यह कहा जा सकता है कि एक प्रतिशतक फुलावट हुई और उसका साधारणतया (यदि और कोई नया मसला उलट-फेर का मौजूद न हो तो) उसी परिमाण मे दामो पर भी असर होना चाहिए। पर उधार-द्वारा एक करोड की पूजी यदि नाणे के वाजार मे प्रवेश करती है तो यह नही कहा जा सकता कि उसका दामो पर असर, एक करोड की फुलावट के अनुपात से ही होगा ।

हम कल्पना कर सकते है कि किसी आसामी के पास एक लाख का गल्ला पडा है जिसपर उस आसामी की रकम लगती है। उसे रुपया उधार न मिलने की वजह से उसका हाथ रुका पडा है। उसे अचानक वैक से रुपए उधार मिल जाते है । अव उसका हाथ खुला हो जाता है । एक लाख रुपए से वह एक तेल का कारखाना खोलता है। उसे अव सरसो की जरूरत पडती है। सरसो वेचनेवाले आसामी के पास मुद्दत से सरसो पडी थी, वह विक नही रही थी। उसे वेच कर सरसोवाला आसामी एक वर्तन वनाने का कारखाना खोल लेता है । उसके लिए तावा खरीदता है । तावेवाले आसामी के पास मुद्दत से तावा पडा था जो विक नही रहा था। तावा विकते ही वह नया माल खरीदने लगता है । नया माल खरीदने से खानवाला काम वढाता है । चारो तरफ से मजदूरो की माग होने से ठलुए मजदूरो को काम मिलता है । वे फिर ज्यादा कपडा खरीदने लगते है, तो कपडे की पैदाइश वढती है। उसके माने है—ज्यादा मजदूरो की माग, ज्यादा रुई की जरूरत । वस, इस तरह से वाजार की रोशनी जो फीकी हो चली थी, फिर चमकती है । उस चमक का दूसरी चीजो पर प्रभाव पडता है । इस तरह उत्पन्न हुई आशावादिता चारो ओर प्रकाश डालती है और थोडी-सी रकम से, बडी-सी फुलावट भी आ सकती है ।

हमने यह उदाहरण इसपर काफी रग चढाकर पेश किया है। ऐसा ही होता है सो नही, पर ऐसा हो सकता है, इतना ही बताना है। गरज यह है कि उधार से पैदा हुई फुलावट कभी-कभी अपने अनुपात से ज्यादा काम कर जाती है, क्योकि उसके पीछे एक भावना रहती है, जो लोगो मे आशा का सचार करके कभी-कभी आवश्यकता से अधिक सरगर्मी ला देती है। इसी तरह जब बैंक अपना उधार सिमेटती है तो आवश्यकता से ज्यादा मुर्दनी भी पैदा कर देती है।

अब हम देख सकते है कि उधार-द्वारा भी धन का विस्तार और सकोच और तज्जनित फुलावट या गिरावट पैदा की जा सकती है।

नोटो के प्रसार और सकोच से जो काम होता है, एक तरह से उधार के विस्तार और सकोच से भी वही काम होता है। दोनो चीजे एक तरह से तो एक ही है, क्योकि दोनो के द्वारा धन का सकोच या विस्तार हो सकता है। पर बैंको या साहूकारो-द्वारा धन का विस्तार अर्थात् धन का चलण मे प्रवेश तभी होता है जब कि व्यापार चलता हो या तो अच्छे चलने की आशा हो, कारखानेवाले कमाते हो, भविष्य उज्ज्वल दिखता हो। रुपया उधार देने मे किसी तरह का खतरा न लगता हो, तभी उधार का विस्तार होता है। साख एक नाजुक चीज है जो लाजवती पौधे की तरह खतरे की आशका होते ही अपने डाल-पात को समेट लेती है। जहा समय अच्छा आया, व्यापार 'पनपने लगा, कि पूजीवाले उधार देने मे बहादुरी दिखाने लगते है, और जहा खतरे की घटी बजी कि वे अपना बोरिया-बधना उठाने लगते है। इस तरह से उधार देनेवाले भी फुलावट और गिरावट के कर्ता बन जाते है। इस फुलावट या गिरावट को साख की फुलावट या गिरावट भी कह सकते है।

पर यह उधार की फुलावट या गिरावट सीमा के भीतर ही रहती है। किसी पूजीवाले के पास अगनित धन तो होता नही, सख्याबद्ध धन ही होता है। इसलिए बैंक या साहूकार-द्वारा की गई फुलावट या गिरावट भी सीमा के भीतर बद्ध रहती है।

११

फुलावट-नीति का हमने विस्तार के साथ जिक्र किया। गिरावट का हमने ज्यादा जिक्र नही किया है। पर शायद यह समझाने की जरूरत नही कि गिरावट का परिणाम हर बात मे फुलावट से उल्टा होता है।

विपद्ग्रस्त सरकार धन उगाहने के लिए—चारो तरफ से उसकी चाल रुक जाती है तब—फुलावट-नीति का आसरा लेती है, या तो स्वल्प और नियंत्रित मात्रा मे फुलावट उद्योग-धधो को पनपाने के लिए भी काम में लाई जाती है।

तो फिर यह प्रश्न हो सकता है कि गिरावट-नीति का दौरदौरा कब होता है ?

गिरावट-नीति आम तौर से ऐसी दशा म प्रयोग म लाई जाती है जब कि सरकार तो व्यवस्थित है और व्यवस्था के साथ विशेष हेतु के लिए उस सरकार ने फुलावट-नीति का प्रयोग किया है, पर मात्रा से कुछ ज्यादा फुलावट हो गई है, और इसलिए, फुलावट का जोश ठडा करने के लिए व्यवस्था के साथ अब कुछ गिरावट-नीति के प्रयोग की आवश्यकता है। ऐसी आवश्यकता पडने पर गिरावट-नीति का उग्र प्रयोग किया जाता है।

पर जैसे फुलावट बेबसी की चीज है, वैसे ही गिरावट इस बात की द्योतक है कि सरकार सहीसलामत है, उसकी ताकत या व्यवस्था मे कोई कमजोरी नही है। गिरावट म तो चलण की साख बढानी पडती है। इसलिए यह काम एक व्यवस्थित सरकार ही, और सो भी विशेष हेतु के लिए ही, कर सकती है। यह इसलिए स्वाभाविक है कि जिस तरह फुलावट असीमित हो सकती है, वैसे गिरावट सीमा के बाहर नही जा सकती।

पर गिरावट-नीति के प्रयोग के उदाहरण ससार के आर्थिक इति-हास मे कम मिलते है। ज्यादातर लोगो ने विवश होकर, या तो देश के उद्योग-धधो की उन्नति के लिए, फुलावट-नीति का ही प्रयोग किया है। इसलिए फुलावट-नीति के गुण-दोषो का हम अच्छी तरह विवेचन कर लें तो काफी है, क्योकि जो हानि-लाभ फुलावट के है उसको ठीक तरह समझने के बाद गिरावट के गुण-दोष अपने-आप समझ मे आ जायगे।

जब गिरावट-नीति का प्रयोग होता है तब फुलावट-नीति से ठीक उल्टे नियमो को काम मे लाया जाता है—अर्थात् किसी भी बहाने नोटो को चलण मे से निकाल कर नोटो की एक बनावटी तगी पैदा की जाती है। सरकारी खर्च के लिए, मान लीजिए, आवश्यकता है एक सौ करोड की और कर-वसूली की गई सवा सौ करोड की, तो जनता के पास से पचीस करोड का धन खेंच लिया गया। और इसी परिमाण मे जनता की क्रय-शक्ति कम हो गई, या तो व्याज ऊचा देकर बिना किसी हेतु के सरकार ने पचीस करोड का ऋण ले लिया और उसे खर्चने के बजाय कोष मे ही रख छोडा। तो इसका भी वही असर पडा—अर्थात् जनता की क्रय-शक्ति कम हो गई।

गिरावट कब वांछनीय है ?

जनता की क्रय-शक्ति को कम करने की यह नीति एक तरह से तो दम घोटने की नीति-जैसी लगती है। इसलिए ऐसी नीति को काम मे लाना तभी वाछनीय हो सकता है जब कि सल्तनत को यह लगे कि जनता समृद्ध है और समृद्धि के नशे मे वित्त-शाठ्य करने जा रही है—अर्थात बूते के बाहर खर्च करने की या व्यवसाय करने की जन-साधारण की प्रवृत्ति बढ रही है, जिसका आगे जाकर परिणाम भयानक हो सकता है। जब सरकार को ऐसी विपत्ति की आशका होती है तभी, जैसे दूध के उफान को ठडा करने के लिए पानी मे छाट दिया जाता है उसी तरह समृद्धि के उफान को—समृद्धि को नही, क्योकि समृद्धि तो ठोस असली चीज है, उफान धोखा है—आवश्यकतानुसार गिरावट

का प्रयोग करके शान्त करना प्रजाप्रिय सरकार का कर्तव्य बन जाता है।

सरकार ने कर-वसूली से या ऋण-द्वारा जो धन जनता से खेंचा उसका आखिर तो व्यय ही करना है। और वह व्यय उस समय किया जाता है जब कि उफान के बाद की सुस्ती के मारे जनता भयभीत होकर अपनी सारी प्रगतियो को बन्द कर देती है, व्यय मे आवश्यकता से ज्यादा कजूसी करने लगती है, व्यापारी मदी से भयभीत होकर अपने हाथ-पाव सिमेट लेते है, बेकारी बढने लगती और जिन्सो के दाम गिरने लगते है। ऐसे समय में जनता को फिर प्रोत्साहन देने के लिए, अतिशय आई हुई मदी को शान्त करने के लिए, ठडे खून मे फिर से गर्मी लाने के लिए, जनता से खेंचा हुआ धन सरकार खर्चने लगती है। और जहा खर्च शुरू हुआ कि फिर ताजगी आने लगती है।

इसके यह माने नही कि हिन्दुस्तान में सरकार ने जो गिरावट का प्रयोग किया वह इसी सिद्धान्त पर किया और जब मदी ने तबाही शुरू की तब उसको रोकने के लिए फिर फुलावट का प्रयोग किया। यहा की कथा तो निराली है।

इस देश में गिरावट-नीति अक्सर इसलिए काम मे लाई गई है कि द्रव्य के परिमाण मे कमी करके उसका मूल्य ऊचा कर दिया जाय।

आगे जब हम भारतवर्ष की हुण्डी का विवेचन करेगे तब गिरावट-नीति से इस देश की जिन्सो के दामो पर, कल-कारखानो पर, समृद्धि पर और आयात-निर्यात पर क्या असर हुआ, गिरावट की नीति को सफल बनाने के लिए कैसे करोडो रुपए बरबाद किए गए, इन सब बातो का विवेचन करने के लिए हमें काफी मौका मिलेगा।

फुलावट मे दामो मे तेजी, गिरावट मे मन्दी, यह हमने बतलाया है। और फुलावट या गिरावट मुख्यतया सल्तनत की मर्जी की चीज है। कम-से-कम सरकार सहीसलामत रहे तो बेबसी की फुलावट को तो हम अनहोनी चीज करार दे सकते है। इसलिए सीमाबद्ध फुलावट या गिरावट सरकार की मन्शा पर अवलम्बित रह जाती है। तो फिर यदि फुलावट मे तेजी और गिरावट से मन्दी होनी है तो दाम करीब-करीब स्थिर रखने के लिए भी कभी फुलावट तो कभी गिरावट की चाभी घुमाई जा सकती है। दूसरे शब्दो मे, दाम स्थिर रखने के लिए भी इन दोनो तरकीबो का उपयोग किया जा सकता है। और दाम स्थिर रहना, यह भी तो समाज के लिए एक बडा लाभ है।

हम पहिले बता चुके है कि दामो की तेजी से माल उपजानेवालो को लाभ और बधी आय वालो को नुकसान है, दामो की मन्दी मे इससे उल्टा। पर इस तेजी-मन्दी के उलट-फेर मे कभी किसीको लाभ और कभी हानि से सामाजिक असन्तोष फैलता है सो बुराई तो है ही, पर इस असन्तोष के साथ-साथ पैदाइश पर भी बुरा असर पडता रहता है। धीरे-धीरे लगातार तेजी चलती है तो पैदाइश बढती रहती है पर फिर, जब दामो मे मन्दी आती है और दाम गिरते है तो कारखानो को ताला लगने लगता है, बेकारी बढती है और इससे समाज मे गरीबी आने लगती है। उससे असन्तोष बढता है। सम्भव है दाम स्थिर हो—कम-से-कम एक परिधि के भीतर—तो शायद इस परिस्थिति मे पैदाइश की वृद्धि भी हो और समाज के विभिन्न फिरको मे दामो की घटा-बढी मे पैदा हुआ असन्तोष भी न होने पाए। इस भावना से प्रेरित होकर कई अर्थशास्त्री दामो की साम्यावस्था की पुष्टि करते है।

दामों की साम्यावस्था

दामो की साम्यावस्था से इतना ही प्रयोजन है कि दामो के सूचक अक (Index Figure) की साम्यावस्था। यह तो नामुमकिन चीज है कि हम सब जिन्सो के अलग-अलग दामो की घटा-बढी को रोक सके। मान लीजिए, एक साल गेहू की फ़सल बहुत बढिया बैठी, और सरसो की फसल मारी गई। तो गेहू की बहुतायत से गेहू की मन्दी और सरसो की कमी के कारण सरसो की तेजी अवश्यम्भावी है। इसे कोई नही रोक सकता। पर अलग-अलग चीजो की तेजी या मन्दी एक बात है, और सम्मिलित दामो की तेजी या मन्दी दूसरी बात। जब सम्मिलित दामो की तेजी या मन्दी आती है तभी समाज के एक अश को लाभ और दूसरे को हानि होती है। इस सम्मिलित दामो की तेजी या मन्दी को गिरावट या फुलावट की नीति-द्वारा काफी दर्जे तक रोका जा सकता है। वह इस तरह—

सल्तनत दामो के सूचक अको का अध्ययन करती रहती है और जहा दाम कुछ बढे कि नोट-प्रसारक बैंक चलण मे से नोटो को निकाल कर धन का सकोच शुरू कर देती है, जहा दाम गिरे कि नोटो का चलण बढाकर विस्तार कर देती है। इस तरह के सकोच-विस्तार-द्वारा दामो को यथासाध्य साम्यावस्था मे रखने की कोशिश की जाती है। और उसमे उसे साधारणतया सफलता भी मिलती है। इस सारी क्रिया को विस्तार से समझाने मे छोटी-मोटी अन्य कई क्रियाओ का भी उल्लेख करना पडेगा। चूकि पाठको के सामने एक मोटी-सी रूप-रेखा देना ही इस पुस्तक का ध्येय है इसलिए ज्यादा ब्यौरे मे उतरना आवश्यक नही है। बतलाना इतना ही है कि फुलावट-गिरावट की नीति से दामो मे तेजी, मन्दी और साम्यावस्था तीनो चीजे लाई जा सकती है।

पर दामो को साम्यावस्था मे रखने के और भी तरीके है। एक तरीका तो खास करके इसी महायुद्ध में बहुतायत से काम मे लाया गया है। यह तरीका नया नही है, पर इतने विस्तार से इसी युद्ध मे काम मे

लाया गया है, इसलिए इसे नया तरीका भी कह सकते हैं। यह तरीका है मालकी उपज, खपत और दामो का नियत्रण करना।

जब हम नोट-प्रसार अधिकता से करके दामो की तेजी को प्रोत्साहन देते है या तो कम करके दामो की मदी को आह्वान करते है तो एक तरह से हम दामो की तेजी या मदी पर सीधा हल्ला न बोलकर ऐसे टेढे-मेढे उपायो का प्रयोग करते है कि जिससे जनता की क्रय-शक्ति कमोवेश होकर चीजो की उपज और खपत पर अपने-आप अच्छा या बुरा असर पडता रहे।

जनता के पास क्रय-शक्ति है और वह उसका उपयोग करके दामो को तेज करना चाहती है। उस क्रय-शक्ति को हमने कर-द्वारा या उधार लेकर अपने कब्जे मे कर लिया। फलस्वरूप अब जनता बाजार से हट जाती है और दाम गिर जाते है। या तो जनता की क्रय-शक्ति का ह्रास हो गया और इसलिए बाजार मे सन्नाटा छा गया। सल्तनत ने नए-नए खर्च करना शुरू करके जनता की क्रय-शक्ति बढा दी और जनता फिर बाजार मे खरीदने के लिए आ धमकी और इस तरह बाजार मे फिर जान आ गई। यह गिरावट या फुलावट का एक तरीका है दामो को घटाने और बढाने का।

पर मान लीजिए कि आपके पास असख्य दौलत पडी है। उसको किसीने नही छीना। पर आप पर यह दफा लगा दी कि आप अमुक परिमाण से ज्यादा किसी भी हालत में किसी भी वस्तु को खरीदने नहीं पावेंगे, और न दूकानदार बिना सरकारी इजाजत के आपको कोई चीज बेचेगा। तो फिर इसका परिणाम भी वही होता जाता है जो चलण की कमी-बेशी से पैदा किया जाता है; क्योंकि आपके पास शक्ति होते हुए भी आप खरीद के हकदार नही रहे। यदि सरकार इस तरह की सारी हलचलो का नियत्रण कर डाले कि अमुक चीज की इतनी पैदाइश होगी, हर मनुष्य अमुक मिकदार ही अमुक चीज की खरीद और खपत कर सकेगा, बेचनेवाले और लेनेवाले अमुक बधे हुए दाम पर ही खरीद और फरोख्त कर सकेंगे और जो कोई सरकारी हुक्मउदूली करेगा उसे

सजा भुगतनी पड़ेगी, तो फिर चाहे किसी के पास असख्य धन क्यो न पडा हो वह धन बेकार-सा बन जाता है और उसकी नियत्रित क्रिया के कारण दामो की घटा-बढी भी नियन्त्रित हो जाती है। अवश्य ही यह दूसरा तरीका, दामो की साम्यावस्था लाने का, ज्यादा सीधा है—आडा-टेढा नही है—पर इसके यह माने नही कि यह ज्यादा वाछनीय है।

नियंत्रण

इस तरीके मे योजना और सचालन के लिए अफसरो और कारिन्दो की एक वृहत् सेना को रोकना पडता है जो रात-दिन इसी ताक-झांक में रहती है कि किसीने इस नियम का भग तो नही किया। इतने नागरिको को केवल योजना और सचालन के लिए रोक रखना, यह भी देश की समृद्धि के लिए एक हानिकर चीज है। आखिर जब तक हर आदमी कुछ पैदाइश करता रहता है तभी तक देश की समृद्धि बढती है। यदि सब लोग सचालन मे, वाद-विवाद मे, सैन्य और पुलिस मे और ऐसे अन्य बेउपजाऊ धधो मे ही लगे रहे, तो फिर समृद्धि कहा ? इस दृष्टि से वही तरीका अच्छा है जिसमे कम-से-कम आदमियो की शक्ति का ह्रास हो। पर युद्ध-काल मे इन सब नियमो की अवहेलना करनी पडती है। ऐसे विकट समय में ध्येय की अपेक्षा साधन गौण बन जाता है। इसलिए ऐसे नियत्रणो का उपयोग विकट काल मे ही वाछनीय माना जाना चाहिए। यद्यपि रूस मे शाति-समय मे भी नियत्रण का उपयोग किया गया है पर रूस के सम्बन्ध में तो यह भी कहा जा सकता है कि वहा शाति का समय आया ही नही—विकट समय का ही दौर-दौरा रहा, और इसलिए वहा नियत्रण-नीति अभीष्ट ही थी। जो हो, दामो की साम्यावस्था नियत्रण से भी लाई जा सकती है, यह अब पाठक समझ सकेगे।

× × × ×

अब पाठको से विदा लेता हू।

(उत्तर भाग)

इतिहास

विषय-सूची

१

अनेक की जगह एक

मुद्रा का अर्थ चिह्न है। बहुत काल पहले जब सिक्कों के लिए चादी या सोने के टुकडो का व्यवहार बढा तब यह आवश्यक हो गया कि वे टुकडे ठीक तौल के हो और प्रमाणस्वरूप उनपर कोई चिह्न बना दिया जाय। इस प्रकार सिक्के का नाम मुद्रा हो चला।

प्रश्न उठता है कि मुद्रासम्बन्धी कला इस देश की अपनी उपज थी या वह कही बाहर से आई ?

यहा के सिक्को की तौल और बनावट दोनो ही निराले ढग के है, और धीरे-धीरे इस मत की पुष्टि होती जा रही है कि भारत ने इस विषय मे न तो किसीकी नकल की, न किसीको अपना गुरु माना। "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" (वैशाख १९९७) मे प्रकाशित स्व० दुर्गाप्रसाद जी का लेख इस सम्बन्ध मे पढने लायक है। आप लिखते है— "मुझे जहा तक खोज करने का अवसर मिला है, इसका प्रमाण मिला है कि भारत मे गौतम बुद्ध से पहले सिक्को का चलन था। उस समय के सिक्के मुझे प्राप्त भी हुए है।" आपके लेख से पता चलता है कि गौतम बुद्ध के समय मे चादी के सिक्को की तौल ४० और २५ रत्ती होती थी। पण, कार्षापण—ये चादी के तत्कालीन सिक्को के नाम थे। सिक्को पर पहले किसी राजा की मूर्ति या उपाधि अकित करने की प्रथा नही थी, केवल कुछ चिह्न—जैसे हाथी, कुत्ता या वृक्ष—ठप्पो से अकित कर दिए जाते थे। ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी से अक्षरो का प्रयोग होने लगा। कुछ समय तक प्राकृत का बोलबाला रहा। फिर देवनागरी या हिन्दी का प्रयोग होने लगा। चादी का रुपया चलानेवाला शेरशाह था। उसके सिक्को पर कूफी के साथ हिन्दी को भी स्थान प्राप्त था। उसके

बेटे इस्लामशाह के समय मे भी यही बात रही। श्रीयुत दुर्गाप्रसाद जी लिखते है — "इनके समय तक तो मुद्राओ पर हिन्दी को बराबर स्थान मिला, पर जब मुगल बादशाह बाबर, हुमायू और अकबर ने अपने अधिकार जमाए और सिक्के चलाए तो उन्होने पहले कूफी अक्षरो मे अपने नाम सिक्को पर लिखे। हुमाय ने पहलेपहल फारसी अक्षरो का प्रचार भारत मे किया। उसके पहले फारसी अक्षरो को, जिसमे उर्दू लिखी जाती है, यहा कोई नही जानता था। . अकबर और उसके बाद जहागीर, शाहजहा, औरगजेब इत्यादि सभी बादशाहो ने फारसी का प्रचार किया। राजकार्य सब फारसी मे होते रहे। सिक्को पर भी फारसी अक्षरो को जगह दी गई और हिन्दी देवनागरी को हटा दिया गया।"

भारत मे सोने के सिक्को का प्रचार भी अत्यन्त प्राचीन काल से है। उन्हे निष्क, पाद आदि कहते थे। कुछ विद्वानो का मत है कि ससार मे पहलेपहल सिक्के के लिए सोने का ही प्रयोग होता था, क्योकि सोना सुलभ था, और चादी दुर्लभ। सोना जहा मिलता था वहा सोने के ही रूप मे, उसे अलग करने के लिए कोई विशेष परिश्रम या प्रयास नही करना पडता था, पर चादी की बात और थी, वह दूसरे खनिज द्रव्यो के साथ इस प्रकार मिश्रित थी कि उसे निकालना या हासिल करना जरा टेढा काम था। कहते है कि उस युग मे सोने से चादी का मूल्य कही अधिक था। क्रमश चादी निकालने के ज्ञान या विज्ञान की उन्नति होती गई और चादी की दुर्लभता मिटती गई। कुछ काल बाद स्थिति बिलकुल बदल गई। चादी सुलभ हो चली, और सोना दुर्लभ। मालूम नही, इस देश मे इनका क्या क्रम रहा। पर इतना निश्चित-सा जान पडता है कि प्राचीन काल मे यहा सोना, चादी की तुलना मे, सस्ता था। फौलर कमेटी के सामने बयान देते हुए अगरेज अर्थशास्त्री मि० मैकलियड ने कहा था —

"अति प्राचीन काल मे भारतवर्ष सुसभ्य था, और पाश्चात्य देश असभ्य या बर्बर। उस समय भारतवर्ष को विदेशी वस्तुओ की कोई माग जरूरत नही थी और वह बिना सोना या चादी पाए, अपना माल बेचने को तैयार न था। पर भारतवर्ष मे सोना और देशो की अपेक्षा सस्ता

था—ईरान मे १३ भाग चादी एक भाग सोने के बराबर होती थी, और भारतवर्ष मे ८ भाग चादी एक भाग सोने के, लेहाजा भारत में बाहर से चादी बहुत बड़े परिमाण मे आया करती, जिसके बदले मे वहा से या तो सोना बाहर जाता या दूसरा माल।"

सोने-चादी के इतिहास मे अमेरिका का पता चलना (१४९२) एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। यूरोपवालो को मानो कुबेर की निधि हाथ लग गई। जहा सोने या चादी का—पर विशेषत चादी का—एक साधारण सोता-सा बहता था वहा, समुद्र नही तो एक जबर्दस्त दरिया लहरें मारने लगा। थोड़े ही समय मे यूरोप की भूमि इनसे परिप्लावित हो चली और वहा के आर्थिक क्षेत्र मे पूरा इनकिलाब नजर आने लगा। 'पानी फलक पर खेत मे दाना बदल गया।'

१४९३ और १८०० के बीच सोने और चादी के उत्पादन का तखमीना यह है—

	सोना (लाख औंस)	चादी (लाख औंस)
१४९३–१६००	२३०	७,४७०
१६०१–१७००	२९०	१२,७२०
१७०१–१८००	६१०	१८,३३०
	१,१३०	३८,५२०

उत्पादन की दृष्टि से १६वी सदी मे सोने और चादी का पारस्परिक अनुपात १ ३२ था—अर्थात् जितना सोना निकला उससे ३२गुना अधिक चादी निकली। १७वी सदी मे यह अनुपात १ ४४ हो चला। पारस्परिक मूल्य का अनुपात पहले १ ११ था— अर्थात् एक भाग सोना प्राय ११ भाग चादी के बराबर होता था। पर यह अब प्राय १ १५ हो चला, और प्राय दो सौ साल तक— अर्थात् १९वी सदी के पिछले भाग तक— यही कायम रहा।

इस देश मे यूरोप से चादी का आयात अब और भी अधिक हो चला। विदेशी कम्पनियो—मुख्यत ईस्ट इंडिया कम्पनी—का इस व्यापार पर

एकाधिपत्य-सा था। उधर बगाल-बिहार मे—और अशत अन्यत्र भी—आर्थिक क्षेत्र के अधिपति थे मुर्शिदाबाद के जगत्सेठ। नवाब ने इन्हे टकसाल का इजारा दे रखा था। लेहाजा चादी के सबसे बडे खरीदार यही थे। ईस्ट इडिया कम्पनी और जगत्सेठ के घराने के बीच के लेन-देन के सबन्ध पर, और तत्कालीन व्यापारिक अवस्था पर, यह अवतरण अच्छा प्रकाश डालता है—

"(१७४६) अक्तूबर मे विलायत से कुछ चादी आई। कौसिल के आग्रह करने पर (जगत्सेठ) महताबराय ने उसे खरीद लिया। इससे कम्पनी को कई लाख रुपए तत्काल मिल गए और कुछ दिनो तक उसे कर्ज लेने की जरूरत नही पडी। पर नया साल शुरू होते ही अवस्था फिर बदली और ढाका के कर्मचारियो ने कौसिल मे रुपया मागा। इसी समय कुछ चादी आ पहुची। कौसिल ने उसे कासिमबाजार भेज दिया। वहा वह महताबराय को बेच दी गई और उसके पेटे कम्पनी को डेढ लाख रुपया मिल गया। पर यह रुपया कासिमबाजार की कोठी को न मिला, इसकी वहावालो ने शिकायत की और कौसिल को लिखा—'ऐसे समय मे, जब कि हमपर कर्ज का इतना भारी बोझ है और कम्पनी की साख इतनी कम रह गई है, आपने यह रुपया मगाकर अच्छा काम नही किया। महाजन पहले से ही अधीर हो रहे थे, मालूम नही, अब वे क्या कर बैठेगे।' कौसिल ने उन्हे लिखा कि हम और चादी शीघ्र ही भेजनेवाले है। चादी कासिमबाजार भेजी गई, पर महताबराय ने उसे उसी दम लेने से इनकार कर दिया।" ईस्ट इडिया कम्पनी के पुराने कागजात से जाहिर होता है कि रुपए की टान उस समय काफी थी और जगत्सेठ ने चादी का दाम घटा दिया था। वह १७४७ के उत्तरार्द्ध मे २४० सिक्के रुपए भर चादी के लिए २०१ रुपए से अधिक देने को तैयार न थे। कम्पनी अपनी चादी उनके हाथ बेचती जाती और बराबर दाम बढाने के लिए आग्रह करती जाती।

पलासी की लडाई मे विजय पाकर ईस्ट इडिया कम्पनी बगाल-बिहार का और धीरे-धीरे सारे भारतवर्ष का, भाग्यविधाता बन बैठी। जगत्सेठो ने इस राज्यक्रांति को सफल बनाने मे प्रमुख भाग लिया था और

कम्पनी की तन-मन-धन से सहायता की थी, पर उन्हें अन्त मे लेने के देने पड गए, और कहना चाहिए कि पलासी के मैदान की रचना कराकर उन्होंने अपने ही विनाश के वीज वोए। आर्थिक और राजनैतिक, दोनो ही क्षेत्रो मे सर्वेसर्वा ईस्ट इडिया कम्पनी वन बैठी और जगत्सेठ उपाधि उस घराने की विपुल सम्पदा और प्रभुता का स्मारक-मात्र रह गई।

पर चादी के सिक्को का प्रचार विशेषत उत्तर भारत मे ही था। दक्षिण मे प्रधानता सोने के सिक्को की थी।

सस्कृत मे चादी को रूप्य या रौप्य कहते है। अष्टाध्यायी मे एक विशेष प्रकार की मुद्रा के लिए "आहत रूप्य" शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसी रूप्य या रौप्य का अपभ्र श रुपया है। १८३५ से पहले इस देश मे तरह-तरह के रुपए प्रचलित थे। इनमे कुछ के नाम-धाम इस प्रकार थे—

१—पुराने सिक्के (१७९३–१८१७)

२—नए सिक्के (१८१८–१८३२)

३—पुराने और नए फर्रुखावादी रुपए, जो फर्रुखावाद, वनारस और सागर की टकसालो मे ढले थे।

४—फर्रुखावादी रुपए, जो कलकत्ते की टकसाल* मे ढले थे।

५—मद्रासी रुपए।

सोने के सिक्को का भी यही हाल था। इस वहुतायत और विभिन्नता मे वडी अडचने पैदा होती थी—लेन-देन, व्यापार के मामले मे यह अनेकता प्रवल वाधक का काम करती थी। ईस्ट इडिया कम्पनी की ओर से जो कलक्टर नियुक्त होते थे उन्हे चादी के कम-से-कम ६० और सोने के कम-से-कम ७२ सिक्के माल या लगान के रूप मे, लोगो से लेने पडते थे। वगाल का यह हाल था कि एक जिले मे जो रुपया चलता वह दूसरे जिले मे नही। यह भी नही कि एक जिले के अन्दर एक ही प्रकार के सिक्के का वोलवाला हो। अलग-अलग चीजो के लिए अलग-अलग सिक्के

---

*कम्पनी की टकसालो में रुपए की ढलाई कल-द्वारा होती थी, इसलिए उसका नाम कलदार पडा।

थे। और घिसाई की मात्रा न्यूनाधिक होने के कारण सिक्को पर वट्टे का हिसाव भी अलग-अलग था। चादी और सोने का पारस्परिक सम्बन्ध सदा एक-सा नही रहता था—कभी सोना सस्ता हो जाता, कभी चादी। इनमे जो चीज सस्ती होती वह तो चलन मे रह जाती, और जो महगी होती वह निकल जाती। इन सारी अडचनो और कठिनाइयो को दूर करने के लिए मुद्रा-सम्बन्धी सुधार आवश्यक था और वह सुधार था अनेकता की जगह एकता का स्थापन। भारतवर्ष का अधिकाश एक राजछत्र की छाया मे आ चुका था, इसलिए वह सुधार अव उतना कठिन भी नही रह गया था। कहना चाहिए कि शासन-सम्बन्धी एकता के वाद मुद्रा-सम्बन्धी एकता आने ही वाली थी।

कम्पनी के डाइरेक्टरो ने इस विषय मे अपना मत प्रकट करते हुए १८०६ मे मद्रास-सरकार को लिखा कि भारतवर्ष का प्रधान सिक्का चादी का होना चाहिए, जिसका वजन १८० ग्रेन (एक तोला) हो और जिसमे १६५ ग्रेन खालिस चादी हो। उनकी राय थी कि प्रधानता चादी के सिक्के की रहे, पर सोने का चलन भी वन्द न हो। साथ ही, वे इन दोनो के वीच कानूनन कोई सम्बन्ध स्थापित करना नही चाहते थे। उनका प्रस्ताव था कि सोने का मूल्य उसके परिमाण और उसकी माग पर अवलम्बित हो।

पर प्राय ३० साल तक मुद्रा-सम्बन्धी एकीकरण का प्रस्ताव प्रस्ताव ही रहा। उसको विधान का रूप मिला १८३५ मे, जिससे दो साल पहले वगाल के गवर्नर-जनरल सारे देश के गवर्नर-जनरल वनाए जा चुके थे और शासनसत्ता पूरी तरह केन्द्रीभूत हो चुकी थी। उस साल २७ मई को सरकार की ओर से यह घोषित किया गया कि भारतवर्ष का जितना भाग ब्रिटिश छत्रच्छाया मे आ चुका है उसमे अव एक ही प्रकार के रुपए का चलन होगा और हर थान मे यह रुपया आजकल के फर्रुखावादी रुपए के समान होगा। इस घोषणा के अनुसार जो विधान वना उसे भारत के मुद्रा-सम्बन्धी इतिहास मे वडे ही गौरव का स्थान प्राप्त है। उसका साराश यह था—

(१) १ली सितम्बर १८३५ से कम्पनी की टकसालो मे एक ही प्रकार

के रुपए की ढलाई होगी। इस रुपए का वजन १८० ग्रेन होगा, जिसमें खालिस चादी १६५ ग्रेन होगी। अठन्नियो और चवन्नियो मे भी इसी हिसाब मे चादी रहेगी।

(२) कुछ खास तरह के सोने के सिक्के भी ढाले जायगे, पर कोई भी आदमी कम्पनी के राज्य मे सोने का सिक्का देने या लेने को वाध्य न होगा।

इस विधान की बदौलत १६५ ग्रेन खालिस चादीवाला रुपया मुद्रा-सिंहासन पर जा बैठा। देन-लेन के लिए सब लोग इसीका व्यवहार करने को वाध्य थे, इसलिए अपने क्षेत्र मे धीरे-धीरे इसका एकछत्र राज्य-सा स्थापित हो गया। भारतवर्ष मे हर प्रकार के मूल्य का मापदण्ड चादी बन गई।

पर साथ-साथ एक हद तक सोने का चलन भी बना रहा। कम्पनी की टकसाल मे सोने का जो प्रधान सिक्का ढलता उसका वजन भी १८० ग्रेन था, जिसमे खालिस सोना १६५ ग्रेन था। इसका मूल्य था १५), और १८४१ का सरकारी आदेश था कि जब तक दूसरा हुक्म जारी नही किया जाता तब तक उनकी ओर से ये सिक्के इसी दर से मजूर किए जायं। पर यह अवस्था चिरस्थायी न हो सकी। कुछ ही वर्ष बाद ऑस्ट्रेलिया और कैलीफोर्निया मे नई खानो के खुलने से सोने का उत्पादन बहुत बढ चला और चादी की तुलना मे वह सस्ता हो चला। नतीजा यह होने लगा कि लोग अपना लगान या कर रुपयो मे न चुका कर मोहरो मे चुकाने लगे। बाजार मे एक मोहर के १५) से कम मिलते, क्योंकि सोना सस्ता हो रहा था— पर सरकारी खजाने मे वह अब भी उसी दर से ली जाती, इसलिए मोहरो की वहा भरमार होने लगी। और सरकार किसीको भी १५) मे मोहर लेने को वाध्य नही कर सकती थी। सरकार चाहती तो चादी की जगह उसी समय सोने को दे देती और सोने को ही मूल्य का मापदण्ड बना देती। पर ऐसा न करके सरकार ने १८४१ के आदेश को ही उठा लिया और १ली जनवरी १८५३ से मुद्रा के रूप में सोने का चलन बिलकुल बन्द हो गया।

सन् सत्तावन के गदर के कारण भारत-सरकार की आर्थिक कठिनाइया

बेहद बढ गई और स्थिति सुधारने के लिए मि० जेम्स विल्सन नामक विशेषज्ञ इंगलेण्ड से लाए गए। यह भारत-सरकार के प्रथम अर्थ-सदस्य थे और इन्हीके समय मे करेन्सी नोट जारी किए गए। यह १८६१ की बात है। उससे पहले नोट जारी करने का अधिकार कुछ खास बैंको को प्राप्त था, पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के बाहर नोटो का प्रचार नही के बराबर था। उस समय कोई भी आदमी नोट देने या लेने को कानूनन बाध्य न था। विल्सन ने नोटो का प्रचार बढाने की दृष्टि से अपनी योजना भारत-सचिव के सामने रखी। उस समय भारत-सचिव सर चार्ल्स उड थे, और उनका इस विषय मे विल्सन से मतभेद था। विल्सन इस मत के अनुयायी थे कि नोटो की पुश्ती के लिए जो कोष या रिजर्व कायम किया जाय उसमे एक हद तक सोना-चादी रखकर बाकी हिस्सा सरकारी कागज के रूप मे रखा जाय। सर चार्ल्स का सिद्धान्त था कि कम-से-कम नोटो की पुश्ती ऐसे कागज मे होनी चाहिए, और रिजर्व का बाकी सारा हिस्सा सोने या चादी का होना चाहिए।

अन्त में हुआ वही जो भारत-सचिव को मजूर था। सन् १८६१ मे नोट-सबधी जो विधान बना उसने करेसी रिजर्व मे सरकारी कागज की हद चार करोड़ पर बाध दी—अर्थात् यहा तक तो नोटो की पुश्ती सरकारी कागज या सिक्यूरिटीज मे की जा सकती थी, पर यहा पहुच जाने के बाद जो नोट निकाले जाते वे रिजर्व मे सोना-चादी रखकर ही। आरम्भ मे रिजर्व म चादी ही चादी रहती थी, १८६५ मे कुछ सोना भी जमा हुआ, पर उसकी मात्रा कम होती गई, और १८७५ मे वह बिलकुल गायब हो गया। फिर १८९८ के बाद करेन्सी रिजर्व मे सोना इकट्ठा होने लगा। आरम्भ मे दस, बीस, सौ और एक हजार के नोट जारी किए गए थे। पाच रुपए का नोट १८७१ मे जारी किया गया, और दस हजार का नोट उसके भी बाद। १८६१ के विधान ने सारे देश को कुछ हल्को मे बाट दिया, जो 'सर्किल' कहलाते थे—जैसे कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और रगून। एक सर्किल का जारी किया हुआ नोट दूसरे सर्किल मे कोई लेने को बाध्य न था, पर सरकारी देना किसी भी सर्किल के नोटो मे अदा किया जा सकता था। नोटो की

लोकप्रियता बढाने के लिए और भी सुभीते कर दिए गए थे। पर नोटो का विशेष प्रचार वर्तमान शताब्दी मे ही हुआ है। समय-समय पर नोट-सम्बन्धी विधान मे सशोधन होते रहे है। इस शताब्दी के पहले ग्यारह साल के भीतर, पाच से लेकर सौ रुपए तक के नोट 'अखिल भारतीय' कर दिए गए—अर्थात वे चाहे किसी भी सर्कल के हो, लोग उन्हे सर्वत्र लेने को कानूनन बाध्य हो गए। इससे नोटो का प्रचार और भी स्वच्छन्दता से होने लगा। नोटो की कागजी पुश्ती की हद भी १८६१ और १९४३ के बीच कही-से-कही जा पहुची है।

जिस समय नोट-सम्बन्धी विधान पहलेपहल बना उस समय यहा रुपए की बडी टान थी। इसके कुछ खास कारण थे। अमेरिका मे उत्तर और दक्षिण के राज्यो के बीच जो भीषण सग्राम हुआ उसका एक नतीजा यह हुआ कि दक्षिण से रुई का निर्यात (एक्सपोर्ट) कुछ समय के लिए बन्द हो गया और यह व्यापार भारतवर्ष को मिल गया। यहा से निर्यात काफी होने लगा और देश का पावना चुकाने के लिए दूसरे देशो के लिए अधिकाधिक चादी भेजना आवश्यक हो गया। पर भारतवर्ष इस समय बाहर कर्ज भी काफी ले रहा था। १८५५-५६ और १८६९-७० के बीच उसने प्राय ९६ करोड रुपए कर्ज लिए। इन दोनो कारणो से चादी का आयात कही-से-कही बढ गया। १८५७-५८ और १८६२-६३ के बीच ससार भरमे जितनी चादी निकली उससे अधिक चादी अकेले भारतवर्ष ने ली। फिर भी यहा रुपए की टान बनी ही रही। ऐसी अवस्था मे लोगो का ध्यान सोने की ओर जाना स्वाभाविक था। १८६४ मे यहा के वाणिज्य-व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाली कुछ सभाओ या चेम्बरो ने प्रस्ताव किया कि मूल्य का मान या स्टैण्डर्ड सोना कर दिया जाय, और सोने के सिक्के चलन मे लाए जाय। इस सम्बन्ध मे कुछ अवतरण उस आवेदनपत्र से दिए जाते है,जो बम्बई के चेम्बर की ओर से बडे लाट के पास भेजा गया था—

"भारतवर्ष का व्यापार तेजी से बढ रहा है, वह आर्थिक और औद्योगिक उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है, पर चादी इस समय उस व्यापार और उस उन्नति मे सहायक न होकर बाधक हो रही है।

"जिस समय चादी को अपनाया गया था उस समय उसका उत्पादन सोने से प्राय दूना था। इसलिए कहा जा सकता है कि उसे अपनाना बुद्धिमत्ता का काम था। पर वह बात अब नही रही। इधर चादी के उत्पादन मे कोई वृद्धि नही हुई है। पर भारतवर्ष की माग बेहद बढ गई है, इसलिए चादी से काम चलाना असम्भव-सा हो गया है।

"ससार मे हर साल प्राय एक करोड़ पौड (स्टर्लिंग) की चादी निकलती है। पर पिछले छ साल म एक भारतवर्ष ने ही हर साल एक करोड पन्द्रह लाख पौड की चादी ली है। पिछले साल तो उसने १ करोड ४५ लाख पौड की ली।

"ऐसी अवस्था मे चादी के मूल्य मे बहुत बडी वृद्धि अनिवार्य है—जिसका अर्थ है भारतवर्ष जैसे देश मे द्रव्य की कमी और दामो का गिरना।

"उधर सोने का यह हाल है कि उसका उत्पादन बहुत बढ गया है और ससार मे जितनी चादी निकलती है उससे कम-से-कम १५० प्रतिशत अधिक सोना निकलता है।

"भारतवर्ष के लिए, और बाकी दुनिया के लिए, चादी काफी नही है, पर सब के लिए सोने की बहुतायत है; इसलिए हमे चाहिए कि हम चादी जैसी कीमती और भारी चीज को छोडकर सोना जैसी सस्ती और हलकी चीज को अपनावे।

"इससे कई लाभ होंगे—चादी का मूल्य अपनी मुनासिब जगह पर बना रहेगा और इस देश के वाणिज्य-व्यवसाय का विस्तार अप्रतिहत गति से होता रहेगा।

"सोने का इस समय जो बहिष्कार है वह न तो सभ्योचित है, न युक्तिसगत है, न स्वाभाविक है। सोना इस समय भी यहा काफी आता है, पर वह सिक्के के रूप मे नही चल सकता। सरकार को चाहिए कि वह शीघ्र-से-शीघ्र चादी की गद्दी सोने को दे दे, जिससे सोने के सिक्को का चलन हो जाय, और उससे जो अनेक लाभ हो सकते है उनसे यह देश वचित न रहे।"

इस विषय पर काफी लिखा-पढी हुई, पर कोई खास नतीजा न निकला।

भारत-सचिव अन्त में यहा तक जाने को राजी हुए कि सॉवरेन या गिनी १०) की दर से सरकारी खजानो मे ले ली जायगी। बाद यह दर १०।) कर दी गई। १८६६ में इस विषय के अनुसन्धान के लिए एक कमीशन भी बैठा। भारत-सरकार के तत्कालीन अर्थ-सदस्य सोने के सिक्के के पक्ष में थे। कमीशन ने भी अपनी राय उसके पक्ष में दी। पर यह सब निष्फल रहा। १८७२ और १८७३ मे अर्थ-सदस्य ने फिर इस सम्बन्ध मे कुछ प्रस्ताव भारत-सरकार के सामने रखे। पर सरकार को प्रस्तावित सुधार स्वीकार न हुआ। १८७४ की ७ वी मई को उसने अपना निर्णय इन शब्दो मे प्रकाशित कर दिया कि—

"सोने के सिक्के को चलन मे लाने की वाञ्छनीयता पर विचार कर सरकार इस नतीजे पर पहुची है कि फिलहाल सोने को मूल्य का मान बनाने के लिए कोई भी कार्रवाई न की जाय।"

फलत यहा चादी के रुपए का ही बोलबाला बना रहा।

अब और देशो की सुनिए। फ्रास मे सोना और चादी दोनो के ही सिक्के चलते थे। पर १८५० से पहले वहा प्रधानता चादी की ही थी। कानूनन एक भाग सोना १५॥ भाग चादी के बराबर था, पर १८०३ और १८५० के बीच बाजार-दर के अनुसार चादी इससे प्राय सस्ती पड़ती थी; १५॥ के बजाय प्राय १६ भाग चादी एक भाग सोने के बराबर होती थी। जहा दो प्रकार के सिक्के चलते हैं वहा सस्ता या घटिया सिक्का तो चलन में रहता है, और महगा या बढ़िया बाहर निकल जाता है। इसीको अर्थशास्त्र में 'ग्रेशम नियम' कहते है, क्योंकि सबसे पहले इसपर प्रकाश डालनेवाले सर टॉमस ग्रेशम नामक अगरेज अर्थ-सचिव थे। फ्रास की ही बात लीजिए। सोने के सिक्के मे कोई भुगतान करता तो वह सिर्फ १५॥ भाग चादी पाने का हकदार होता, पर उसी सिक्के को गलाकर वह बाजार मे बेच देता तो उसे १६ भाग चादी मिल जाती। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक था कि चलन मे सोने के सिक्के निकल जायँ और उनमे चादी के सिक्को की भरमार हो जाय। पर १८५० के बाद गगा उलटी बहने लगी— अर्थात् चादी महगी और सोना सस्ता हो चला। जो अनुपात कानूनन

१ १५॥ था वह अब कुछ समय के लिए प्राय १ १५ हो चला। सिक्के के रूप में १५॥ भाग चाँदी एक भाग सोने के बराबर होती, पर बाजार में अपने असली रूप में बिकने पर १५ भाग का ही एक भाग सोना हो जाता। इस परिवर्तित अवस्था में चलन से चाँदी निकलने लगी, और उसकी जगह सोना भरने लगा। फ्रांस में अब यह प्रश्न उठा कि दोनों डाल पकड़ने की—दो नावों पर पैर रखने की क्या जरूरत? कुछ लोग कहने लगे कि इंगलैण्ड की तरह फ्रांस सिर्फ सोने को अपना ले, कुछ इसका विरोध करते हुए उसकी जगह चाँदी की सिफारिश करने लगे। पर फ्रांस के कर्त्ताधर्त्ता न सोने का परित्याग करना चाहते थे, न चाँदी का। वे कुछ संशोधन के साथ परम्परा को कायम रखना चाहते थे। चलन में चाँदी के सिक्के निकले जा रहे थे, इसको रोकने के लिए उन्होंने कुछ सिक्कों में चाँदी की मात्रा कम कर दी। फिर १८६५ में फ्रांस, बेल्जियम, स्विटजरलैण्ड और इटली की एक सभा इस बात पर विचार करने के लिए हुई, कि इन देशों की मुद्रा-नीति क्या होनी चाहिए। इसके फलस्वरूप लैटिन-मुद्रा-संघ की स्थापना हुई और आपस में यह तय पाया कि संघ पन्द्रह साल तक कायम रहे, और जो देश इसके सदस्य हों वे सब-के-सब अपनी मुद्रा-नीति एक रखें। नीति यह ठहरी कि सोना और चाँदी, दोनों से ही मुद्रा का काम लिया जाय और गौण सिक्कों में चाँदी की मात्रा कम कर दी जाय ताकि किसी के लिए उन्हें गलाकर बेचना लाभदायक न हो। सोने और चाँदी के बीच का अनुपात वही १ १५॥ रखा गया और इस बात की व्यवस्था की गई कि संघ के भीतर एक देश के सिक्के दूसरे देशों में भी चल सकें।

संघ को कुछ हद तक सफलता जरूर मिली, पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी स्थापना से मुद्रा-सम्बन्धी प्रश्न का कोई स्थायी हल हो गया। इसलिए जून १८६७ में, फ्रांस के आग्रह से उस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। उसमें बीस देश सम्मिलित हुए थे, जिनमें केवल दो—इंगलैण्ड और पोर्टुगाल—सोने के अद्वैतवादी उपासक थे। बाकी सब-के-सब या तो द्वैतवादी थे, जो सोना और चाँदी दोनों से ही मुद्रा का काम लेते थे, या जो केवल चाँदी के उपासक थे।

सम्मेलन मे हॉलैण्ड को छोडकर सभी देशो का झुकाव सोने की ओर था, और यह निश्चित हुआ कि धीरे-धीरे सब-के-सब चादी को छोड सोने को अपना लें और सर्वत्र एक ही प्रकार के सिक्को का चलन हो। यहा तक तो इगलैण्ड सबके साथ रहा, पर अब उसके प्रतिनिधि कहने लगे कि हमने जो कुछ कहा है उससे हमारी सरकार पाबन्द नही है और वह अपनी मुद्रा-प्रणाली मे तब तक कोई भी हेर-फेर न करेगी जब तक उसे विश्वास न हो जाय कि यह सब प्रकार से वाछनीय है। उनका यह नया सुर सुनकर लोगो का उत्साह ठडा पड गया और आगे जो कार्रवाई हुई उसमे उतनी एकता नजर नही आई। सम्मेलन की सिफारिशो का तत्काल कोई नतीजा नही निकला, पर इसमे सन्देह नही कि उसने सोने का जो गुण-गान किया उसका, निकट भविष्य मे, कितने ही देशो की मुद्रा-नीति पर खासा असर पडा। १८७० मे फ्रास और प्रशिया (जर्मनी) के बीच सग्राम छिडा। इसमे फ्रास की हार से उसका प्रभाव जाता रहा, और मुद्रा-सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय एकता के प्रश्न को आगे बढानेवाला अब कोई दूसरा राष्ट्र न रह गया। मूल्य के मान के रूप मे तो सोने को कई देशो ने ग्रहण कर लिया, पर अन्तर्राष्ट्रीय सिक्के की बात जहा थी वही रही।

२

चांदी का परित्याग

लन्दन मे चादी स्टैण्डर्ड औस के हिसाब से बिकती है। वहा का स्टैण्डर्ड है १००० भाग मे ९२५ भाग खालिस चादी। जिस समय का वृत्तान्त यहा दिया जाता है उस समय इगलैण्ड की मुद्रा सोने की थी, इसलिए कुल दाम सोने मे ही समझे जाने चाहिए।

१८७३ से पहले कई साल तक लन्दन मे चादी का दाम ६० पेस के करीब था। इधर चादी म कुछ तेजी जरूर आ गई थी, मगर वह इतनी अधिक नही थी कि उसे विशेष महत्वपूर्ण कहा जा सके। लोगो को थोडे समय के लिए कुछ चिन्ता जरूर हुई, मगर वे शीघ्र ही निश्चिन्त हो गए और उनका यह विश्वास फिर दृढ हो चला कि चादी और सोने के बीच का सम्बन्ध स्थिर या स्थायी बना रहेगा।

वास्तव मे १८७३ चादी के इतिहास मे एक नए युग का प्रारम्भिक वर्ष था। यह युग मुद्रा-जगत् मे भूचाल-सा लानेवाला और कई गहन समस्याओ को उपस्थित करनेवाला था। इस भूचाल मे चादी और सोने का पुराना सम्बन्ध छिन्नभिन्न-सा हो गया, और इसका एक नतीजा यह हुआ कि कई देशो ने चादी से अलग कर सोने का पल्ला पकड लिया।

चादी अब अधोमुख हो चली—उसका दाम क्रमश गिरने लगा। यो तो यह गिरना पहले ही शुरू हो गया था, पर १८७३ म जब दाम ५७८ पेस हो गया तब ससार का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इस सम्बन्ध मे तरह-तरह के प्रश्न किए जाने लगे। चादी बराबर गिरती ही गई। हर पाच साल का औसत ले तो १८७६ और १८९० के बीच उसका दाम यह रहा—

१८७६—८०	५२ ३/४ पेंस
१८८१—८५	५० ५/८ पेस
१८८५—९०	४४ ५/८ पेस

दाम गिरते-गिरते १८९३ मे ३७ ११/१६ पेस तक आ गया था।

चादी के यो अधोमुख होने का कारण क्या था ?

इस सम्बन्ध मे प्रधान कारण यह बताया जाता है कि फ्रास पर विजय पाने के बाद जर्मनी ने सोने को अपनाकर चादी को बहिष्कृत कर दिया। यह सारी चादी जब बाजार म बिकने लगी तब दाम का गिरना अनिवार्य हो गया।

जर्मनी को फ्रास से जो हर्जाना मिला वह काफी बडी रकम थी। इसलिए चादी की जगह सोने का चलन करना उसके लिए आसान हो गया। उधर उसकी महत्वाकाक्षा बढी-चढी थी ही। शायद उसका यह भी खयाल था कि सोना बडप्पन का चिह्न है, और कोई भी राष्ट्र तब तक बडो की श्रेणी मे नहीं आ सकता जब तक वह इस विषय मे इगलेण्ड की बराबरी नही करता। १८७१ मे ही उसने इस ओर कदम बढाया और १८७३ मे उसकी ख्वाहिश पूरी हो गई। सोना सिहासन पर आरूढ हो गया और चादी जहा-तहा जाकर खरीदार ढूढने लगी। १८७३ और १८७९ के बीच जर्मनी की ओर से जो चादी ससार मे बेची गई वह ११ करोड औस से ऊपर थी।

पर कुछ विद्वानो का मत है कि अगर भारतवर्ष पर हुडी करके भारत-सचिव करोडो रुपए हर साल विलायत न खैचते रहते तो जर्मनी की चादी इस तरह बिकने पर भी बाजार इतना खराब न होता। इस मत के प्रति-पादको मे मि० मार्टिन उड थे, जो कभी बम्बई के 'टाइम्स आव् इडिया' के सम्पादक रह चुके थे। १८९३ मे हर्शल कमेटी को उन्होने इस विषय पर अपना लिखित वक्तव्य दिया था। उनका कहना था कि जब लन्दन की ओर से इस प्रकार की हुडी की जाती है तब लन्दन के लिए यह जरूरी नही रह जाता कि वह चादी भेज कर भुगतान करे—और उतने करोड रुपए की चादी बिकने और भारतवर्ष जाने से रह जाती है। अगर भारतवर्ष

पर इंगलैण्ड का राजनैतिक प्रभुत्व न होता और इंगलैण्ड इतने करोड़ रुपए इस देश से हर साल न लेता जाता तो चादी की यह हालत न होती।

चादी का दाम गिरता गया और, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, वह दाम सोने मे था। यहा यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि चादी सस्ती हो गई या सोना महगा हो गया? वास्तव मे दोनो ही बात हुईं। सोने का उत्पादन इधर कम हो चला था, और चादी का उत्पादन बहुत बढ गया था। अमेरिका मे पहले चादी कम—बहुत कम—निकलती थी पर, १८५९ के बाद वहा इसकी पैदावार इतनी बढी कि ससार आश्चर्य-चकित हो गया और चादी की समस्या सयुक्त राज्यो की राजनीति का एक प्रधान अग बन गई। १८५६ से १८६० तक वहा कुल चादी ३०९,४०० औस निकली थी। दूसरे पाच वर्षो मे निकली २८,१८०,६०० औस। पर बाद की पैदावार को देखते हुए यह भी बहुत कम था। अकेले १८७४ मे वहा २८,८६८,२०० औस चादी निकली, और १८९२ मे ६३,५००,००० औस।

अमेरिका मे उस समय मुद्रा* सोने की थी, और सोना महगा होने के कारण दाम गिरते जा रहे थे। इसलिए वहा यह आन्दोलन उठा कि मुद्रा-सिहासन पर चादी को भी बैठने का अवसर दिया जाय। इस आन्दोलन के समर्थक चादी के उत्पादक और कृषक थे। यह आन्दोलन तो सफल न हो सका, पर इसके फलस्वरूप अमेरिका की सरकार बाजार मे चादी की बहुत बडी खरीदार बन गई। यहा दो विधानो का उल्लेख आवश्यक है—एक तो ब्लाण्ड-ऐलीसन ऐक्ट, और दूसरा शर्मन ऐक्ट। पहला १८७९ मे पास हुआ और उसके अनुसार सरकार हर साल कम-से-कम २०,६२५,००० औस और अधिक-से-अधिक ४१,२५०,००० औस चादी खरीदने को बाध्य हुई। बारह साल तक सरकार चादी खरीदती गई, पर दाम का

---

*प्राय ऐसे प्रसग में मुद्रा का व्यवहार स्वयसिद्ध मुद्रा के अर्थ में किया गया है।

प्रतीक-मुद्रा चादी या ताबे के अलावा कागज की भी हो सकती थी और हर जगह थी भी।

गिरना रुका नहीं । १८७८ में जो दाम ५२ ५/१६ पेंस था वह १८९० म ४३ ११/१६ पेंस हो गया। इस साल विधान-द्वारा अमेरिका की सरकार प्रतिवर्ष कम-से-कम ५४,०००,००० औंस खरीदने को बाध्य की गई। चादी के बाजार मे इससे थोडे समय के लिए तेजी आई और दाम ५४ ५/८ पेंस हो गया, पर इसे फिर अधोमुख होते देर न लगी और, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, दाम गिरते-गिरते १८९३ म ३७ ११/१६ पेंस पर आ गया।

रुपए मे खालिस चादी थी १६५ ग्रेन, और जब चादी का दाम ६० पेंस था तब एक रुपया प्राय दो शिलिंग* के बराबर होता था। यह रुपए का विनिमय-मूल्य था। ज्यो-ज्यो चादी गिरती गई, वह विनिमय-मूल्य या एक्सचेंज भी गिरता गया। उदाहरणार्थ —

	चादी का औसत दाम	औसत एक्सचेंज
	पेंस	पेंस
१८७२—७३	५९ १/४	२२ ३५१
१८७४—७५	५८ ५/१६	२२ २२१
१८७५—७६	५६ ७/८	२१ ६८५
१८७६—७७	५२ ३/४	२० ४९१

एक्सचेंज गिरने से समाज के एक अग की हानि थी, और दूसरे का लाभ था।

जब एक रुपए मे दो शिलिंग अर्थात् २४ पेंस होते थे तब दस रुपए की समता एक पौंड मे होती थी। उस समय किसीका एक पौंड विलायत मे होता तो वह बैंक को देकर उसके बदले यहा १०) पा सकता था, या किसीको एक पौंड वहा देना होता तो वह १०) यहा देकर बदले मे एक पौंड वहा पा सकता था। जब एक्सचेंज गिरते-गिरते यहा तक आ गया कि

---

*१२ पेंस = १ शिलिंग, और २० शिलिंग = १ पौंड स्टर्लिंग।

रुपए का वजन था १८० ग्रेन (३/८ औंस), जिसमें खालिस चादी थी १६५ ग्रेन। चादी के दाम से रुपए का विनिमय-मूल्य निकालना साधारण अकगणित का काम था।

एक रुपया सोलह पेस के बराबर होने लगा, तब १५) की समता एक पौंड से होने लगी। अब अगर विलायत मे एक पौड जमा हो तो उसके बदले १५) यहा ले लीजिए, और अगर विलायत मे एक पौड चुकाना हो तो उसके लिए यहा १५) दाखिल कीजिए।

एक्सचेज गिरने से इस देश के उत्पादको का—विशेषकर कृषक-समाज का—लाभ था। उनका जो माल विदेश मे बिकता उसका दाम पौड-शिलिग-पेस मे मिलता। फिर इनका रुपए से विनिमय करना पडता। अब अगर रुपए का विनिमय-मूल्य गिर गया, तो पौड के उतने ही अधिक रुपए हुए, जिससे यहा के उत्पादक या किसान विशेष लाभ मे रहे।

हा, जिन्हे रुपया विलायत भेजना था उनकी बात और थी। एक्सचेज ज्यो-ज्यो गिरता, उन्हे अधिकाधिक रुपए देकर पौड लेने पडते। इस श्रेणी मे थे ब्रिटिश कर्मचारी, जिन्हे अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए विलायत पैसे भेजने पडते थे, ऐसे व्यापारी या व्यवसायी जिनका कारोबार यहा था पर जो अपने मुनाफे या अपनी पूजी को यहा से उठाकर वहा ले जाना चाहते थे, और भारत-सरकार, जिसे भारत-सचिव की माग पूरी करने के लिए हर साल कई करोड रुपए जुटाने पडते थे। विलायत मे माल मगानेवाले भी इसी श्रेणी मे थे। मान लीजिए, उन्होने एक पौंड का माल मगाया और हिसाब लगाया कि १३।-) मे उन्हे बैंक से एक पौंड मिल जायगा, इसी बीच एक्सचेज गिर जाने से पौड के पन्द्रह रुपए लगने लगे। लेहाजा उन्हे उस पौंड के लिए १॥=) अधिक देना पडा।

भारतवर्ष के अधिकाश निवासी किसान है, और ऐसे विषय में देश के हानि-लाभ का निर्णय उन्हीके हित की दृष्टि मे होना उचित है। पर किसान न तो शिक्षित है, और न सगठित। इसलिए, जहा उनकी गहरी हानि होती है वहा भी उनसे कुछ करते-धरते नही बनता, और ऐसी दशा मे उनके हित की उपेक्षा होना बिल्कुल स्वाभाविक है। उधर सरकार या अगरेज कर्मचारी या व्यवसायी सुशिक्षित, सुसगठित और सदा सावधान रहनेवाले है। उनकी जहा थोडी भी हानि होती है, वे रोने-चिल्लाने लगते

है और ऐसा आन्दोलन खडा कर देते है कि उनके हित की उपेक्षा असम्भव-सी हो जाती है। रुपए के एक्सचेज के इतिहास मे बार-बार ऐसा ही हुआ है।

जब चादी की दर के साथ रुपए की विनिमय-दर गिरने लगी, तो विलायत पैसे भेजनेवालो को यह स्थिति बहुत अखरने लगी, और उन्होंने इसके खिलाफ हो-हल्ला मचाना शुरू कर दिया। किसान तो बेजबान थे, और उनकी ओर से बोलनेवाले दूसरे लोग भी आज की अपेक्षा बहुत कम थे।

१८७५ मे पार्लमेण्ट की ओर से एक कमेटी इस विषय के अनुसन्धान के लिए बैठी कि चादी के दाम गिरने के क्या कारण है, और भारत तथा इगलैण्ड के बीच के एक्सचेज पर इसका क्या असर पडा है। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट मे विषय-विवेचना तो की, पर भारतवर्ष की ओर से किसी कार्रवाई की सिफारिश नही की।

उसी साल अगरेज व्यापारियो की ओर से भारत-सरकार के पास आवेदन-पत्र भेजे गए कि कुछ काल के लिए चादी की टकसाल सर्वसाधारण के लिए बन्द कर दी जाय। पर सरकार को यह मजूर न हुआ।

तीन साल बाद स्वय सरकार ने यह प्रस्ताव किया कि भारतवर्ष चादी की जगह सोने को अपना ले और सर्वसाधारण को अपनी चादी टकसाल मे ले जाकर उसके सिक्के ढलवा लेने का जो अधिकार प्राप्त है वह उससे ले लिया जाय—अर्थात् मुद्रा सोने की हो और रुपया उसके प्रतीक का काम करे। "दोनो के बीच की दर समय-समय पर सरकार निश्चित करती रहे और जब उसमे यथेष्ट स्थिरता आ जाय तब वह दर बराबर के लिए दो शिलिंग कर दी जाय।" उस समय बाजार मे एक्सचेज की दर १ शिलिंग ७ पेस थी। दो शिलिंगवाले दिन इस समुदाय को अभी तक भूले नही थे।

भारत-सरकार के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए लन्दन मे एक कमेटी बैठी, जिसके सदस्यो मे भारत-सचिव की कौंसिल और ब्रिटिश सरकार, दोनो के ही प्रतिनिधि थे। इस कमेटी ने एकमत हो अपनी राय उस प्रस्ताव के विरुद्ध दी। ब्रिटिश सरकार के अर्थ-विभाग की ओर से

इस प्रस्ताव पर जो टिप्पणी की गई थी (नवम्बर २४ १८७९) उसका कुछ अंश उद्धृत करने लायक है—

"भारत-सरकार का प्रस्ताव है कि चांदी के रुपए को इस समय जो स्थान प्राप्त है वह उससे छीन लिया जाय और उसे प्रतीक-मुद्रा बनाकर उसके और सोने की मुद्रा के बीच एक स्थायी सम्बन्ध सरकारी आदेश से स्थापित कर दिया जाय।

"पर यह व्यवस्था स्वाभाविक न होकर कृत्रिम होगी और इसकी सफलता के लिए सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य होगा। इस प्रकार के हस्तक्षेप से बहुत कुछ बुराई होने का डर है।

"हो सकता है कि इस प्रकार रुपए की दर बांध देने से भारत-सरकार, अंगरेज कर्मचारी और अंगरेज व्यवसायी अपनी-अपनी चिन्ता से मुक्त हो जायं और फायदे में रहें, पर आखिर इसका दाम चुकाना पड़ेगा भारत के किसानों को, जिनके कर्ज का बोझ (गल्ले इत्यादि का दाम गिर जाने के कारण) और भी भारी हो जायगा और जिन्हें लगान या कर चुकाने के लिए (उपज के रूप में) आज जितना देना पड़ता है उससे कहीं अधिक देना पड़ेगा।"

भारत-सचिव ने दिसम्बर १८७९ में भारत-सरकार को लिखा कि इस परिवर्तन की मंजूरी नहीं दी जा सकती।

लैटिन-मुद्रा-संघ के सदस्य-देशों को अपनी हितरक्षा के लिए अब दूसरे ही प्रकार की कार्रवाई करनी पड़ी। चलन से सोना निकला जा रहा था, और उसकी जगह सस्ती चांदी भरती जा रही थी। चूंकि उनके यहां चलन में चांदी के सिक्कों का अनुपात बहुत बढ़ा हुआ था, वे अपनी मुद्रा-प्रणाली से चांदी का पूर्ण बहिष्कार करने में असमर्थ थे। पर आगे के लिए उन्होंने चांदी की टकसाल का दरवाजा सर्वसाधारण के लिए बन्द कर दिया। १८८० तक यूरोप में कोई भी देश ऐसा न रह गया था जहां सर्वसाधारण को यह अधिकार हो कि चांदी टकसाल में ले जाकर उसके सिक्के ढलवा सके। सत्य के मान के सिंहासन पर सिर्फ चीन और भारत-वर्ष में चांदी रह गई थी।

कमेटी-कान्फेस-कमीशन, इनका सिलसिला बना ही रहा। दो अन्त-र्राष्ट्रीय सम्मेलन फिर पेरिस मे हुए, और दोनो का उद्देश यही था कि चादी मे स्थिरता लाने के लिए सब देशो की ओर से कुछ किया जाय। पर सब एकमत न हो सके, इस कारण परिस्थिति मे कोई अन्तर न पडा।

१८७८–७९ से १८८४–८५ तक चादी ५१ पेस के आसपास बनी रही और फलत एक्सचेंज भी स्थिर रहा—

	चादी का औसत दाम पेन्स	औसत एक्सचेंज पेंस
१८७८—७९	५२ ५/१६	१९७६१
१८७९—८०	५१ १/४	१९९६१
१८८०—८१	५१ १/४	१९९५६
१८८१—८२	५१ ११/१६	१९८९५
१८८२—८३	५१ ५/८	१९५२५
१८८३—८४	५० ९/१६	१९५३६
१८८४—८५	५० ५/८	१९३०८

पर १८८६ मे चादी फिर नीचे गिरी और भारत-सरकार ने फिर अपनी कठिनाइयो का उल्लेख करते हुए एक्सचेंज बाधने के उद्देश से एक स्कीम ऊपरवालो के सामने रखी। पर इस बार भी उसका प्रयत्न निष्फल रहा, ऊपरवालो ने उसके प्रस्ताव को नामजूर कर दिया। उन्होने भारत-सरकार के प्रस्ताव की आलोचना करते हुए लिखा—

"इसमे सन्देह नही कि अगरेज कर्मचारी-जैसे लोगो को इससे कुछ लाभ पहुचेगा, पर साथ ही, इससे भारतीय किसान या करदाता की बडी हानि होगी। चादी का दाम गिरने से इधर भारतवर्ष के वाणिज्य-व्यवसाय की बडी उन्नति हुई है, और ऐसा जान पडता है कि जनता को हानि की अपेक्षा लाभ अधिक हुआ है। ऐसी हालत मे भारत-सरकार का हस्त-क्षेप करके रुपए को कृत्रिम मूल्य देना बहुत आपत्तिजनक है। हम इस प्रश्न पर केवल सरकार या उसके अगरेज कर्मचारियो के हित या सुविधा की दृष्टि से विचार नही कर सकते, हमे सब से अधिक तो यह देखना

और विचारना होगा कि चादी के गिरने का भारतीय जनता पर—उसकी व्यापारिक और औद्योगिक अवस्था पर—क्या असर पडा है।"

१८८६ में एक शाही कमीशन, जिसके अध्यक्ष लॉर्ड हर्शेल थे, चादी और सोने के सम्बन्ध की आलोचना के लिए बैठा। इस कमीशन के १२ सदस्यो मे एक सर डेविड बार्बर थे, जो भारत-सरकार के प्रतिनिधि कहे जा सकते थे। पर यह कमीशन भी एकमत न हो सका। छ सदस्यों ने द्वैत मुद्रा-प्रणाली के पक्ष मे राय दी, पर बाकी छ की राय यह ठहरी कि अद्वैत (सोना या चादी) की जगह द्वैत (सोना और चादी दोनो) को ग्रहण करना अन्धकार मे कूदने के समान खतरनाक होगा। इस मत-भेद के कारण कुछ भी न हो सका। भारत-सरकार ने आशा की थी कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौते से द्वैत प्रणाली की स्थापना और चादी के प्रश्न का हल हो जायगा, पर वह आशा निराशा मे परिणत हो गई।

उधर चादी नीचे गिरती ही गई और उसके साथ-साथ हमारी हुण्डी की दर भी —

	चादी का औसत दाम	औसत एक्सचेंज
	पेंस	पेंस
१८८५—८६	४८ ५/८	१९ २५४
१८८६—८७	४५ ३/८	१७ ४४१
१८८७—८८	४४ ३/८	१६ ८९८
१८८८—८९	४२ ७/८	१६ ३७९
१८८९—९०	४२ ११/१६	१६ ५६६
१८९०—९१	४७ ११/१६	१८ ०८९
१८९१—९२	४५ १/१६	१६ ७३३
१८९२—९३	३९ १३/१६	१४.९८५
१८९३—९४	३५ ५/१६	१४ ५४७

१८९१ में सुनने मे आया कि अमेरिका चादी की समस्या पर विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन कर रहा है। भारत-वर्ष मे किसीको इस सम्मेलन से विशेष आशा नही थी। यहा सरकार और

अगरेज व्यवसायी यह सोचने-विचारने लगे कि अगर यह सम्मेलन भी पहले सम्मेलनो की तरह असफल रहा तो हमारा कर्तव्य क्या होगा। भारत-सरकार ने इस सम्बन्ध मे भारत-सचिव को लिखा (जून २१, १८९२) कि —

"अगर यह स्पष्ट हो गया कि इस सम्मेलन ने कोई सन्तोषजनक व्यवस्था होनेवाली नही है, और यह भी स्पष्ट हो गया कि भारतवर्ष और अमेरिका के बीच कोई समझौता नही हो सकता, तो हमारा प्रस्ताव है कि सर्वसाधारण के लिए चादी की टकसाल का दरवाजा बन्द कर दिया जाय और चादी की जगह सोने को गद्दीनशी करने की तैयारी की जाय ।"

सोने और चादी के बीच का सम्बन्ध क्या हो, इस विषय मे अपनी राय जाहिर करते हुए भारत-सरकार ने लिखा कि एक्सचेज को हम उसी रेट या दर के आस-पास रखना चाहते है जो नई व्यवस्था करते समय बाजार मे हो।

२१ जून को लिखते हुए भारत-सरकार ने भारत-सचिव को विश्वास दिलाया कि लोकमत चादी के परित्याग और सोने के अगीकार के सर्वथा अनुकूल है और व्यापारीवर्ग से हमे इस काम मे हर प्रकार की उचित सहायता मिल सकती है।

वास्तव मे यह अत्युक्ति और असत्य था। भारतवासियो के जो सच्चे प्रतिनिधि हो सकते थे वे चादी के परित्याग के घोर विरोधी थे, क्योकि वे जानते थे कि सोने की आड मे उसके पक्षपाती एक्सचेज को ऊचा करना चाहते थे। ब्रिटिश व्यवसायी भी दो दलो मे विभक्त थे। एक दल सरकार के साथ था, और उसके नेता थे मैकीनन मैकजी कम्पनी के मि० जेम्स मैके, जो बाद मे लॉर्ड इचकेप के नाम से मशहूर हुए। इसकी ओर से 'इण्डियन करेन्सी एसोसियेशन' नाम से एक सस्था खड़ी की गई, और पार्लमेण्ट के पास भेजने के लिए एक आवेदनपत्र पर येनकेनप्रकारेण लोगो के दस्तखत कराए जाने लगे। दूसरा दल चादी के परित्याग के प्रस्ताव का विरोधी था, और इसमे राली ब्रदर्स, ग्राहम, जॉर्ज हेडर्सन, ऐण्ड्र यूल, शा वैलेस-जैसे प्रतिष्ठित फर्म सम्मिलित थे। इन लोगो की

ओर से ९ फरवरी १८९३ को गवर्नर-जनरल के पास एक आवेदनपत्र भेजा गया। उसमे कहा गया था—

"हम लोग कलकत्ते के व्यवसाय के बहुत बडे अश के प्रतिनिधि है और प्रान्त भर के उत्पादक और दूसरे व्यवसायी इस विषय मे हमारे साथ है।

"हम लोगो का मत है कि करेन्सी एसोसियेशन रुपए का विनिमय-मूल्य ऊचा कराने और ठहराने के लिए जो प्रस्ताव कर रहा है वह हानिकारक है, जिससे सरकार की अपनी साख और इस देश के वाणिज्य-व्यवसाय को खतरा है।

"हम लोग इस बात के पक्षपाती नही कि रुपए का मूल्य डावाडोल बना रहे या वह बराबर नीचे गिरता जाय, पर हमारे विचार मे उससे भी कही अधिक आपत्तिजनक है उसको पौड-शिलिग-पेस मे कृत्रिम मूल्य प्रदान करना। हम यह कहे बिना नही रह सकते कि करेन्सी एसोसियेशन का बताया हुआ इलाज किया गया तो बीमारी और भी बढ जायगी और तरह-तरह के उपद्रव होने लगेगे।

"हम लोग अनुभवी व्यापारी होने का दावा कर सकते है, और इस हैसियत से हम करेन्सी एसोसियेशन के अध्यक्ष के इस कथन का खडन करना चाहते है, कि चादी के गिरने से इस देश के व्यापार को बडा धक्का लगा है और यहा ऐसी मन्दी आ गई है जैसी पहले कभी न थी। वास्तव मे जो मन्दी है उसके कारण और ही है।

"हम जानते है कि सरकार की आर्थिक स्थिति चादी या एक्सचेंज के गिरने से चिन्ताजनक हो गई है—और इससे जिन कर्मचारियो को इससे नुकसान पहुचा है उनसे हमारी पूरी सहानुभूति भी है। पर स्थिति को सुधारने के लिए न तो यह आवश्यक है, न वाछनीय, कि हम अपनी मुद्रा-प्रणाली को ही—जो हमारे वाणिज्य-व्यवसाय का आधार है और जिससे इस देश की धन-सम्पदा इतनी बढी है— बिल्कुल बदल दे।"

ऊपर जिन फर्मो के नाम दिए गए है उनके अलावा उस आवेदनपत्र पर ग्रिन्डलें कम्पनी, हागकाग शघाई बैकिग कारपोरेशन, ग्लाड सार्टर,

आॅक्टेवियस स्टील, ग्रामर लॉगी, जेम्स डफस, डेविड मैसून ऐड कम्पनी आदि के भी हस्ताक्षर थे।

भारतीय सस्थाओं की ओर से भी टकसाल बन्द करने के प्रस्ताव का विरोध किया गया। काग्रेस के मत का उल्लेख हम पीछे करगे, यहा इतना ही कहना पर्याप्त समझते है कि कलकत्ते की इण्डियन एसोसियेशन और पश्चिम भारत की प्रमुख सस्था इण्डस्ट्रियल एसोसियेशन ने भी उस प्रस्ताव का घोर विरोध किया। इण्डियन एसोसियेशन ने अपने वक्तव्य मे ठीक ही कहा—

"भारत-सरकार की जो आर्थिक स्थिति हो रही है उसे सुधारने का सही तरीका है फौजी खर्च मे कमी करना, जो रकम इगलैण्ड मे खर्च की जाती है उसको घटाना, अगरेज कर्मचारियो की सख्या कम करके उनकी जगह भारतवासियो को भरती करना, और—आवश्यक हो तो—ऐसी विदेशी वस्तुओं पर हलका-सा कर लगा देना, जो यहा न तो जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए आती है, न इस देश के उद्योग-धन्धो की तरक्की के लिए।"

वास्तव मे सरकारी कर्मचारी करेन्सी एसोसियेशन से शिखण्डी का काम ले रहे थे। पर वे उतने मे ही सन्तुष्ट न हुए। उनकी ओर से, और भी जितने उपायो से आन्दोलन किया जा सकता था, किया गया। ३१ जनवरी १८९३ को एक डेपुटेशन बडे लाट (लॉर्ड लैन्सडाउन) से भी मिला। उनके साथ सरकार की हमदर्दी जाहिर करते हुए बडे लाट ने यह सूचित किया कि यद्यपि सारा विषय उस समय विचाराधीन था तथापि भारत सचिव के आज्ञानुसार यह निश्चित हो चुका था कि फिलहाल जो कर्मचारी छुट्टी लेकर विलायत जायगे उनको वेतन और भत्ता १६$\frac{3}{4}$ पेंस की रेट से मिलेगा। बाजार-दर उस समय १४$\frac{9}{32}$ पेंस थी।

सरकार की हमदर्दी और भी आगे गई। टकसाल बन्द हो जाने के बाद उसने गोरे और अधगोरे कर्मचारियो को एक खास तरह का भत्ता देना मजूर किया, जो एक्सचेंज गिरने के कारण होनेवाली क्षति की पूर्ति के लिए था। यह भत्ता कई साल तक मिलता रहा। बाजार मे वास्त-

विक एक्सचेज रेट और १८ पेंस के बीच जो फर्क होता वह उन्हे सरकार की ओर से मिल जाता, जिससे वे साल मे १००० पौड तक विलायत भेज सके। जिन्हे इतना न भेजना पडता वे भी भत्ता पाने के हकदार होते। हर साल इसमे सरकार का एक करोड रुपए से अधिक खर्च होता रहा। कांग्रेस बराबर इस भत्ते का विरोध करती रही।

१ सितम्बर १८९२ को भारत-सरकार के प्रस्तावो पर विचार करने के लिए एक करेन्सी-कमेटी की नियुक्ति हुई। इसके अध्यक्ष थे लॉर्ड हर्शेल, (जो उस समय लॉर्ड चान्सलर थे) और इसके बाकी सदस्यो में मि० कर्टनी, सर आर्थर गाडले, जनरल स्ट्राची आदि थे।

इसी बीच वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी बेल्जियम की राजधानी मे बैठा। पर जिस राह और सम्मेलन जा चुके थे उसी राह यह सम्मेलन भी गया। इसकी असफलता का एक नतीजा यह हुआ कि चादी की टकसाल बन्द करानेवालो के आन्दोलन मे और भी बल आ गया।

उधर हर्शेल कमेटी की बैठके लन्दन मे होती रही और गवाहिया गुजरती रही। उन गवाहो मे एकमात्र भारतवासी प्रात स्मरणीय दादाभाई नौरोजी थे, और उन्होने भारत-सरकार के प्रस्ताव का विरोध ही किया। पर उनका साथ देनेवाले कई अगरेज गवाह भी थे, जिनमे राली ब्रदर्स के मि० राली, मि० रॉबर्ट ग्रिफिन (जो वर्षों बोर्ड आव ट्रेड मे बडे कर्मचारी रह चुके थे), यूनियन बैंक आव स्कॉटलैण्ड के जनरल मैनेजर मि० चार्ल्स गेर्डनर, मि० विलियम फौलर, सर फ्राक फार्ब्स ऐडम आदि मुख्य थे।

कमेटी की रिपोर्ट मई १८९३ के अन्त मे तैयार हुई। उसका निचोड यही था कि भारतवर्ष चादी का परित्याग कर दे—सर्वसाधारण के लिए टकसाल का दरवाजा बन्द कर दिया जाय और हुण्डी की दर फिलहाल १६ पेस कर दी जाय।

गरज यह कि भारत-सरकार का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। कमेटी ने उसमे हेरफेर किया तो इतना ही, कि हुडी की दर १८ पेस न करके (यह हद सरकार की ओर से सुझाई गई थी) उसने फिलहाल १६ पेस कर देने की सिफारिश की। भारत-सरकार ने कहा था, और कमेटी

ने भी इसको दोहराया कि चादी का परित्याग, सोने के ग्रहण के उद्देश से ही किया जा रहा था।

२० जून को भारत-सचिव ने तार-द्वारा भारत-सरकार को टकसाल बन्द करने और नई व्यवस्था जारी करने के लिए मुनासिब कार्रवाई करने की इजाजत दी।

२६ जून को बडे लाट की विधान-सभा मे इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला कानून पास हुआ और उसी दम चादी सिहासनच्युत कर दी गई। सर्वसाधारण के लिए अब टकसाल का दरवाजा खुला न रहा—वहा चादी के सिक्के ढलवाने का अधिकार अब केवल सरकार को रह गया। साथ ही साथ इस बात की भी व्यवस्था की गई कि टकसाल मे जो कोई १६ पेंस अर्थात् ७५३३४८ ग्रेन खालिस सोना दाखिल करे उसे बदले मे एक रुपया मिल जाय।

हर्शल कमेटी ने जिस व्यवस्था की सिफारिश की थी, और जो अब कानूनन जारी की गई, वह थोडे समय के लिए थी। विचार यह था कि इसका अनुभव हो जाने पर स्थायी व्यवस्था की जाय। एक्सचेज अर्थात् हुण्डी की दर के सम्बन्ध मे यह बात खास तौर से नोट कर लेनी चाहिए। हर्शल कमेटी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा था कि अगर परिस्थिति अनुकूल हो तो यह दर बढाई जा सकती है। सरकार की ओर से विधान-सभा मे कहा गया कि चादी के रुपए और सोने के बीच जो सम्बन्ध स्थापित किया जा रहा है उसको अन्तिम निर्णय नही समझना चाहिए।

कांग्रेस ने प्रस्ताव-द्वारा इस बात पर जोर दिया था कि हर्शल कमेटी की जो सिफारिशे हो वे सर्वसाधारण के सामने रखी जाय और किसी भी प्रकार की कार्रवाई मे पहले उसपर पूरी तरह से विचार हो ले। पर हमारी सरकार उतने समय के लिए भी ठहरनेवाली न थी!

अब पक्ष और विपक्ष की दलीलें सुनिए—

बार-बार सरकार की ओर से यह रोना रोया जाता था कि चादी गिरने से हुण्डी की दर गिरती है और इसका नतीजा यह होता है कि जो रकम हमे विलायत भेजनी होती है उसके लिए यहा अधिकाधिक रुपए

सरहदी लड़ाइयों में पैसा पानी की तरह बहाया गया, फौजी ताकत बढाने में अन्धाधुन्ध खर्च किया गया। पर जब आर्थिक कठिनाई उपस्थित हुई तब इसके लिए दोषी ठहराई गई गरीब चादी और रुपए का गिरा हुआ विनिमय-मूल्य।

घडी भर के लिए यह मान भी लिया जाय कि बिना कर-वृद्धि किए सरकार की आवश्यकता की पूर्ति नही हो सकती थी, तो भी कहना पड़ेगा कि सरकार को जो करना चाहिए था उसे करने को वह तैयार न थी। विदेशी वस्तुओं पर उस समय जो कर या ड्यूटी थी वह नही के बराबर थी। १८७५ में यह ड्यूटी ५ प्रतिशत कर दी गई थी। कपडे के लिए खास रिआयत थी। १८८२ में नमक और शराब को छोड, बाकी चीजों पर से ड्यूटी उठा ली गई और इसके बाद कई साल तक विदेशी वस्तुएं यहा बिना किसी प्रकार का कर दिए आती रही। इनमे प्रधानता कपडे की थी। हर्शल कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि "आय बढाने के लिए अगर विदेशी वस्तुओं पर फिर से ड्यूटी लगा दी जाय तो इसका बहुत कम विरोध होगा—कहा तो यह जाता है कि यह काम लोकप्रिय होगा। पर कठिनाई यह है कि अभी हाल में ही कपडे पर से ड्यूटी उठा ली गई है, और अगर वह फिर से लगा दी गई तो इंगलैण्ड में इसका घोर विरोध होगा।" इंगलैण्ड का विरोध स्वार्थमूलक था। उसका उद्देश था मैंचेस्टर की मिलों को अधिक-से-अधिक सम्पन्न रखना। बार-बार उनकी भलाई की वेदी पर भारत के हित का बलिदान किया गया। अगर भारत स्वतन्त्र होता, और चादी के गिरने से सचमुच उसे कोई कठिनाई होती, तो वह इम्पोर्ट ड्यूटी बढा कर बडी ही आसानी से उस समस्या को हल कर सकता था।

यह हुई सरकार के संकट की बात। अब अंगरेज कर्मचारियों की कठिनाइयों को लीजिए।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्हें संसार में ऊँचे-से-ऊँचे वेतन और ऊँचे-से-ऊँचे भत्ते मिलते थे। 'पैट्रियट' नामक पत्र ने अपने १२ जुलाई, १८९२ के अंक में बहुत ठीक लिखा था कि "अगर एक भारतीय कर्म-

शन यहा आकर जाच करे, तो यह बात-की-बात मे स्पष्ट हो जायगा कि जो अफसर या कर्मचारी सबसे ज्यादा शोर जरूर मचा रहे हैं वे इमदाद पाने के सबसे कम हकदार है। यहा तो जरूरत इस बात की है कि वेतन और भत्ते नए सिरे से मुकर्रर किए जाय, क्योकि कुछ तो बहुत ही कम पाते हैं, और कुछ बहुत ही ज्यादा। ससार मे और कोई देश नही, जहा वेतन इतने ऊचे हो, और चीजे इतनी सस्ती।" यह ध्यान मे रखने की बात है कि यूरोप मे १८७३ और १८९३ के बीच, सोना महगा होने के कारण, दाम काफी नीचे गिर गए थे। स्वेज की नहर के खुलने से यूरोप का रास्ता पहले से छोटा हो गया था और आने-जाने मे खर्च कम पडता था। इधर भारतवर्ष में रेलो का जाल फैलता जा रहा था और व्यापारिक प्रतियोगिता बढती जा रही थी। ये सारे कारण विदेशी वस्तुओ के दामो को यहा नीचे गिरानेवाले थे। एक्सचेंज गिरने का असर उलटा जरूर पडता था, पर फिर भी बाहर से आनेवाली चीजे १८९३ मे १८७३ की अपेक्षा सस्ती थी। लन्दन के 'स्टेटिस्ट' नामक पत्र ने इन कर्मचारियो की माग पर टीका करते हुए लिखा था—

"इनका कहना है कि वेतन का जो हिस्सा हमे यूरोप से आनेवाली चीजो पर खर्च करना पडता है उसमें सैकडे ३८ की वृद्धि हुई है। शायद इनका खयाल है कि यूरोप मे रहनेवाले भारत की बातो से बिलकुल अनभिज्ञ है। यह खयाल न होता तो ये ऐसी बात कहने की धृष्टता न करते। असलियत तो यह है कि यह वृद्धि नही के बराबर हुई है। . . . फिर इनका कहना है कि वेतन का जो हिस्सा हमे विलायत भेजना पडता है उसमे भी नुकसान उठाना पडता है। पर अगर नुकसान हो भी तो भारत-सरकार का इसमे क्या दोष ? वह तो कहेगी और बहुत ठीक कहेगी, कि हमने तुम लोगो को जो कुछ देने का वादा किया था वह दे दिया। उसके जितने कर्मचारी है उनके वेतन वह रुपयो मे चुका देती है। चादी के गिरने से रुपए की एक्सचेंज-दर गिरती है तो वह क्या करे ? उसके लिए न वह जिम्मेवार है, न वह उसके रोके रुक सकती है।"

चांदी के विरुद्ध आन्दोलन करनेवालों का कहना था कि मौजूदा हालत मे एक्सचेंज अस्थिर, डावाडोल रहता है और यह व्यापार के मार्ग मे बाधक का काम करता है। पर हर्शेल कमेटी के सामने कई ऐसे उदाहरण पेश किए गए जो और ही हाल साबित करनेवाले थे। दक्षिण अमेरिका, रूस, आस्ट्रिया आदि देशो के साथ—एक्सचेंज मे अस्थिरता होते हुए भी—इंगलैण्ड बड़े पैमाने पर व्यापार कर चुका था, और जिन्होने यह उदाहरण पेश किए, उनका पूछना था कि जब एक्सचेंज की घटाबढ़ी वहा बाधक नही हुई तब क्या कारण है कि सिर्फ भारतवर्ष मे होगी? राली ब्रदर्स नामक जगद्विख्यात कम्पनी के मालिक मि० स्टेफेन राली से कमेटी ने पूछा कि उधर रुपए की दर मे जो घटाबढ़ी हुई है, उससे आपको अपने व्यापार मे कोई दिक्कत उठानी पड़ी है या नही? मि० राली ने जवाब दिया कि नही, कोई भी नही। उन्होने वह तरीका भी बताया जो, व्यापारी लोग जोखिम से बचने के लिए काम मे लाते थे और आज भी लाते है। मान लीजिए, हमे दो महीने बाद कुछ डालरो की जरूरत पड़ेगी। एक्सचेंज अस्थिर होने के कारण कोई नही कह सकता कि उस समय उन डालरो के लिए हमे कितने रुपए देने पड़ेंगे। पर हम उस विषय से निश्चिन्त हो जाना चाहते है। ऐसी अवस्था मे हम 'फार्वर्ड' अर्थात् आगे मिलनेवाले डालर आज ही बैंक से खरीद लेंगे और समय आने पर उन्हे देकर भुगतान कर देंगे। अगर बैंक से आगे के डालर मिलने मे दिक्कत हुई, तो हम सम्भवत यहा कुछ माल खरीद कर अमेरिका मे बेच देंगे, जिससे हमे वहा समय पर डालर मिल जाय।

सच पूछा जाय तो मुद्रा या विनिमय का प्रश्न सरकार या उसके कर्मचारियों या व्यापारियो का प्रश्न न होकर इस देश की जनता का—यहा के करोड़ो किसानो का—प्रश्न था। इसे कसने की कसौटी यही थी कि चांदी या एक्सचेंज के गिरने से उस जनता का—उन करोड़ो किसानो का—लाभ हुआ है या हानि? अगर किसान-जैसे उत्पादक उससे लाभान्वित हुए थे, तो इससे यह सिद्ध था कि चांदी हमारे देश के लिए हितकर थी, और इसके सामने यह बात कोई महत्त्व पाने लायक नही थी कि अगर

कर्मचारी या व्यापारी उससे थोडी-बहुत हानि उठा चुके थे और उससे असन्तुष्ट थे ।

ऊपर कहा जा चुका है कि यूरोप मे दाम गिरते आ रहे थे । सोना महगा हो रहा था, इसलिए जो दाम सोने मे दिए जाते थे वे कम हो रहे थे । भारतवर्ष मे चादी न होती और चादी का बाजार इस तरह न गिरता तो यहा भी दामो की यही गति होती । इससे किसान या दूसरे उत्पादक बडे घाटे मे रहते । किसान को लगान या कर या सूद के रूप मे जो कुछ देना पडता है वह एक निश्चित रकम होती है । यह रकम वह देता है अपने गाढे पसीने की कमाई से—अपने खेत का अन्न या गल्ला बेचकर । इसका दाम जितना ही अधिक मिले, उसके हक मे उतना ही अच्छा । मान लीजिए कि जिस समय यूरोप मे दाम गिर रहे थे उस समय हमारे रुपए के विनिमय-मूल्य मे स्थिरता थी, तो उस हालत मे हमारे यहा भी दाम उसी हिसाब से गिरते और हमारे किसान बडे सकट मे पड जाते । पर हुआ यह कि चादी सस्ती हो चली—रुपए का विनिमय-मूल्य भी गिरता गया—और द्रव्य सस्ता होने का अर्थ है दामो का उठना, इसलिए दाम (सोने मे गिरने पर भी) यहा ऊपर उठे रहे । सोना महगा होकर हमारे किसानो पर आघात करने जा रहा था, पर चादी ने सस्ती होकर, और बीच मे पडकर, उनको बचा लिया । इगलैण्ड मे जिन्सो का दाम जहा १८६३ मे १०० था वहा गिरते-गिरते १८९३ मे ६१ रह गया था । भारत मे गल्ले का दाम जहा १८६३ मे १०० था वहा १८९३ मे १२९ था । अगर यहा चादी का रुपया न होता और इसका मूल्य न गिरता, तो यहा भी दाम ऊपर जाने के बजाय इगलैण्ड की तरह नीचे गिरते ।

विदेशी व्यापार के आकडे भी यही सिद्ध करते है कि चादी से हमारा लाभ ही हुआ ।

१८७३—७४

निर्यात (एक्सपोर्ट)	५४,९६,०७,८६० रु०
आयात (इम्पोर्ट)	३१,६२,८४,९७० रु०
आयात से निर्यात अधिक	२३,३३,२२,८९० रु०

१८९२—९३

निर्यात (एक्सपोर्ट)	१०६,५१,५१,९३० रु०
आयात (इम्पोर्ट)	६२,६१,८३,८३० रु०
आयात से निर्यात अधिक	४३,८९,६८,१०० रु०

भारतवर्ष में इम्पोर्ट (आयात) एक्सपोर्ट (निर्यात) पर निर्भर करता है। जब किसान अपना गल्ला बेचकर ज्यादा रुपए पाते हैं तब वे विदेशी वस्तुओं पर भी ज्यादा खर्च करते हैं। एक्सचेंज गिरते रहने में इम्पोर्ट बहुत कम हो जाना चाहिए था, पर असलियत में यह प्रायः दूना हो गया। फिर भी करेंसी ऐसोसियेशनवाले सन्तुष्ट नहीं थे, और यही कहते जाते थे कि व्यापार चौपट हो गया!

नीचा एक्सचेंज भारतवर्ष के लिए लाभदायक है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कलकत्ते की मशहूर कम्पनी ऐण्ड्र यूल के मालिक मि० जार्ज यूल ने (जो इण्डियन नैशनल कांग्रेस के चौथे अधिवेशन के प्रेसिडेंट हुए थे) कहा था कि—

"हां, यह अवश्य लाभदायक है। मैं यह उत्तर गहरी समीक्षा-परीक्षा के बाद दे रहा हूं।"

मि० यूल का कहना था कि ब्रिटिश पूंजीपति यहां के उद्योग-धन्धों का गला घोंट देना चाहते थे और इसी उद्देश से, भारत-सरकार के अंगरेज कर्मचारियों को आगे खड़ा करके, सारा आन्दोलन चला रहे थे। इसमें सारा हाथ लैंकाशायरवालों का था, जो यहां की काटन-मिलों को नष्ट कर डालना चाहते थे। चांदी के गिरने से इन मिलों को फायदा पहुंचा था और इनकी तरक्की हुई थी। १८७६–७७ में जहां ४७ काटन-मिलें थीं वहां १८९१–९२ में १२५ हो चली थीं। इस बीच में स्पिण्डल्स (तकुए) १,१००,११२ से ३,२७२,९८८ और लूम (करघे) ९,१३९ से २४,६७० हो चले थे। यहां की काटन-मिलें चीन के बाजार में भी मैंचेस्टर से प्रतियोगिता करने लगी थीं और इसके व्यापार का काफी बड़ा हिस्सा उनके हाथ में आ गया था। नीचे के आंकड़ों को देखिए—

इगलैण्ड से सूता चीन गया—

	कीमत पौड मे
१८९०	१,७९७,०००
१८९१	१,५०७,०००

भारतवर्ष से सूता चीन गया—

	कीमत पौड मे
१८९०	१७,५०७,०००
१८९१	१९,२९७,०००

१८७६-७७ में भारतवर्ष मे जहा ७,९२७,००० पौड सूता और १५,५८८,००० गज कपडा चीन गए थे वहा १८९१-९२ मे क्रमश १६१,२५३,००० पौड और ७२,३८४,००० गज गए।

जापान भी उस समय यहा की मिलो के सूते का वडा खरीदार था। यह सब मैंचेस्टर के लिए असह्य था, इसलिए उसकी ओर से इस बात की भरपूर कोशिश हुई कि भारतवर्ष से चादी की मुद्रा उठा ली जाय और रुपए की एक्सचेंज-दर उस समय जो ऊची-से-ऊची हो सकती थी, कर दी जाय। इस प्रकार एक्सचेज को ऊचा करने से चीन मे भारतवर्ष की क्या क्षति होनेवाली थी, यह बताते हुए शघाई की चीन-एसोसियेशन नामक सस्था ने हर्शल कमेटी को लिखा था —

"इस समय भारतवर्ष की मिल जब २३,००० रुपए का सूता यहा बेचती है तब उसके १०,००० डॉलर होते है। चीनवाले १०,००० डॉलर इसलिए देते है कि वे इससे कम म वैसा सूता स्वय तैयार नही कर सकते, पर अगर एक्सचेज की दर १८ पेंस कर दी गई तो भारतवर्ष की मिल को तो पहले की ही तरह २३,००० रुपए मिलेगे, पर चीन के खरीदार को इसके लिए यहा १२,००० डॉलर देना पड़ेगा। बहुत सम्भव है कि सूता इतना महगा हो जाने पर चीनवाले अपनी ही मिले खोल ले और भारतवर्ष के लिए स्थिति यह हो जाय कि या तो वह अपना दाम नीचा करे, या इस व्यापार से हाथ धो बैठे।"

शघाई के अलावा और स्थानो ने भी—जैसे हागकाग और सीलोन ने—इस प्रस्ताव का विरोध किया कि भारतवर्ष से चादी की मुद्रा उठा ली जाय। उन देशो मे भी यहा का रुपया चलता था, और इसका मूल्य कृत्रिम हो जाने से वहा के उत्पादको की भी हानि थी। पर उनका आवेदन-निवेदन भी अरण्यरोदन ही रहा।

३

सोने का ग्रहण

मूल्य मापने के लिए पहले चादी का रुपया काम में लाया जाता था। स्वयसिद्ध मुद्रा होने के कारण, १६५ ग्रेन चादी की सोने में जो कीमत होती, वही रुपए की कीमत थी। पर अब रुपए का वह स्वरूप न रहा। रुपया अब प्रतीक-मुद्रा कर दिया गया। वह सोने का प्रतिनिधित्व करने लगा। १६५ ग्रेन चादी की कीमत सोने मे चाहे जितनी कम हो, पर वह १६ पेस अर्थात् ७ ५३३४४ ग्रेन सोने का द्योतक हो गई।

"हर्ज क्या रुपया जो कागज का चला? गम न खा—रोटी तो गेहू की रही।" पर सच पूछिए तो चादी का रुपया भी अब एक प्रकार का नोट ही था। साधारण नोट से उसमें फर्क था तो इतना ही कि यह नोट कागज का न होकर चादी का था। मूल्य अब दोनो का ही कृत्रिम था।

चादी की टकसाल बन्द हो जाने पर स्थिति यह थी —

(१) चांदी अब स्वयसिद्ध मुद्रा या मूल्य-मापक नही रही।

(२) सरकार अपने को वचनवद्ध कर चुकी थी कि यह स्थान सोने को प्रदान किया जायगा।

(३) इस देश मे चलन सिर्फ प्रतीक-मुद्राओ का रह गया, जिनमें कागजी नोटो के साथ चादी के भी नोट थे।

(४) साधारणत. चादी की ऐसी प्रतीक-मुद्रा कानूनन एक हद तक ही लेन-देन के काम में लाई जा सकती है। उदाहरणार्थ, इंगलैंड में शिलिंग का सिक्का प्रतीक-मुद्रा का काम करता था, पर शिलिंग मे एक पौड से ज्यादा देने-लेने को कोई भी कानूनन वाध्य नही था। पर यहा भारतवर्ष में रुपए पर ऐसी कोई कैद नही लगाई गई—चाहे जितना देना-पावना हो, रुपए मे दिया-लिया जा सकता था।

(५) अभी तक चलन में प्रत्यक्ष रूप से सोना नहीं आया था। टकसाल में या सरकारी खजाने में सॉवरेन १६ पेंस की दर से लिए जा सकते थे। पर उन्हें देने-लेने को जनता कानूनन बाध्य नहीं थी।

(६) सरकार इस दर से (अर्थात् ७५३३४४ ग्रेन सोना = १ रुपया) सोने के बदले रुपए देने को तैयार थी, पर रुपए के बदले सोना देने को नहीं। रुपए का विनिमय-मूल्य १६ पेंस बांध दिया गया था, इसलिए वह उससे ऊपर नहीं जा सकता था। जब ७५३३४४ ग्रेन सोना सरकार को देकर उससे एक रुपया लिया जा सकता था, तब कोई दूसरे को एक रुपए के लिए उससे अधिक सोना क्योंकर देता? पर चूंकि सरकार ने रुपए के बदले सोना देने की कोई जिम्मेदारी नहीं ली थी, उसका विनिमय-मूल्य १६ पेंस से नीचे गिर सकता था।

(७) विनिमय-मूल्य या एक्सचेंज १६ पेंस कर दिया गया था, पर स्थायी रूप से नहीं। हमारे शासक देखना यह चाहते थे कि ऊंट किस करवट बैठता है। परिस्थिति अनुकूल हुई तो उनका इरादा इसको और भी ऊंचा कर देने का था। मूल्य के मान के लिए अंगरेजी में 'स्टैण्डर्ड' शब्द व्यवहृत होता है। सोना स्टैण्डर्ड कर देने का अर्थ है इस बात की व्यवस्था करना कि लेन-देन के भुगतान के लिए लोगों को सोना मिल सके। पर इस समय यहां ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। उधर चांदी भी स्टैण्डर्ड की जगह नहीं रह गई थी। फिर यहां का स्टैण्डर्ड क्या था? वास्तव में इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं था। सर जान लबक नामक एक प्रसिद्ध बैंकर थे, जो १८८६ वाले सोना-चांदी कमीशन के मेम्बर [illegible] उन्होंने इस विषय में अपनी राय जाहिर [illegible] था। तत्कालीन स्टैण्डर्ड 'एक्सचेंज स्टैण्डर्ड' था [illegible]

समझ ने, इस स्टैण्डर्ड को इससे अच्छा और कोई नाम न मिल सकने के कारण—'एक्सचेज स्टैण्डर्ड' कहना चाहिए।"

सर जॉन लबक इस प्रकार के स्टैण्डर्ड के विरोधी थे। उनकी खास आपत्ति यह थी कि इस प्रकार की व्यवस्था मे करेंसी का घटना या बढना प्राकृतिक रूप मे न होकर सरकार की मर्जी के मुताबिक हुआ करेगा, जो बडी भयकर वस्तु होगी।

चादी के पक्षपाती बराबर यह कहते आ रहे थे कि जो लोग सोना-सोना चिल्ला रहे है वे कपटी है और उनका उद्देश भारतवर्ष को सोना देना नही, बल्कि हुडी की दर को ऊचा करके रुपए को ही बराबर चलन मे रखना है। मिस्टर राली ने अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि "मेरा विश्वास है कि सोने के स्टैण्डर्ड के प्रश्न की आड या तह मे एक्स-चेज का प्रश्न है। अगर भारतवर्ष मे सोने का स्टैण्डर्ड हो चले तथा सोने और रुपए के बीच की एक्सचेज-दर काफी नीची हो, तो मै हर्गिज उस स्टैण्डर्ड का विरोध न करूगा।" अब धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि सचमुच हमारे साथ एक तरह की चाल चली गई थी—हमको सोने का स्टैण्डर्ड देने का वादा सचाई के साथ नही किया गया था। जो हर्शल कमेटी के मेम्बर रह चुके थे उनका भी सोने के सम्बन्ध मे अपना-अपना विचार था। १८९८ मे बयान देते हुए लॉर्ड फारर ने तो यह कहा कि "अगर मेरा विश्वास यह न होता कि हर्शल कमेटी की रिपोर्ट भारतवर्ष को सोने का स्टैण्डर्ड दिलायेगी तो मै उस पर कभी दस्तखत न करता।" उनका कहना था कि यहा अभी तक सोने का स्टैण्डर्ड स्थापित नही हुआ है। उधर मि० कर्टनी ने जो लॉर्ड फारर की तरह हर्शल कमेटी के मेम्बर रह चुके थे, फर्माया कि—नही, जब सरकार सर्वसाधारण से लगान या कर के भुगतान मे सोना लेने को तैयार है और रुपए की एक्सचेज-दर १६ पेस हो चुकी है तब समझना चाहिए कि सोने का स्टैण्डर्ड स्थापित हो चुका। शुरू से ही यहा की मुद्रा-प्रणाली को ऐसा रूप दिया गया कि वास्तविकता आसानी से किसीकी समझ मे न आ सके और उसकी जटिलता की आड मे हमारे कर्ताधर्ता जो दस्तन्दाजी चाहे, कर सके। जिस रोज हर्शल कमेटी की रिपोर्ट तैयार

(५) अभी तक चलन मे प्रत्यक्ष रूप से सोना नही आया था। टकसाल मे या सरकारी खजाने मे सॉवरेन १६ पेंस की दर मे लिए जा सकते थे। पर उन्हे देने-लेने को जनता कानूनन बाध्य नही थी।

(६) सरकार इस दर से (अर्थात् ७.५३३४४ ग्रेन सोना = १ रुपया) सोने के बदले रुपए देने को तैयार थी, पर रुपए के बदले सोना देने को नही। रुपए का विनिमय-मूल्य १६ पेंस बाध दिया गया था, इसलिए वह उससे ऊपर नही जा सकता था। जब ७.५३३४४ ग्रेन सोना सरकार को देकर उससे एक रुपया लिया जा सकता था, तब कोई दूसरे को एक रुपए के लिए उससे अधिक सोना क्योकर देता? पर चूकि सरकार ने रुपए के बदले सोना देने की कोई जिम्मेवारी नही ली थी, उसका विनिमय-मूल्य १६ पेंस से नीचे गिर सकता था।

(७) विनिमय-मूल्य या एक्सचेंज १६ पेंस कर दिया गया था, पर स्थायी रूप से नही। हमारे शासक देखना यह चाहते थे कि ऊंट किस करवट बैठता है। परिस्थिति अनुकूल हुई तो उनका इरादा उसको और भी ऊंचा कर देने का था। मूल्य के मान के लिए अंगरेजी मे 'स्टैण्डर्ड' शब्द व्यवहृत होता है। सोना स्टैण्डर्ड कर देने का अर्थ है इस बात की व्यवस्था करना कि लेन-देन के भुगतान के लिए लोगो को सोना मिल सके। पर इस समय यहा ऐसी कोई व्यवस्था नही थी। उधर चादी भी स्टैण्डर्ड की जगह नही रह गई थी। फिर यहा का स्टैण्डर्ड क्या था? वास्तव मे इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नही था। सर जान ब्लेक नामक एक प्रसिद्ध बैंकर थे, जो १८८६ वाले सोना-चादी कमीशन के मेम्बर रह चुके थे। उन्होने इस विषय मे अपनी राय जाहिर करते हुए कहा था कि यहा का वर्तमान स्टैण्डर्ड 'एक्सचेंज स्टैण्डर्ड' था। इसकी व्याख्या उन्होने इन शब्दो मे की थी —

"जब कभी कोई सरकार ऐसे नोट (वे चाहे कागज के हो, चाहे रुपए की तरह चादी के) जारी करती है जो कानूनन सोने से बदले नही जा सकते, और उसकी कीमत ठहराने की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेती है, तब, ऐसी

समझ मे, इस स्टैण्डर्ड को इससे अच्छा और कोई नाम न मिल मकने के कारण—'एक्सचेंज स्टैण्डर्ड' कहना चाहिए।"

सर जॉन लवक इस प्रकार के स्टैण्डर्ड के विरोधी थे। उनकी खास आपत्ति यह थी कि इस प्रकार की व्यवस्था मे करेंसी का घटना या बढना प्राकृतिक रूप मे न होकर सरकार की मर्जी के मुताबिक हुआ करेगा, जो बडी भयकर वस्तु होगी।

चादी के पक्षपाती बराबर यह कहते आ रहे थे कि जो लोग सोना-सोना चिल्ला रहे है वे कपटी है और उनका उद्देश भारतवर्ष को सोना देना नही, बल्कि हुडी की दर को ऊचा करके रुपए को ही बराबर चलन मे रखना है। मिस्टर राली ने अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि "मेरा विश्वास है कि सोने के स्टैण्डर्ड के प्रश्न की आड या तह मे एक्सचेंज का प्रश्न है। अगर भारतवर्ष मे सोने का स्टैण्डर्ड हो चले तथा सोने और रुपए के बीच की एक्सचेंज-दर काफी नीची हो, तो मै हर्गिज उस स्टैण्डर्ड का विरोध न करूगा।" अब धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि सचमुच हमारे साथ एक तरह की चाल चली गई थी—हमको सोने का स्टैण्डर्ड देने का वादा सचाई के साथ नही किया गया था। जो हर्शल कमेटी के मेम्बर रह चुके थे उनका भी सोने के सम्बन्ध मे अपना-अपना विचार था। १८९८ मे बयान देते हुए लॉर्ड फारर ने तो यह कहा कि "अगर मेरा विश्वास यह न होता कि हर्शल कमेटी की रिपोर्ट भारतवर्ष को सोने का स्टैण्डर्ड दिलायेगी तो मै उस पर कभी दस्तखत न करता।" उनका कहना था कि यहा अभी तक सोने का स्टैण्डर्ड स्थापित नही हुआ है। उधर मि० कर्टनी ने जो लॉर्ड फारर की तरह हर्शल कमेटी के मेम्बर रह चुके थे, फर्माया कि—नही, जब सरकार सर्वसाधारण से लगान या कर के भुगतान मे सोना लेने को तैयार है और रुपए की एक्सचेंज-दर १६ पेस हो चुकी है तब समझना चाहिए कि सोने का स्टैण्डर्ड स्थापित हो चुका। शुरू से ही यहा की मुद्रा-प्रणाली को ऐसा रूप दिया गया कि वास्तविकता आसानी से किसीकी समझ मे न आ सके और उसकी जटिलता की आड में हमारे कर्ताधर्ता जो दस्तन्दाजी चाहे, कर सके। जिस रोज हर्शल कमेटी की रिपोर्ट तैयार

हुई थी उस रोज एक्सचेंज की दर १४ ६२५ पेंस थी। रिपोर्ट निकल जाने पर २७ जून को यह दर एक दिन के लिए १६ पेंस हो गई, पर वहां ठहर न सकी। १८९३-९४ मे औसत दर १४ ५४४ पेंस रही। यह दर बाजार की हालत पर निर्भर करती है। ऐसा न होता तो सरकार विधान-मात्र से दर को और भी ऊंचा कर सकती थी। सरकार ने कानून पास कर दिया कि वह दो शिलिंग देनेवाले को एक रुपया देगी, पर बाजार की हालत ऐसी नही कि किसीको रुपए के लिए सरकार के पास जाना पड़े; और दो शिलिंग से कम में ही रुपया मिल जाता है तो सरकार का कानून कानून ही रहेगा, वह दर चल न सकेगी। यह जरूर है कि सरकार अपनी नीति-रीति मे परिवर्तन कर बाजार की हालत बदल सकती है और बाजार को अपने पास आने के लिए मजबूर कर सकती है। पर यह अवस्था भी एक हद तक ही पैदा की जा सकती है।

दिसम्बर १८९३ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ और उसमे यह प्रस्ताव पास हुआ कि—"भारत-सरकार ने आनन-फानन कानून पास करके सर्वसाधारण के लिए चांदी की टकसाल का दरवाजा बन्द कर दिया। इसपर यह कांग्रेस अत्यन्त खेद प्रकट करती है; कारण कि रुपए का मूल्य कृत्रिम और ऊंचा करके जनता पर परोक्ष रूप से एक नया कर लगा दिया गया है और इस कारंवाई से हमारे व्यापार और उद्योग-धन्धों को—खासकर कपड़े की मिलों को—बड़ी हानि पहुंची है।"

टकसाल बन्द हो जाने के बाद चांदी के दाम और एक्सचेंज की दर यह रही—

	चांदी का औसत दाम पेंस	औसत एक्सचेंज पेंस
१८९४–९५	२८ १५/१६	१३ १०१
१८९५–९६	२९ ७/८	१३ ६३८
१८९६–९७	३० [illegible]	१४ ४५१
१८९७–९८	२७ १/८	१५ ३५४
१८९८–९९	२६ ११/१६	१५ ९७८

आरम्भ मे कई साल तक एक्सचेज १६ पेंस से बहुत नीचे रहा—अर्थात् सरकार चाहती थी कि रुपए को लोग १६ पेंस देकर ले, मगर रुपया इससे सस्ता बना रहा। अपनी नीति को असफल होते देख सरकार ने रुपए का अभाव या कमी करना शुरू कर दिया। रुपया ढालना न ढालना अब सरकार के बस की बात थी। उसने नए सिक्को की ढलाई बन्द कर दी, जिससे बाजार मे रुपए की टान बढती गई। टकसाल बन्द होने से पहले नई करेन्सी के रूप में हमे प्राय सात से नौ करोड रुपए की हर साल जरूरत पडती थी। सिक्के तो इससे भी ज्यादा ढलते थे, पर उनमे से कुछ गला दिए जाते थे और उनके जेवर इत्यादि बन जाते थे। जो सिक्के चलन मे रह जाते उनकी तादाद इतनी थी। हमारी जन-सख्या, हमारा वाणिज्य-व्यापार, हमारी तरह-तरह की आवश्यकताए बढ रही थी, और इसलिए यह आवश्यक था कि करेन्सी भी उन्हीके अनुसार बढती रहे। अगर स्वाभाविक रीति से वह बढती तो १८९४ से १८९८—इन पाच वर्षो मे कम से कम ४० करोड और रुपए, नए सिक्को के रूप मे, चलन मे आ जाते। पर वास्तव में हुआ कुछ और ही। इतने समय मे कुल पाच करोड रुपए के लगभग चलन में बढ पाए। सरकार प्राय नए सिक्के ढालती ही नही थी, इसलिए पुराने सिक्को से ही सबको काम चलाना पडता था। १८९३ मे चलते-फिरते रहनेवाले रुपयो की सख्या १३८ करोड कूती गई थी। अगर यह सख्या ज्यो-की-त्यो बनी रहती तो भी हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अपर्याप्त होती। पर स्वाभाविक कारण—जैसे गलाकर और काम मे ले आना, जमीन में गाड देना, इस देश से बाहर भेज देना—उस सख्या मे ह्रास ही करनेवाले थे, इसलिए १८९७ की कूत के अनुसार वह केवल १२० करोड ठहरी थी। ऐसे समय मे, जब कि रुपयो की आवश्यकता दिन-दिन बढ रही थी, सरकार ने उनकी ढलाई बन्द कर और उनकी तादाद कम कर, उनका मूल्य बढा दिया और एक्सचेज अन्त मे १६ पेंस हो गया। पर पाच साल से कम मे यह काम पूरा न हो सका।

यहा यह प्रश्न किया जा सकता है कि सर्वसाधारण के लिए टकसाल

जरूर बन्द थी, पर लोग सरकार को सोना देकर तो रुपया ले ही सकते थे, फिर वे ऐसा क्यों नहीं करते थे ? उत्तर यह है कि सोना लोग सरकार के पास तभी ले जाते जब और जगह बेचने में अधिक लाभ न होता। जब तक एक्सचेंज १६ पेंस न हुआ, सोना बाजार में सरकारी दर से महगा बिकता रहा। सरकार तो ७५३३४४ ग्रेन सोने के बदले एक रुपया देती, पर इतने सोने का मूल्य बाजार में एक रुपए से अधिक था। ऊपर कहा जा चुका है कि इंगलैण्ड में स्टैण्डर्ड सोने का था और पौंड-शिलिंग-पेंस उस समय सोने के द्योतक थे। फिर, जब बाजार में एक्सचेंज १४ पेंस होता तो उसका अर्थ यही था कि उतने सोने का मूल्य एक रुपया हुआ। अवश्य ही जब किसीको १४ पेंस (सोना) बेच देने से ही एक रुपया मिल जाता है तब वह १६ पेंस (सोना) देकर एक रुपया लेने को तैयार न होगा। यही कारण है कि इतने साल तक कोई अपना सोना ले जाकर सरकार से रुपए मांगने न गया। इसी बात को दूसरी तरह यों कह सकते हैं कि इतने समय तक एक्सचेंज-नीति सफल न हो सकी।

चांदी की कहानी पूरी करने के लिए यहां अमेरिका की भी कुछ घटनाओं का उल्लेख आवश्यक है।

जब १८९३ में भारत-सरकार ने अपनी टकसाल बन्द करके चांदी की मुद्रा यहां से उठा ली तब अमेरिका ने शर्मन-विधान को मन्सूख करके बाजार में चांदी खरीदना बन्द कर दिया। इससे चांदी और भी नीचे गिरी। दामों का यह हाल रहा—

	पेंस—
१८९३	३५ ५/८
१८९४	२८ १५/१६
१८९५	[illegible]
१८९६	३० ३/४
१८९७	२७ ९/१६
१८९८	२६ १५/१६
१८९९	२७ ७/१६

१८९६ मे चादी अमेरिका मे एक बार फिर राजनैतिक आन्दोलन का मुख्य विषय बन बैठी। वहा के रिपब्लिकन चाहते थे कि इस विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की फिर चेष्टा की जाय। पर डिमॉक्रैट इसके विरोधी थे। उनकी माग थी कि अमेरिकन सरकार बिना औरो से किसी प्रकार का समझौता किए द्वैत मुद्रा-प्रणाली ग्रहण कर ले और सोने तथा चादी के बीच १ १६ का सम्बन्ध स्थापित कर दे। प्रेसिडेट के चुनाव मे जीत रिपब्लिकन पार्टी की रही और नए राष्ट्रपति ने दोनो धातुओ के बीच सम्बन्ध निश्चित करने के उद्देश से इगलैण्ड और फ्रास के साथ पत्र-व्यवहार शुरु कर दिया। फ्रास की राय थी कि यह सम्बन्ध या अनुपात १ १५½ हो, पर यहा भारत-सरकार को यह मजूर न था। बाजार मे उस समय (१८९७) यह अनुपात १ ३४ २० था—अर्थात प्राय ३४ भाग चादी एक भाग सोने की बराबरी करती थी। फ्रास की बात स्वीकार करने का अर्थ होता चादी का मूल्य इतना अधिक कर देना कि १५॥ भाग चादी ही एक भाग सोने की बराबरी कर सके। साथ ही, इसका अर्थ होता रुपए के एक्सचेज को अत्यधिक ऊचा कर देना—जो भारत-सरकार की भी दृष्टि मे सर्वथा अनुचित था। अमेरिकन राष्ट्रपति के पत्रव्यवहार का कोई नतीजा नही निकला। इधर सोने के उत्पादन मे बडी वृद्धि होने लगी थी और सोना सस्ता होने लगा था। लोग थोडे ही समय मे चादी को भूल-से गए।

१८९८ मे भारत-सरकार ने एक प्रस्ताव भारत-सचिव के सामने रखा, जिसका उद्देश था कर्ज लेकर इगलैण्ड मे सोने का एक रिजर्व कायम करना और रुपए गला-गला कर चादी के रूप मे बेच देना। सरकार का कहना था कि चलन मे रुपया आवश्यकता से अधिक है और एक्सचेज को १६ पेस तक उठाने और वहा टिकाने के लिए इस आधिक्य या बाहुल्य को मिटा देना जरूरी है।

२९ अप्रैल को भारत-सचिव ने एक नई करेसी कमेटी नियुक्त करके उसे आदेश दिया कि वह सरकार के प्रस्ताव पर विचार करे। इस कमेटी के अध्यक्ष सर हेनरी फौलर थे, जो स्वय भारत-सचिव रह चुके थे। उसके दूसरे सदस्यो मे सर जॉन म्यूर, सर डेविड बार्बर, लॉर्ड बैलफर, मि०

कैम्पबेल आदि थे। अनुसन्धान के लिए जो क्षेत्र कमेटी को दिया गया था वह भारत-सरकार के प्रस्ताव तक ही परिमित नही था। भारत-सचिव के आदेशानुसार यह भारतीय मुद्रा-प्रणाली से सम्बन्ध रखनेवाली हर बात का अनुसन्धान कर सकती थी और उसपर अपनी राय दे सकती थी।

कमेटी के सामने मुख्य प्रश्न दो थे—

(१) यहा का मान या स्टैण्डर्ड सोना हो या चादी ?

(२) चादी और सोने के बीच सम्बन्ध क्या हो ?

बहुतेरे गवाहो ने इस बात पर जोर दिया कि १८९३ मे जो भूल हुई उसके सुधार के लिए यह आवश्यक है कि चादी अपनी पुरानी जगह पर फिर से स्थापित कर दी जाय। कुछ गवाह ऐसे भी थे, जो चादी को उसी हालत मे फिर से उसकी पुरानी जगह पर लाने के पक्षपाती थे, जब कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौता होकर दोनो धातुओ का सम्बन्ध सदा के लिए निश्चित हो जाय।

यह हुई चादी के पक्षपातियो की बात। सोने के पक्षपाती भी दो दलो मे विभक्त थे। एक दल चाहता था कि सोने का मान तो हो ही, साथ-साथ सोने के सिक्के भी चलन मे हो। दूसरा दल कहता था कि मान तो सोने का रहे पर यहा उसके सिक्के न चलाए जाय।

गवाहो मे इस बार दो भारतवासी थे—श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त, (कांग्रेस के भावी प्रेसिडेण्ट) और बम्बई के पारसी व्यापारी मि० मरवानजी रुस्तमजी। दोनो ने ही सरकार की नीति की कड़ी आलोचना की।

चादी के पक्षपातियो की दलील यह थी कि "उससे भारतवर्ष को काफी लाभ हुआ था, और ऐसी वस्तु का परित्याग हर्गिज न करना चाहिए था। १८९३ मे परिस्थिति और भी उपायो से काबू मे लाई जा सकती थी। इसके लिए मुद्रा-प्रणाली मे ऐसे उलट-फेर की कोई आवश्यकता नही थी। इस बीच मे यह अनुभव भी हो गया था कि इस क्षेत्र मे सरकार की दस्तन्दाजी से क्या-क्या अनर्थ हो सकते है। व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि समाज की आवश्यकताओ के अनुसार करेसी (मुद्रा) की मात्रा स्वत

घटती-वढती रहे। पर यह प्रवन्ध जव सरकार अपने हाथ मे ले लेती है तव यह घटना-वढना उसके इच्छानुकूल होने लगता है। फिर तो यह हो सकता है—जैसा कि यहा हो चुका था—कि रुपए की सख्त जरूरत है, और सरकार उसे देने मे इनकार कर देती है, देश मे रुपए-पैसे का दुर्भिक्ष है, और सरकार कहती है कि नही, रुपए का वाहुल्य है, हम सिक्को को चलन से निकाल कर गलाने जा रहे है। पर करेंसी का स्वत घटना-वढना तभी हो सकता है जव टकसाल का दरवाजा सवके लिए खुला रहे, जिसको मुद्रा की आवश्यकता हुई, अपना सोना या चादी टकसाल मे ले गया और उसके सिक्के करा लिए। यहा भारतवर्ष मे सोने की ढलाई की आशा कम थी, इसलिए यह और भी आवश्यक था कि चादी की टकसाल फिर से खोल दी जाय। इससे सारी कृत्रिमता और तज्जनित दोष दूर हो जायगे।"

उस समय चादी का दाम २७ और २८ पेंस के वीच था, पर चादी के पक्षपातियो का कहना था कि अगर टकसाल खोल दी गई और यहा चादी के सिक्के पूर्ववत् ढलने लगे तो वाजार शीघ्र ही ३० पेंस हो चलेगा। इसका अर्थ होगा १२ पेंस का रुपया। पर विपक्षी यह कहते कि इस वात की गारण्टी ही क्या है कि चादी या एक्सचेंज इससे भी नीचे न गिरेगा? मि० राली ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था कि "ससार मे सभी कुछ सम्भव है, पर हम व्यापारी अनुभव से जानते है कि क्या सम्भव है, और क्या असम्भव। जहा व्यावहारिक वातो की चर्चा हो वहा ऐसे प्रश्न उठाने से क्या लाभ?" मि० डकन नामक दूसरे गवाह से भी यही प्रश्न किया गया और उनका उत्तर इस प्रकार था—"हमारे स्कॉटलैण्ड मे जव कभी कोई ऐसा सवाल करता है तव इसका जवाव एक लोकोक्ति के रूप मे दिया जाता है। वह लोकोक्ति यह है कि अगर आसमान गिर पडे तो गानेवाले पक्षियो के दम घुट जायगे। पर वावजूद इसके, वे पक्षी गाते ही जाते है।"

लॉर्ड ऐल्डनहम इगलैण्ड के प्रसिद्ध वैंकर थे, और वैंक आव् इगलैण्ड के गवर्नर रह चुके थे। इन्होंने अपने वयान मे भारत-सरकार की कार्रवाई

की तीव्र आलोचना की और उसे 'जुर्म' तक बताया। लॉर्ड ऐल्डनहम द्वैत मुद्रा-प्रणाली के पक्षपाती थे और सोने-चादी का सम्बन्ध निश्चित करने के लिए चाहते थे कि फिर से अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के लिए प्रयत्न किया जाय।

मि० रॉबर्ट बार्कले नामक व्यवसायी भी ऐसा समझौता चाहते थे। उन्होंने अपने इजहार मे कहा—

"मेरा विश्वास है कि भारत मे चादी की टकसाल का दरवाजा फिर से खोल देने का निश्चय होते ही कुछ ऐसी शक्तिया काम करने लगेगी जो चादी के मूल्य को बढाये बिना न रहेगी। भारतीय टकसाल बन्द होने से पहले, चादी का दाम ३८ पेंस से कभी नीचे नही गिरा था, और ऐसे निश्चयमात्र से ही उस दाम मे तेजी आ जायगी। चीन और अफ्रीका मे भी चादी के उपयोग के लिए बहुत बडा क्षेत्र है।"

सोने के पक्षपाती वही कहते जाते थे जो टकसाल बन्द होने से पहले बार-बार कह चुके थे—"चादी काफी चचल, डावाडोल, अस्थिर, अव्यवस्थित साबित हो चुकी है। एक्सचेंज को अपने साथ नीचे गिरा कर इसने उन सबको नुकसान पहुचाया है—और उनमे भारत-सरकार का नाम सबसे पहले लेने लायक है—जिन्हे रुपया विलायत भेजना पडता है।" पर इससे आगे सोने के सब पक्षपाती साथ जाने को तैयार न थे। कोई इस सोना किसी रूप मे देना चाहता था, कोई किसी रूप मे। कुछ तो सोना नाममात्र का ही देनेवाले थे।

इन सबके सामने पहला सवाल यह था कि जो रुपए चलन मे थे और जो प्रतीक-मुद्रा बना दिए गए थे उनके बदले, जनता की माग होने पर, सरकार सोना देने को तैयार रहेगी या नही? सर जॉन लबक का कहना था कि जब तक सरकार बदले मे सोना देने को तैयार नही होती तब तक सोने का मान या स्टैण्डर्ड सार्थक हो ही नही सकता। पर सोने के पक्षपातियों ने एक स्वर से यही कहा कि अगर सोने के स्टैण्डर्ड की प्रतिष्ठा के लिए यह आवश्यक हो तब तो 'न होगा बांस न बजेगी बासुरी'। इसलिए उन्हे सरकार सोना देने को बाध्य न हो—इसी आधार पर सारी

अपनी-अपनी स्कीम पेश की । हा, अगर किसी साल भारत की देनदारी ज्यादा हुई और उसके लिए भुगतान मे सोना बाहर भेजना आवश्यक हो गया तो इन स्कीमो मे इस बात की प्राय व्यवस्था थी कि सरकार रुपए लेकर उस काम के लिए सोना दे ।

आपस का मतभेद विशेषत इस बात पर था कि देश के भीतर चलन मे सोने के सिक्के रहे या नही । मि० मैकलियड, लॉर्ड नॉर्थब्रुक, सर सैम्युअल माण्टेग्यू, सर एडगर विन्स्टन—जैसे लोग इस बात के पक्ष में थे । उनका कहना था कि जब तक सोने के सिक्के चलन मे न होगे, यहा की मुद्रा-प्रणाली पूर्णत स्वस्थ न हो सकेगी । सर एडगर विन्स्टेन मिस्र-सरकार के सलाहकार रह चुके थे । उनका कहना था कि "सिद्धान्तत यह सम्भव है कि सोने का मान या स्टैण्डर्ड बिना सोने के सिक्को के चलन के हो, पर यह अपवादस्वरूप है, और जिस मुद्रा-प्रणाली मे ऐसी व्यवस्था हो वह कभी उत्तम नही कही जा सकती । सोने के मान या स्टैण्डर्ड का आधार ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमे आवश्यकतानुसार सोना देश से बाहर बेरोक-टोक जा-आ सके और देश के भीतर भुगतान के लिए सोने के सिक्को का स्वच्छन्द व्यवहार हो सके । इस प्रकार की व्यवस्था उस व्यवस्था से अधिक प्रचलित और हितकर है, जिसमे लेन-देन के लिए केवल प्रतीक-मुद्रा काम में लाई जाती हो । यह भी कहा जा सकता है कि जहा सोने का मान या स्टैण्डर्ड है, पर चलन मे सोना नही है, वहा सरकारद्वारा दस्तन्दाजी विशेष रूप से होगी । पर इस प्रकार की दस्तन्दाजी बहुत ही बुरी चीज है । जो भी मुद्रा-प्रणाली हो, वह स्वत काम करनेवाली होनी चाहिए और सरकारद्वारा हस्तक्षेप कुछ खास परिस्थितियो मे ही—और वहा भी कम-से-कम —होना चाहिए ।" सोने के सिक्के के विरोधी यह कहा करते कि चलन मे सोना अधिक काल तक नही ठहर सकता—लोग उसे दबाकर बैठ जायगे । इसके उत्तर मे मि० मैकलियड का कहना था कि सोना इस देश के लिए कोई नई चीज नही थी । सोने के सिक्के यहा सदियो तक चल चुके थे । १८५३ से पहले जो सोने के सिक्के यहा चलन मे थे उनका तखमीना था बारह करोड़ पौड । "नही, भारतवर्ष को सोने के

सिक्को का ऐसा लोभ या मोह नही है कि वह उन्हे चलन मे रहने ही न दे।"

सोने के सिक्के के विरोधियो मे बगाल-बैक के कर्मचारी मि० लिण्डसे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यह इस विषय पर वर्षों से लिखते आ रहे थे और जब फौलर कमेटी बैठी तब उसके सामने इन्होने एक स्कीम रखी, जो इनके नाम से मशहूर है। इनकी स्कीम सक्षेप मे यह थी —

"सोना मान या स्टैण्डर्ड कर दिया जाय, पर चलन मे सोने के सिक्के न हो। देश के भीतर रुपए और नोट करेन्सी का काम करे। लन्दन मे एक करोड पौड कर्ज लेकर एक रिजर्व (कोष) कायम किया जाय, जिसका नाम 'गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व' हो। रुपए की एक्सचेज-दर, ऊपर और नीचे, दोनो ओर बाध दी जाय। जब किसीको रुपयो की जरूरत हो तब वह लन्दन मे सरकार को स्टर्लिंग दे और १६१/८ पेस की दर से यहा उससे रुपए ले ले। इसके विपरीत, जब किसीको विलायत मे स्टर्लिंग की जरूरत हो तब वह यहा रुपए देकर १५७/८ पेस की दर से वहा सरकार से स्टर्लिंग ले ले। १५,००० से कम किसीको रुपए न मिले और १,००० से कम किसीको स्टर्लिंग न मिले। अगर किसी समय स्टर्लिंग की मांग इतनी अधिक हो कि रिजर्व खाली हो जाने का डर हो, तो उस हालत मे सरकार भारतवर्ष मे मिलनेवाले रुपयो का कुछ हद तक गला डाले और चादी को लन्दन भेज कर बेच दे और उसका स्टर्लिंग कर ले।"

इस स्कीम का सारा उद्देश था भारतवर्ष मे करेन्सी के लिए सोने का व्यवहार न होने देना, और उसमे इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि सोने का जो रिजर्व हो वह लन्दन मे ही रहे। मि० लिण्डसे का कहना था कि लन्दन मे सोना रहने से ब्रिटिश साम्राज्य के आर्थिक केन्द्र की मजबूती बनी रहेगी, और वह रिजर्व को भारतवर्ष मे रखने के कट्टर विरोधी थे।

पर उस समय भारत-सरकार का मत और ही था। उसके अर्थ-सदस्य सर जेम्स वेस्टलैण्ड ने इस स्कीम की आलोचना करते हुए कहा कि "भारत-वर्ष मे नई मुद्रा-प्रणाली की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि

सर्वसाधारण को उसपर पूरा विश्वास हो। और उस विश्वास-सम्पादन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सोने का रिजर्व इसी देश मे रखा जाय। अगर रिजर्व लन्दन मे रखा गया, और लोगो का यह खयाल हो चला कि भारत-सचिव या व्यापारियो की माग पूरी करने मे यह कभी भी गायब हो सकता है तो विश्वास हर्गिज न जम सकेगा।" सर जेम्स वेस्टलैण्ड की एक टिप्पणी यह थी कि रिजर्व ६,००० मील दूर न रखकर भारतवर्ष मे रखा जाय तो उसकी मिकदार चाहे जो हो, वह हर हालत मे ज्यादा मुफीद साबित हो सकता है।

और लोगो ने भी इस स्कीम को आपत्तिजनक बताया और इसकी कडी आलोचना की। इसका सबसे बडा दोष यह बताया गया कि इसमें सरलता और स्वाभाविकता को तिलाजलि दे दी गई थी और सारी व्यवस्था जटिल-से-जटिल और कृत्रिम-से-कृत्रिम बना दी गई थी। प्राय सब कुछ सरकार के हाथ मे या उसकी मर्जी पर छोड दिया गया था, और विशेष ध्यान इस बात का रखा गया था कि सोना यथासम्भव लन्दन मे ही केन्द्रीभूत रहे।

यद्यपि फौलर कमेटी ने यह स्कीम स्वीकार नही की तथापि हमारे शासको की कारसाजी से देश मे जो मुद्रा-प्रणाली प्रचलित हुई वह बहुत कुछ इसी स्कीम के अनुसार थी। इसीलिए इस विषय के इतिहास मे लिण्डसे-स्कीम को विशेष महत्व प्राप्त है।

कमेटी ने अपना निर्णय देते हुए पहले तो भारत-सरकार के प्रस्ताव को यह कह कर अस्वीकार्य बताया, कि इस बीच मे परिस्थिति बहुत कुछ बदल चुकी थी—एक्स्चेज १६ पेस तक पहुच गया था और स्थिर हो रहा था—अब वह समस्या नही रह गई थी—अगर रुपए चलन से निकाल लिए गए तो यहा मुद्रा-सम्बन्धी स्थिति भयकर हो जायगी और अगर उन रुपयो को गला कर बेच दिया गया तो चादी और भी नीचे गिर जायगी, जिससे चीन-जैसे चादी की मुद्रावाले देश और भारतवर्ष के बीच के एक्सचेज में हलचल-सी उपस्थित हो जायगी।

चादी और सोने के बीच के प्रश्न पर कमेटी ने अपना फैसला चादी के

खिलाफ दिया और भारतवर्ष के लिए सोने को ही श्रेयस्कर बताया। "भारतवर्ष मे मूल्य का मान या मापक सोना ही होना चाहिए—चाहे वह सोने के सिक्कों के साथ हो, चाहे सोने के रिजर्व या कोष के।"

पर कमेटी ने उन सब स्कीमो को त्याज्य ठहराया जिनमे बिना सोने के सिक्कों के सोने का मान या स्टैण्डर्ड चलाने की बात थी। ऐसे सिक्के इस देश मे बहुत समय तक चल चुके थे, और इतिहास से इस आशंका की पुष्टि नही होती थी कि जैसे छलनी से पानी बाहर निकल जाता है वैसे ही इस देश मे चलन से सोने के सिक्के निकल जायगे। कमेटी की सिफारिश यह थी —

"हम लोग इस बात के पक्ष मे है कि ब्रिटिश सॉवरेन या गिनी का भारतवर्ष मे भी चलन होने लगे और लोग उसे देने-लेने को बाध्य कर दिए जाय। साथ ही, ब्रिटिश टकसाल की ऑस्ट्रेलिया मे जो तीन शाखाए है उन्हे जिन शर्तों पर सोने के सिक्के (सॉवरेन) ढालने का अधिकार प्राप्त है उन्ही शर्तों पर भारतवर्ष की टकसालो को भी ऐसे सिक्के अबाधित रूप से ढालने दिया जाय। इसका फल यह होगा कि सब सॉवरेन समान होगे और उनका चलन ग्रेट-ब्रिटेन मे तथा भारतवर्ष मे, दोनो जगह, होने लगेगा।"

रुपयों के बारे मे कमेटी ने लिखा कि "स्वयंसिद्ध मुद्रा सॉवरेन होगा, और रुपए प्रतीक-मुद्रा का काम करेगे। पर लेन-देन मे रुपयों का व्यवहार परिमित या नियन्त्रित करना संभव नही—इसलिए इस विषय मे प्रतीक-मुद्रा स्वयंसिद्ध मुद्रा के ही समान होगी।" कमेटी ने अमेरिका के संयुक्त राज्य और फ्रांस, इन दो देशो के उदाहरण देकर यह दिखाया कि वहा सोने का मान या स्टैण्डर्ड था, फिर भी चाहे जिस हद तक हो, लोग चांदी के सिक्के लेने-देने को बाध्य थे। कमेटी की राय मे आवश्यकता केवल इस बात की थी कि रुपयों की तादाद जरूरत से ज्यादा न बढ़ाई जाय; और उसकी सिफारिश थी कि जब तक चलन मे सोने का परिमाण अन्दाज़ नही हो जाता तब तक और रुपए न ढाले जाय।

रुपयों के बदले भारत-सरकार सोना देने को बाध्य हो—ऐसी कोई सिफारिश कमेटी ने नहीं की।

एक्स्चेंज की स्थायी दर के सम्बन्ध मे कमेटी ने अपना निर्णय १६ पेंस के ही पक्ष मे दिया। उसकी खास दलील यह थी कि मौजूदा दर यही है और यह प्राय डेढ साल से कायम है। इसको वेदखल करके किसी भी दूसरी दर को इसकी जगह बिठाना—बने को बिगाडना, बसे को उजाडना और अनगिनत आदमियो के साथ अन्याय करना होगा।

टकसाल बन्द करके जो परिस्थिति पैदा कर दी गई थी उसमे सरकार १६ पेंस ही क्यो, जो दर चाहती, कायम कर सकती और टिका सकती थी। सिक्को की ढलाई अब उसके हाथ की बात थी—उनकी तादाद या सख्या कम करके वह उनका मूल्य चाहे जितना ऊँचा कर सकती थी। सवाल सिर्फ यही था कि लोगो को अपनी यन्त्रणा के रूप म इसका क्या दाम चुकाना पडेगा और इसमे कितना समय लगेगा ? कृत्रिम उपाय से किसी दर को कायम कर देना और फिर उसी दर की दुहाई देना—यह नीति-रीति हमारी सरकार और उसके तरफदारो को ही शोभा दे सकती थी। फौलर-कमेटी की नियुक्ति अप्रैल १८९८ मे हुई थी। उसने अपना काम इतनी ढिलाई से किया कि उसकी रिपोर्ट निकली जुलाई १८९९ मे। तब तक १६ पेंस दर कायम हुए प्राय १८ महीने हो चुके थे। क्या इसमें भी सन्देह हो सकता है कि जानबूझ कर यह निर्णय इतने समय बाद किया गया, ताकि उस दर के पक्ष मे और कुछ नही तो इतना तो कहा जा सके, कि यह पौधा डेढ साल का हो चुका है, अब इसको उखाड कर इसकी जगह दूसरा पौधा लगाना जोखिम और खतरे का काम है ?

ऊपर कहा जा चुका है कि नए सिक्को की ढलाई बन्द करके और रुपए की कहतमाली पैदा करके ही सरकार ने उसकी कीमत १६ पेंस तक पहुँचाई। कमेटी को इस सम्बन्ध मे जो साक्ष्य मिला वह 'उस भयकर स्थिति का सूचक था, जिसे सरकार की नीति ने यहा कुछ काल पहले पैदा कर दिया था।

बैंक-रेट १३ प्रतिशत तक पहुँच गई थी, पर व्यापारियो को २४ प्रतिशत पर भी रुपया उधार मिलना मुश्किल था। रुपए की ऐसी तगी लोगोके लिए बिलकुल नई बात थी। कलकत्ते की किलबर्न कम्पनी

के प्रतिनिधि ने अपने बयान मे कहा था —"इस समय किसी भी उद्योग-धधे के लिए रुपया उठाना असम्भव हो रहा है। सरकारी कागज पर कर्ज लेना चाहे तो मिलने का नही, क्योकि सराफ उस पर रुपया देने को तैयार नही है। अच्छी-से अच्छी कम्पनी के शेयर बेचना चाहे, तो शेयर बिकने के नही। जो कम्पनिया डिविडेण्ड देती आ रही है उनके भी शेयर बाजार मे बिक नही सकते। हम लोगो की एक स्टीम-बोट कम्पनी है, जो कई साल से आठ प्रतिशत मुनाफा देती आ रही है। पर अगर हम उसके ५०० शेयर भी बेचना चाहे तो नही बेच सकते। बाजार मे महीनों से रुपए की ऐसी तगी है कि कोई ऐसे शेयर या डिबेन्चर का भी खरीदार नही निकलता।"

रुपया इतना महगा हो जाने से चीजो के दाम गिरे थे और व्यापार मन्दा हो रहा था। श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त ने इस सम्बन्ध मे कमेटी का ध्यान अपने एक नोट की ओर आकर्षित करते हुए कहा था —"टकसाल बन्द हो जाने के बाद भारतवर्ष के प्राय प्रत्येक प्रान्त मे —पजाब, सयुक्त प्रान्त, बगाल, बम्बई, मद्रास, आसाम, और मध्य प्रान्त मे—गल्ले का दाम नीचे गिरना शुरू हुआ। . . मैने १८९३-९४ और १८९४-९५ को एक साथ लिया है, और मैं देखता हूँ कि प्राय सर्वत्र दाम गिर गए थे। मै इसका कारण यही बता सकता हूँ कि टकसाल बन्द हो जाने के बाद रुपया महगा हो गया। १८९३, १८९४ और १८९५ मे मै स्वय बगाल मे था (१८९३ मे मै बाहर था) और मै निजी अनुभव से कह सकता हूँ कि १८९४-९५ मे दाम गिरने का और कोई कारण नही हो सकता था। उस समय सयुक्त प्रान्त मे अकाल था, इसलिए गल्ले का दाम ऊँचा रहना चाहिए था। पर आप देखेगे कि प्राय हर जगह दाम नीचे हो रहे।"

इसी तरह नील और चाय के दाम नीचे गिर गए थे और इनकी काश्त की तरक्की रुक गई थी। बम्बई की कॉटन-मिलो की अवस्था शोचनीय हो रही थी। ९ अगस्त १८९८ के अक मे 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने लिखा था—"परिस्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती जा रही है। ऐसा

बुरा समय तो न कभी देखा गया, न सुना गया। अधिकाश मिले घाटे से चल रही है—कुछ किसी तरह अपनी आय से अपना व्ययमात्र पूरा कर लेती है, बहुत कम मिले ऐसी है जो कुछ मुनाफे के साथ चल रही हो। मालूम नही, ऐसे दुष्काल का अन्त कब होनेवाला है।" वाणिज्य-व्यापार मे दारुण मन्दी छाई हुई थी और बडे-बडे व्यवसायियो को टाट उलट देना पडा था।

विदेशी व्यापार का हाल यह था कि जितना निर्यात (एक्सपोर्ट) होना चाहिए था, नही हो रहा था, और जो आयात (इम्पोर्ट) न होना चाहिए था, होने लगा था। एक्स्पोर्ट मे से इम्पोर्ट घटा देने पर जो बाकी बचता है वह एक्स्पोर्ट-सरप्लस (निर्यात का आधिक्य) कहाता है। एक्सचेज की दर का इस सरप्लस पर क्या असर पडता है वह नीचे के अको से स्पष्ट हो जायगा —

निर्यात का आधिक्य

साल	करोड रुपए	एक्स्चेज की रेट (पेंस)
१८९३–९४	१५	१४.५४
१८९४–९५	३४	१३ १०
१८९५–९६	३२	१३ ६४
१८९६–९७	२०	१४.४५
१८९७–९८	११	१५ ४०

दर जितनी ही ऊँची, सरप्लस उतना ही नीचा—अर्थात् एक्स्पोर्ट उतना ही कम। अवश्य ही एक्सपोर्ट कम होने के कुछ और भी कारण थे—अकाल, भूकम्प, महामारी, सरहदी लडाई इत्यादि—पर सबमे प्रधान कारण एक्स्चेज ही था। जब यहा दाम ऊँचे होते है तब एक्स्पोर्टर को विदेश मे एक हद तक दाम घटा कर माल बेचने की गुजाइश रहती है। पर जब यहा दाम नीचे होते है तब यह गुजाइश नही के बराबर रह जाती है। चीन के व्यापार से भारतवर्ष को क्रमश हाथ धोना पडा। जब यहा का सूत वहा महँगा पडने लगा तब चीन मे ही कॉटन-मिले स्थापित होने लगी, और अन्त मे वह बाजार हमारे हाथ से निकल गया। उधर इम्पोर्ट को

एक्सचेंज बढने से प्रोत्साहन मिला और यहा के उत्पादको की कठिनाई इससे और भी बढ गई। जर्मनी और ऑस्ट्रिया-हंगरी से उन दिनो चुकन्दर की चीनी की बाजार मे बाढ-सी आ गई और देशी चीनी या गुड बनाने-वालो को उससे काफी नुकसान पहुंचा। जो दूरदर्शी थे वे जानते थे कि इम्पोर्ट स्थायी रूप से तभी बढ सकता है, जब एक्सपोर्ट की यथेष्ट उन्नति होती रहे। यही कारण है कि राली ब्रदर्स और ग्राहम कम्पनी-जैसे इम्पोर्टर भी नीचे एक्सचेंज के पक्ष मे थे। मि० राली ने कहा था—"ग्राहम और हमारी फर्म बडे-से-बडे इम्पोर्टर है—बल्कि ग्राहम तो केवल इम्पोर्टर है—फिर भी वे चादी की टकसाल को खोल देने और एक्सचेंज को नीचा रखने के पक्ष मे है।" मि० ग्राहम ने इसका समर्थन करते हुए कहा था—"चादी के और एक्सचेंज के गिरने से स्वय मुझे नुकसान पहुचा है। पर मेरा विश्वास है कि यह नुकसान थोडे समय के लिए है। लोग मुझसे पूछते है कि 'आप कपडे के इम्पोर्टर होते हुए चादी की टकसाल खोल देने के पक्ष मे कैसे है?' मै उत्तर देता हूँ कि यह प्रश्न एक्सपोर्ट या इम्पोर्ट का नही, यह तो देश की भलाई का प्रश्न है। देश की उत्पादन-शक्ति बढ जाय तो एक्सपोर्टर और इम्पोर्टर दोनो ही फायदे मे रहेगे। फर्क इतना ही है कि एक्सपोर्टर फौरन फायदा उठा लेगा और इम्पोर्टर को—अर्थात् मुझे कुछ देर ठहरना पडेगा।"

१८९८ वाले कांग्रेस के अधिवेशन मे एक प्रस्ताव पास हुआ, जिसमे कहा गया कि "एक्सचेंज के गिरने से होनेवाली हानि का मूल कारण है इगलैण्ड मे भारत-सरकार के खर्च की उत्तरोत्तर वृद्धि।' और यह कि "अगर उस नुकसान को पूरा करने के लिए एक्सचेंज को कृत्रिम ढग से ऊचा किया जाता है या चलन मे करेन्सी की कमी कर दी जाती है तो इससे भारतवर्ष की आर्थिक कठिनाई बढेगी और उसकी व्यापारिक क्षति हुए बिना नही रह सकती।"

एक्सचेंज के प्रश्न पर कमेटी सर्वसम्मति से १६ पेन्स के पक्ष मे निर्णय न दे सकी। उसके दो मेम्बर सर जॉन म्यूर और मि० कैम्पबेल ने १५ पेन्स की सिफारिश की, और मि० हार्बेट की राय यह रही कि इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय अभी न किया जाय।

सर जॉन म्यूर और मि० कैम्बेल ने १६ पेंस का विरोध करते हुए यह दिखाया कि यह दर कृत्रिम ढग से कायम की गई थी और इस देश के लिए हानिकर थी, इसने किसानों का बडा नुकसान था।

"यह सच है कि दर जितनी ऊची होगी, भारत-सरकार के लिए स्टर्लिंग उतना ही सस्ता होगा। पर पूछा जा सकता है कि सरकार को जो फायदा हुआ वह आखिर आया कहा से ? इस प्रश्न का उत्तर देना आसान काम है। सरकार को जो लाभ होता है वह वास्तव मे उस किसान की हानि है जिसे अब कम दाम मे ही अपना माल बेच देना पडता है।"

रुपए की असली कीमत तो १५ पेंस से भी बहुत कम थी, इसलिए यह आक्षेप करना जा नहीं था कि उसकी सिफारिश करनेवाले रुपए की कीमत घटाकर उसे 'घटिया' कर देना चाहते थे। प्रत्युत १६ पेंस कीमत बहुत ज्यादा थी, और उसके विरुद्ध बहुत कुछ कहा जा सकता था। कृत्रिम और ऊची दर की भयकरता को कम करने के उद्देश से इन दोनो मेम्बरो ने यह सिफारिश करना मुनासिब समझा कि वह १६ के बजाय १५ पेंस कर दी जाय।

इधर चादी के पक्ष-विपक्ष की बाते हो रही थी, उधर सोने का उत्पादन वेग से बढ रहा था और सोने में चीजो के दाम भी ऊँचे होन लगे थे। १८९८–९९ मे दाम ऊचे होने के कारण इस देश के माल की माग अच्छी रही और एक्सपोर्ट की उन्नति हुई। सोने के उत्पादन मे इस वृद्धि के कारण ससार के मुद्रासम्बन्धी इतिहास मे एक नए अध्याय का आरम्भ हो चुका था या होनेवाला था। भारतवर्ष में भी अब दाम बढने लगे और कुछ समय बाद लोग १६ पेंस के दोषो को भूल से गए और उसीको स्वाभाविक समझने लगे।

यहा भारत-सरकार के आय-व्यय के विषय मे कुछ कह देना आवश्यक है। लॉर्ड रिपन के जाने के बाद इस देश मे कई नए टैक्स लगाए गए, जिससे करदाता का बोझ बेहद भारी हो गया। १८८२–८५ मे सरकार प्रतिवर्ष कर के रूप मे जो कुछ ले चुकी थी उसको आधार मानकर स्वर्गीय गोखले ने अपनी एक स्पीच मे दिखाया था कि १८८५–९८ इन

१४ सालो मे सरकार ने जनता से १२० करोड अधिक लिया था। इसमें से ८० करोड तो फौजी खर्च मे चला गया था, और बाकी दूसरी मदो मे। शिक्षा के लिए उसमे से कुल एक करोड ही प्राप्त हुआ था।

पहले सरकार की ओर से कहा जाता कि एक्सचेंज गिरने से जो हानि होती है वह उसे टैक्स घटाने के प्रश्न पर विचार भी करने नही देती। जब एक्सचेंज १६ पेंस कर दिया गया और सरकार की वह गहन समस्या हल हो गई, तब लोगो को आशा होने लगी कि हमारा बोझ अब हलका कर दिया जाएगा। पर उनका बोझ ज्यो-का-त्यो बना रहा और उनकी आशा निराशा मे परिणत हो गई। रुपए की कीमत जब १२ और १३ पेंस के बीच थी तब सरकार को जितना खर्च पडता था उसमे—रुपए की कीमत १६ पेंस होजाने पर—चार और पाच करोड़ के बीच की बचत होने लगी, पर इस बचत का कई साल तक जनता को कोई लाभ न पहुचा। अब सरकार की नीति यह हो चली कि आय से व्यय पूरा होना ही पर्याप्त नही कहा जा सकता—आय इतनी होनी चाहिए कि प्रतिवर्ष व्यय पूरा कर देने के बाद काफी बचत रहे। १९०१–०२ मे समाप्त होनेवाले पांच वर्षों मे यह बचत १२ २६ करोड रुपए रही। श्रीयुत गोखले का कहना था कि अगर युद्ध और अकाल के कारण व्यय मे वृद्धि न होती तो सरकार की आय उसकी आवश्यकता से प्रतिवर्ष प्राय ६॥। करोड रुपए अधिक होती।

इस विषय पर दूसरे अध्याय मे और भी प्रकाश डाला गया है।

४

आड़ से शिकार

फौलर-कमेटी ने बहुमत से जो सिफारिशें की थी उन सबको भारत-सचिव ने मंजूर कर लिया। उन्होने अपने वक्तव्य में कहा कि—"इस रिपोर्ट के महत्व के अनुसार इस पर ब्रिटिश सरकार ने ध्यानपूर्वक विचार किया है। और इसमें जो तथ्य और जो युक्तिया पेश की गई है उन्हे सार-गर्भित मानती हुई वह इस नतीजे पर पहुची है कि इसके उसूल मान लिए जाय और वे अमल मे लाए जाय।" पर इतना कह कर भारत-सचिव और उनके सलाहकारो ने रिपोर्ट को ताक पर रख दिया और उन उसूलो के ही खिलाफ काम करना शुरू कर दिया।

उन्होने नई मुद्रा-प्रणाली के सगठन या रचना मे कानून से कम—बहुत कम—काम लिया और अपनी निरकुशता प्राय. अक्षुण्ण रखी। जो कुछ करते रहे, हुक्मनामो या फरमानो के जरिए, जो उनके सुविधानुसार बदले जा सकते थे।

इस समय मे कब कौन-सी घटना घटी, इसका एक सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है—

१८९९—एक ऐक्ट पास हुआ, जिससे लोग सॉवरेन या गिनी लेने-देने को बाध्य हो गए। दर रही १६ पेस = एक रुपया।

१८९९–१९०३—भारतीय टकसालो मे सॉवरेन ढालने के सम्बन्ध में समझौते का जो प्रयत्न हो रहा था वह छोड दिया गया।

१९००—रुपयो की ढलाई से जो मुनाफा होता उससे लन्दन मे गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व–सुवर्णनिधि या सुवर्ण-कोप–की रचना की गई।

१९०४—भारत-सचिव की ओर से ऐलान किया गया कि १६$\frac{१}{८}$ पेस की दर से वह चाहे जितने की हुडी भारत-सरकार पर बेचने को तैयार रहेगे।

१९०५—नोटो की पुश्ती के लिए जो करेन्सी रिजर्व था उसकी ओर से कुछ सोना बैक आव इगलैण्ड मे रखा गया, और यह विधान भी बना कि उस रिजर्व का एक हिस्सा लन्दन मे कर्ज या उधार दिया जा सकेगा।

१९०६—पहले यह व्यवस्था थी कि भारतवर्ष मे सोना देनेवाले को सरकार रुपए दे देती। अब यह व्यवस्था कर दी गई कि सिर्फ सोने के ब्रिटिश सिक्के देनेवाले रुपए पा सकेगे।

१९०७—गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की एक शाखा इस देश मे खोली गई, जिसमे रुपए रखे जा सकते थे।

१९०८—कलकत्ते मे लन्दन पर १५ ३/१६ पेस की दर से हुडिया बेची गई और लन्दन मे गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व से उनका भुगतान किया गया।

१९१०—दस और पचास रुपए के नोट अखिल भारतीय कर दिए गए और यह विधान बना कि सोने के ब्रिटिश सिक्कों के बदले नोट मिल सकेगे।

१९११—सौ रुपए के नोट भी अखिल भारतीय कर दिए गए।

१९१३—भारतीय मुद्रा-प्रणाली की जाच के लिए एक शाही कमीशन नियुक्त हुआ।

अब फौलर-कमेटी की सिफारिशो को लेकर हम यह दिखाना चाहते है कि सरकारद्वारा स्वीकृत हो जाने पर भी वे कहा तक अमल मे लाई गई। सबसे पहले सोने के सिक्के की बात लीजिए।

कमेटी ने सिफारिश की थी कि ब्रिटिश सावरेन लेने-देने को लोग बाध्य कर दिए जाय। १८९९ मे एक ऐक्ट के द्वारा यह विधान कर दिया गया। कमेटी की दूसरी सिफारिश यह थी कि जिन शर्तों पर ब्रिटिश शाही टकसाल आस्ट्रेलिया मे सावरेन की ढलाई होने देती है उन्ही शर्तों पर यहा भी होने दे। ब्रिटिश सरकार की ओर से या उसके अर्थ-विभाग की ओर से इसका ऐसा विरोध हुआ कि यह सिफारिश सिफारिश ही रह गई। वास्तव मे वह विरोध उचित आधार पर नहीं किया गया। पर सरकार की जो आपत्तियां पेश की गई उनसे उसके असली भाव के सम्बन्ध मे कुछ भी सन्देह नहीं रह सकता था।

पहले तो शाही टकसाल ने यहा ढलाई की व्यवस्थादि के विषय मे अडचने डाली, पर जब इनसे भी काम बनते न देखा तब अन्त मे ब्रिटिश अर्थ-विभाग ने यह कहना शुरू किया कि आखिर भारतवर्ष मे सॉवरेन ढालने की ऐसी जरूरत ही कौन सी है ? १८९९ से १९०३ तक पत्र-व्यवहार ही चलता रहा और अन्त मे भारत-सरकार ने हार मानकर यह प्रयत्न ही छोड दिया। हा, उसकी ओर से यह बराबर कहा जाता रहा कि हमारा लक्ष्य ज्यो-का-त्यो बना हुआ है और हम आशा करते है कि हम किसी-न-किसी दिन सोने का सिक्का यहा ढाल सकेंगे। यहा यह कह देना आवश्यक है कि ब्रिटिश सरकार या ब्रिटिश शाही टकसाल को हमारे मार्ग मे रोडे अटकाने का अवसर इसलिए मिल गया कि हम ब्रिटिश सॉवरेन की ढलाई की इजाजत मागते थे। अगर हम अपना ही कोई सिक्का—जैसे मोहर या अशरफी—ढालने की बात करते, तो हमारे मार्ग मे वह कठिनाई उपस्थित न होती।

१९१२ मे सर विट्ठलदास ठाकरसी ने बडी व्यवस्थापिका सभा मे इस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया कि भारतीय टकसालों में सोने के भारतीय सिक्के ढालने की व्यवस्था की जाय। उन्होने अपने भाषण में कहा —

"इस विषय मे कभी कोई सन्देह नही रहा है कि हमारी मुद्रा नीति का लक्ष्य है सोने के सिक्के के साथ सोने का मान या स्टैण्डर्ड। . . . पर आज तक सोने के सिक्के की व्यवस्था न हो सकी। विलम्ब से इस देश की बडी हानि हो रही है और इस विषय की कठिनाई भी बढती जा रही है। कहा जाता है कि इस देश के लोग इतने गरीब है कि यहा सोने के सिक्के चलाना बुद्धिमता का काम नही। पर यह दलील लचर है। सोने के स्टैण्डर्ड के लिए जब यहा के लोग गरीब नही तब, सोने के सिक्के के लिए क्योकर हो सकते हैं ? इस समय तो यह अवस्था है कि हमारी सोने से जो भलाई हो सकती है, नही हो रही, पर जो बुराई हो सकती है वह हो रही है।"

श्रीयुत गोखले ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि मुद्रा-

प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिसका संचालन प्राकृतिक रीति से होता रहे— जिसमें सरकार का हस्तक्षेप या दखल नहीं के बराबर हो, और वह प्रणाली तभी हो सकती है जब फौलर-कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार उसका आधार सोना कर दिया जाय।

सरकार की ओर से कहा गया कि अवश्य ही सारे प्रश्न पर फिर से विचार करने की जरूरत है और हम इसे भारत-सचिव के सामने रखने जा रहे हैं। इसपर सर विट्ठलदास ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया।

भारत-सरकार ने भारत-सचिव को लिखा, और भारत-सचिव को फिर ब्रिटिश सरकार के अर्थ-विभाग का दरवाजा खटखटाना पड़ा। पर इसकी मनोवृत्ति या भाव में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। फिर वही किस्सा शुरू हुआ। कहा गया कि भारत-सरकार इस झमेले में क्यों पड़ना चाहती है? सावरेन ढालने के लिए हमारी देखरेख जरूरी है। अगर भारत-सरकार की टकसाल का प्रबन्ध हमने हाथ में ले लिया तो यह असुविधाजनक होगा, और अगर सावरेन ढालने के लिए हमने अपनी शाखा वहां खोल दी तो इसमें खर्च बहुत ज्यादा पड़ेगा। भारत-सचिव की अपनी राय सोने के सिक्के के पक्ष में नहीं थी पर भारत सरकार का आग्रह देखकर उन्होंने लिखा कि ब्रिटिश अर्थ-विभाग की शर्तें आपको मंजूर न हों तो मैं यह इजाजत देने को तैयार हूं कि आप दस रुपए की अपनी मोहर ढालना शुरू करदें। भारत-सरकार इस पर राजी हो गई। पर भारत-सचिव ने लिखा कि कुछ भी करने से पहले सर्वसाधारण की राय दर्याफ्त कर लेना जरूरी है। भारत-सरकार को यह बुरा-सा लगा और उसने जवाब दिया कि व्यवस्थापिका सभा में, और उसके बाहर, इस विषय की कितनी ही बार आलोचना हो चुकी है और यह स्पष्ट हो चुका है कि यहां का लोकमत जोरों से इस प्रस्ताव का समर्थन करता है, बल्कि यहां तो यह पूछा जाता है कि जो इजाजत कनाडा और आस्ट्रेलिया को मिल चुकी है वह भारत को क्यों नहीं मिल रही है? १८ जनवरी १९१३ को भारत-सचिव ने सूचित किया कि जो शाही कमीशन नियुक्त होने जा रहा है वह इस विषय का भी अनुसन्धान करेगा। भारत-सरकार अब और कर ही क्या सकती थी? फौलर-कमेटी की जो सिफारिश

भारत-सचिव द्वारा स्वीकृत हो चुकी थी उसपर १४ साल बाद अब दूसरा कमीशन अपनी राय देने जा रहा था कि उसे अमल मे लाना कहा तक ठीक होगा।

रुपए का वजन, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, १८० ग्रेन (३/८ औंस) होता है, जिसमे खालिस चादी इस समय १६५ ग्रेन थी। रुपए की नकली कीमत १६ पेंस थी, और असली कीमत इससे बहुत कम। जब चादी का दाम लन्दन के बाजार मे २४ पेंस होता तब सरकार को एक रुपया ढालने मे प्राय ९.१८१ पेंस खर्च पडता। जब चादी का दाम ३२ पेंस होता तब यह खर्च १२.२४१ पेंस बैठता। असली और नकली कीमतो के बीच जो फर्क था उसे सरकार अपना मुनाफा समझती थी।

फौलर-कमेटी की सिफारिश थी—

"रुपयो की ढलाई से जो मुनाफा हो वह सरकार की साधारण आय मे शामिल न किया जाय। सोने मे उसका एक खास रिजर्व रखा जाय और यह रिजर्व पेपर करेन्सी रिजर्व या सरकारी रोकड से बिलकुल अलग हो।"

कमेटी की मन्शा यह थी कि यह रिजर्व सोने के रूप मे रखा जाय, और भारतवर्ष मे ही रखा जाय। पर भारत-सचिव के सलाहकारो ने सोने मे ऐसे कागज को भी शरीक बताया जिसका तबादला सोने से हो सकता था। भारत-सरकार के तत्कालीन अर्थ-सदस्य सर एडवर्ड लॉ भी इसी मत के थे। हा, लॉर्ड कर्जन स्वय अर्थ की ऐसी खेचातानी के विरुद्ध थे, और उन्होने भारत-सचिव को लिखा भी कि हमे कोई ऐसी कार्रवाई नही करनी चाहिए जिससे किसी प्रकार की गलतफहमी फैले या लोगो का विश्वास उठ जाय। पर भारत-सचिव ने उनकी एक न सुनी, और सरकार को आदेश दिया कि रुपयो की ढलाई से जो मुनाफा हो वह आप नियमित रूप से हमारे पास भेज दिया करे। इस प्रकार गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की स्थापना लन्दन मे हुई। और उसमे सोने के अलावा स्टर्लिंग कागज भी रहने लगे।

१९१३ वाले शाही कमीशन ने कई गवाहो से इस विषय पर प्रश्न किए, और यह जानना चाहा कि सोने से फौलर-कमेटी का सचमुच अभिप्राय

गया था। ऐसे गवाहों में मि० मार्चेण्ट, मि० कोल और मि० रास के नाम उल्लेखनीय हैं। मि० मार्चेण्ट स्वयं फौलर-कमेटी के सदस्य रह चुके थे। उन्होंने कहा कि "अब इस विषय में लोगों के विचार बदल गए हैं और मैं स्वयं सोने की जगह स्टर्लिंग के व्यवहार का समर्थन करूँगा। पर जिस समय की यह बात है उस समय तो सोने से अभिप्राय वास्तविक सोने से ही था।" मि० कोल बैंक आव् इंगलैण्ड के गवर्नर रह चुके थे। उन्होंने भी कहा कि प्रारम्भ में यही विचार था कि सारा-का-सारा रिजर्व सोने में रखा जाय। मि० रास बंगाल चेम्बर के प्रतिनिधि-स्वरूप गवाही देने गए थे। उनका वक्तव्य यह था—

"फौलर-कमेटी की रिपोर्ट की भाषा बहुत स्पष्ट है। उसकी सिफारिश थी कि यह रिजर्व पेपर करेन्सी रिजर्व या सरकारी रोकड से बिलकुल अलग रखा जाय। इसका अर्थ यही हो सकता है कि रिजर्व इसी देश में रहने-वाला था। इंगलैण्ड में रखने की मन्शा होती तो यह क्यों लिखा जाता कि 'पेपर करेन्सी रिजर्व और सरकारी रोकड से बिलकुल अलग?' वहाँ तो यों ही यह रिजर्व अलग रहता। रिजर्व में खाली सोना रहे या नहीं, इस सम्बन्ध में मैं कमेटी की इस सिफारिश को निर्णयात्मक समझता हूँ—'एक्सचेंज का रुख गिरने की ओर हो तो सरकार अपने पास के सोने का कुछ हिस्सा विलायत भेज दे।' मैं तो इसका अर्थ यही लगा सकता हूँ कि जब सरकार के पास इस देश में सोना हो तब वह उसे विलायत जाने दे। फिर कमेटी की दूसरी सिफारिश यह थी कि जब सरकार के पास रिजर्व में काफी सोना हो जाय और उसके खजाने में भी सोना हो, तब वह भारत-वर्ष में अपनी देनदारी सोने में चुका सकती है।"

अर्थ का अनर्थ कर—सत्य और न्याय की हत्या कर—भारत-सचिव ने इस देश का सोना विलायत मँगाना और उसका मनमाना उप-योग करना शुरू कर दिया। इस धींगाधींगी ने भारत-सरकार को भी हैरान कर दिया।

१९०७ में लॉर्ड इंचकेप की अध्यक्षता में एक कमेटी इस देश में रेलों की उन्नति के लिए रुपए जुटाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए बैठी।

इसकी सिफारिश हुई कि उस साल रुपयो की ढलाई के मुनाफे* का डेढ करोड रुपया रेलो के सुधार मे लगा दिया जाय। पर भारत-सचिव इससे भी दो कदम आगे गए और उन्होने निश्चय किया कि जब तक गोल्ड स्टैंडर्ड रिजर्व ३० करोड रुपए का नही हो जाता तब तक हर साल मुनाफे की आधी रकम रेलो मे लगती रहे। उनका विचार शायद यह था कि रिजर्व ३० करोड हो जाने पर सारी रकम उस काम मे लगा दी जाय। भारतवर्ष मे उनके इस निर्णय से बडा असन्तोष फैला और इसका काफी विरोध किया गया।

भारत-सरकार ने भी २४ जून १९०७ को तार-द्वारा निवेदन किया कि रिजर्व का सोना अभी ऐसे काम मे न लगाया जाय, पर भारत-सचिव ने उसपर कुछ भी ध्यान नही दिया और डेढ करोड से ऊपर रुपया रेलो में लगा ही दिया। साथ ही यह कहा कि जो निर्णय हो चुका है उसीके अनुसार आगे भी उपयोग होता रहेगा।

भारत-सरकार ने एक्स्चेंज के गिरने की आशका प्रकट करते हुए कहा था कि रिजर्व को ऐसी परिस्थिति के लिए अक्षुण्ण रखा जाय। इसके उत्तर मे भारत-सचिव ने लिखा था कि "डरने की कोई बात नही, व्यापार की वर्तमान अवस्था और अपने पास के साधनो को देखते हुए मै इस आशका को निर्मूल समझता हूँ।"

पर जो आसमान इतना साफ नजर आता था उसीमे घनघोर घटा को उमडते देर न लगी। १९०७ मे यहा अनावृष्टि रही। कुछ महीने बाद अमेरिका मे एक भीषण आर्थिक सकट उपस्थित हो गया। यहा से एक्सपोर्ट बहुत कम हुआ। माग इस समय रुपए की नही, स्टर्लिंग की थी, क्योकि

---

* दर असल यह कोई मुनाफा नही था। जैसे कागज के नोटो की पुश्ती के लिए करेन्सी रिजर्व था, वैसे ही चादी के नोटो की पुश्ती के लिए गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व। रुपया अपनी नकली कीमत का कुछ हिस्सा अपने साथ लिए चलता था, पर बाकी कीमत की पुश्ती के लिए रिजर्व में सोना रखना जरूरी था।

भारत-सचिव के निर्णय के आगे भारत-सरकार ने सिर झुकाया, पर इतना कहे बिना उससे न रहा गया कि "आपका यह निर्णय हम खेद के साथ स्वीकार करते है।" भारत-सचिव ने केवल १,०००,००० पौड सोने के रूप मे रखना मजूर किया था।

१९०६ मे गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की एक शाखा इस देश मे खोली गई जिसमे छ करोड रुपए रखने की व्यवस्था की गई। यह कुछ ऊटपटांग-सी बात थी कि जिसका नाम 'स्वर्णनिधि' हो उसमे रुपए रखे जाय। पर भारत-सचिव यहा भी एक चाल चल रहे थे। करेन्सी रिजर्व मे यह कानूनी व्यवस्था थी कि लन्दन मे एक हद से ज्यादा रकम सोने मे ही रखी जा सकती थी। मान लीजिए कि रुपयो की माग हुई और लन्दन मे भारत-सचिव को सोना मिला। अगर ये रुपए करेन्सी रिजर्व से दिए गए तो वह सोना उसी रिजर्व की सम्पत्ति हुई, और भारत-सचिव को उस सोने के साथ मनमानी करने का अधिकार नही था। पर गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व मे कानून का कोई ऐसा नियन्त्रण नही था, भारत-सचिव जो चाहते, कर सकते थे। इसलिए इस रिजर्व की यह शाखा उनके सुभीते के लिए खोली गई। छ करोड रुपए तक इस शाखा से यहा दिए जा सकते थे, और इनके बदले विलायत मे जो सोना मिलता उसका भारत-सचिव जिस प्रकार चाहते, उपयोग कर सकते थे।

३१ मार्च १९१३ को गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व इस रूप मे था :—

	पौंड
सिक्यूरिटीज या कागज (बाजार दर से)	१५,९४५,६६५
रकम, जो थोडे समय के लिए उधार दी गई थी	१,००५,६६८
	१६,९५१,३३३
बैक आव इगलैण्ड मे रखा हुआ सोना	१,६२०,०००
	१८,५७१,३३३
भारतीय शाखा मे छ करोड रुपए, १५ प्रति पौं० दर से	४,०००,०००
	२२,५७१,३३३ पौंड

उस समय गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व-सम्बन्धी नीति यह थी कि जब यह २५,०००,००० पौंड हो जाय तब इस विषय पर फिर से विचार हो कि रुपयो की ढलाई का मुनाफा और सूद से होनेवाली आमदनी सब-की-सब इस रिजर्व मे जमा की जाय या नही।

३१ मार्च १९१३ को पेपर करेन्सी रिजर्व का यह हाल था कि चलन मे कुल नोट ६८.९७ करोड रुपए के थे। इनकी पुस्ती के लिए रिजर्व मे ये चीजे थी —

भारतवर्ष मे रुपए	१६ ४५	करोड	रुपए
" सोना	२९ ३७	"	"
लन्दन मे सोना	९ १५	"	"
लन्दन मे सिक्यूरिटीज	४ ००	"	"
भारतवर्ष मे "	१०.००	"	"
	६८ ९७	करोड	रुपए

१८६२ मे चलन मे कुल नोट ३ ६९ करोड थे। १८९० मे यह तादाद १५ ७७ करोड हो चली थी। नोटो के प्रचार मे विशेष वृद्धि चादी की टकसाल बन्द हो जाने के बाद हुई। इधर उनकी लोकप्रियता बढाने के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले विधान मे कई सशोधन हुए।

१८७५ से पहले रिजर्व मे कुछ सोना रहता था, पर चादी के मुकाबले जब सोना महगा हो चला तब उसका रिजर्व मे आना बन्द हो गया। १८९३ मे सोने और रुपए के बीच की दर बाधी गई और सरकार सोने के बदले रुपए देने को तैयार हुई। पर चूकि सोने की कीमत बाजार मे ज्यादा थी, कोई रुपए लेने के लिए सरकार के पास अपना सोना न ले जाता था। १८९८ में जब एक्सचेज १६ पेंस हो गया तब लोग सरकार को सोना देकर उससे रुपए लेने लगे। करेन्सी रिजर्व मे इस प्रकार सोना इकट्ठा होने लगा। १९०० के आरम्भ मे प्राय' ७॥ करोड रुपए का सोना वहा इकट्ठा हो चुका था।

सोने को चलन में लाने के लिए कुछ प्रयत्न किया गया, पर वह विशेष सफल न हो सका। उस समय भारतवर्ष के कुछ हिस्सो मे अकाल पड़ा हुआ था और आर्थिक अवस्था सोने के चलन के अनुकूल नही थी। पर जब सोना चलन से लौट कर सरकारी खजाने मे आने लगा तब भारतवर्ष में उसके चलन के विरोधी इसका यह अर्थ लगाने लगे कि यहा के लोग गरीब होने के कारण सोने का व्यवहार नही कर सकते, उनके लिए रुपया ही विशेष उपयुक्त है, इत्यादि। वास्तव में उस साल यहा की अवस्था सोने के चलन के प्रतिकूल थी। इसके बाद फिर कभी सरकार की ओर से सोने को चलन में लाने के लिए कोई खास उद्योग नही किया गया।

आरम्भ में करेन्सी रिजर्व का सारा सोना इसी देश मे रहता था। १८९८ में अस्थायी रूप से कुछ सोना लन्दन मे रखा गया। पर यह व्यवस्था कुछ ही समय बाद स्थायी कर दी गई। कारण यह बताया गया कि वहा चादी खरीदने के लिए सोना रखना जरूरी था। बाद में यह विधान बना कि करेन्सी रिजर्व का सोना सरकार, लन्दन में या इस देश में, जहा चाहे, रख सकती थी। भारत-सचिव उस रिजर्व का भी काफी सोना लन्दन में रखने लगे।

१९०५ के विधानद्वारा सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह करेन्सी रिजर्व का एक निश्चित भाग स्टर्लिंग सिक्युरिटीज में रख सकती है। पहले इसकी हद दो करोड़ रुपए थी। १९११ में यह चार करोड़ कर दी गई। सारा हिस्सा, जो सिक्युरिटीज में यहा और लन्दन में रखा जा सकता था, १८ करोड़ था।

गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व और करेन्सी रिजर्व के अलावा भी सरकार के हाथ में कुछ रुपए रहते थे, जिसे सरकारी रोकड़ कहते थे। यह रोकड़ भारतवर्ष और लन्दन, दोनों जगह रखी जाती थी।

कायदा यह था कि लन्दन में कम-से-कम ४,०००,००० पौंड रहे और भारतवर्ष में कम-से-कम ८,०००,००० पौंड। नए साल के आरम्भ में भारतवर्ष में प्रायः १२,०००,००० पौंड रखना पड़ता था, अर्थात सब

मिला कर १६,०००,००० पौण्ड। वास्तव मे कब कहा कितनी रोकड थी, यह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा —

३१ मार्च	लन्दन मे पौड	भारतवर्ष में पौंड	कुल जोड पौड
१९०८	४,६०७ २६६	१२,८५१,४१३	१७,४५८,६७९
१९०९	७,९८३,८९८	१०,२३५,४८३	१८,२१९,३८१
१९१०	१२,७९९,०९४	१२,२९५,४२८	२५,०७४,५२२
१९११	१६,६९६,९९०	१३,५६६,९२२	३०,२६३,९१२
१९१२	१८,३९०,०१३	१२,२७९,६८९	३०,६६९,७०२

स्पष्ट है कि रोकड बाकी जितनी होनी चाहिए थी उससे कही ज्यादा थी, और इसका कारण यह था कि लन्दन का हिस्सा बढने-बढने प्राय तिगुना होने लगा था। जहा ४,०००,००० पौड पर्याप्त था वहा १८,०००,००० पौंड से भी अधिक जमा रहता था।

आखिर इतना रुपया आता कहा से था? इसका उत्तर है—बजट की बचत से। हर साल व्यय से आय अधिक होती, और जो बचत होती वह लन्दन मगा ली जाती।

१८९८-९९ से बचत होना शुरु हुआ था, और प्रथम महासमर के आरम्भ तक होता ही गया। पहले दस वर्षो मे जो बचत हुई वह ३७½ करोड रुपए थी। १९१० और १९१४ के बीच २० करोड की और बचत रही। यह भारत-सरकार के बजट की बात है। प्रातीय सरकारो की बचत इसमे शामिल नही है।

श्रीयुत गोखले के बजट-सम्बन्धी भाषणो मे सरकार की इसलिए काफी निन्दा मिलती है कि वह हर साल टैक्स के रूप मे जरूरत से ज्यादा लोगो से वसूल करती, और अन्धाधुन्ध खर्च करने के बाद जो कुछ बच रहता उसे शिक्षा और स्वास्थ्य-सम्बन्धी कामो मे न लगा कर और कामो मे लगा देती। बजट बनाते समय आय का तखमीना जानबूझ कर कम किया जाता। खर्च पर किसी प्रकार का नियत्रण था ही नही। यूरोपियन कर्मचारियो की सख्या बढती ही जाती थी, पर यह सब होने पर भी जब बचत होती और सरकार से उसका कुछ हिस्सा शिक्षा-प्रचार या स्वास्थ्य-सुधार जैसे

कामो के लिए मागा जाता, तब उत्तर मिलता कि इसमे से कुछ भी मिलना असम्भव है !

श्रीयुत गोखले ने अपने एक भाषण मे दिखाया था कि १८९८-९९ और १९०८-०९ के बीच भारत-सरकार का खर्च—समान की तुलना समान मे करने पर—बीस करोड रुपए बढ गया था। इस बीच मे कुछ टैक्स माफ कर दिए गए थे सही, पर उसका असली कारण यह था कि एक्सचेंज ऊचा होने के कारण विलायत जानेवाली रकम मे काफी बचत होने लगी थी। ५ मार्च १९१० को श्रीयुत गोखले का बडी व्यवस्थापिका सभा मे एक भाषण हुआ, जिसमे उन्होने कहा —

"प्राय छ साल से मै लगातार कोशिश करता आ रहा हू कि सरकार को जो बचत होती है वह प्रातीय सरकारो को सफाई-जैसे काम पर खर्च करने के लिए दे दी जाय। दो साल की बात है कि तत्कालीन अर्थ-सदस्य सर एडवर्ड बेकर ने म्युनिसिपैलिटियो द्वारा सफाई पर खर्च होने के लिए करीब पचास लाख रुपए दिए थे। मेरी सारी अपीलो का कोई नतीजा निकला ना नही ! उसको छोड दे तो कहना होगा कि मेरा प्रयत्न निष्फल रहा।"

गोखले का कहना था कि भारतवर्ष-जैसे देश मे आय-व्यय का तखमीना बहुत कठिन काम है—इसमे बडी सावधानी से काम लेना पडता है; इस सावधानी के कारण अगर बचत रह जाती है तो हम इसके लिए जवाबदेही नही ठहराए जा सकते, पर उस बचत का उपयोग सबसे पहले कर्ज घटाने के लिए होना मुनासिब है। कर्ज लेने-देने का काम विलायत मे होता, इसलिए यह रकम भी वही भेज दी जाती। अगर कुछ समय के लिए इसकी आवश्यकता नही भी हुई, तो कहा जाता कि इसे व्यापारियो को उधार देकर कुछ ब्याज कमाया जा सकता।

[illegible] भारतवर्ष [illegible] रुपया [illegible] इंग्लैंड मे जमा रहता था। [illegible]

का विभाग) का रपया-पैसा जमा रखने के अलावा भी उसका कुछ काम कर दिया करती—इसके लिए इसे जो कमीशन या पुरस्कार मिलता वह साल मे ६६,००० पौड होता था। सब मिला कर इस बैंक को इडिया ऑफिस से साल मे प्राय ८६,००० पौंड अर्थात् १२,९०,००० रुपए का लाभ था। चेम्बरलेन-कमीशन के सामने इडिया ऑफिस की ओर से आने वाले गवाहो ने भी स्वीकार किया कि यह रकम बहुत बडी थी और भारतवर्ष को यह सौदा बेहद महगा पड रहा था। पर उनका कहना था कि इडिया ऑफिस लाचार है। कानूनन वह दूसरी बैंक से अपना काम करा नही सकता, और जब बैंक आव इगलैण्ड से अनुनय-विनय करता है कि कमीशन घटाइए तब बैंक साफ इनकार कर देती है। वास्तव मे बैंक आव् इगलैण्ड इडिया ऑफिस की बेबसी का नाजायज फायदा उठा रही थी।

इडिया ऑफिस लन्दन मे रुपया उधार देने का काम करता था। कहा जाता है कि इस विषय मे वह ईस्ट इडिया कम्पनी की बताई हुई राह पर चल रहा था।

इडिया ऑफिस की ओर से एक खास दलाल लेन-देन के इस काम को देखता था। ऐसे लोगो की एक लिस्ट रखी जाती, जिन्हे रुपया उधार देने मे कोई जोखिम नही थी। अगर कोई व्यक्ति या फर्म अपना नाम इस लिस्ट पर चढाना चाहता तो उसे दरख्वास्त करनी पडती। यह दरख्वास्त इडिया ऑफिस की फाइनेस-कमेटी की सिफारिश हो जाने पर मजूरी के लिए भारत-सचिव के पास जाती। जिनकी साख ऊची होती वे ही इस लिस्ट पर आ सकते थे।

जिस फाइनेस-कमेटी का यहा जिक्र किया गया है उसके चेयरमैन या अध्यक्ष इधर कुछ वर्षो से लन्दन के लॉर्ड इचकेप या सर फेलिक्स शुस्टर जैसे बडे व्यापारी होते आ रहे थे। लेन-देन के काम मे इस चेयरमैन का बहुत बडा हाथ रहता, और भारत-सचिव प्राय इन्ही के कहने के अनुसार चलते थे।

कर्ज सिक्यूरिटीज पर दिया जाता था, पर कुछ खास बैंको को बिना जमानत के ही दे दिया जाता। बैंक आव् इगलैण्ड की ओर से गवाही देने

वाले मि० कोल ने चेम्बरलेन-कमीशन से कहा था कि उनके यहा यह प्रथा नही थी, और बडी-से-बडी बैंक को भी सिक्यूरिटीज देने पर ही रुपया उधार मिल सकता था। कर्ज लेनेवालो मे दो बडी बैंके ऐसी थी, जिनसे लॉर्ड इनचेप और सर फेलिक्स शुस्टर स्वय सम्बद्ध थे। उस समय ऐसे समालोचको की कमी नही थी, जिन्होने इन दोनो पर पक्षपात का दोषारोपण करते हुए यह कहा कि इनका एक हाथ कर्ज देता था, और दूसरा लेता था। पर लार्ड इचकेप ने अपनी और सर फेलिक्स शुस्टर की सफाई मे कहा कि उन्होने उन बैंको के साथ जरा भी रिआयत नही की थी।

इण्डिया ऑफिस के दलाल मि० होरेस स्कॉट थे। उनसे पहले उनके पिता इस पद पर रह चुके थे। ब्याज से जो आमदनी होती उसपर पाँच प्रतिशत के हिसाब से मि० स्कॉट को दलाली मिलती थी। १९१०-११ मे उनकी दलाली १६,००० पौड अर्थात् २,४०,००० रुपए हुई थी। इस पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री केन्स ने लिखा था—"जब पहले-पहल यह मालूम हुआ कि बडे लाट को छोड़, भारत-सरकार की ओर से सबसे अधिक वेतन या पुरस्कार पानेवाला इण्डिया ऑफिस का यह दलाल है तब लोग आश्चर्य-चकित हो गए। मजा यह कि इस दलाल को अपना पूरा समय इण्डिया ऑफिस के काम के लिए नही लगाना पडता, उसका अपना भी व्यवसाय है, और वह उसे भी देखता-भालता है।"

आन्दोलन उठने पर मि० स्कॉट की दलाली घटा दी गई। फिर भी इससे उनकी आय आठ हजार पौड अर्थात् १,२०,००० रुपए के लगभग थी। भारत-सरकार की ओर से स्टॉक (कागज) की खरीद-बिक्री करने से उन्हें १,५०० पौंड अलग मिलता था। समालोचको का कहना था—और वह ठीक कहना था कि घटा देने पर भी इण्डिया ऑफिस के दलाल की दलाली बहुत ज्यादा थी। लेन-देन करोडो का होता था, और लाभ की दर बाजार की हालत पर निर्भर रहती थी। दलाल की कार्य-कुशलता से आमदनी मे इतना ज्यादा फर्क नही पड सकता था कि उसे इस पैमाने पर पुरस्कार दिया जाय। पर इण्डिया ऑफिस ऐसी सलाह पर कब ध्यान देनेवाला था?

भारतवर्ष का जो रुपया लन्दन के व्यापारियो को इस प्रकार उधार दिया जाता वह कभी-कभी २७ करोड के करीब पहुँच जाता था। ब्याज की दर कभी-कभी इतनी नीची होती कि बैंक आव् इगलैण्ड भी हैरान हो जाती। इस बात को सब स्वीकार करते थे कि लन्दन का सराफा और लन्दन का व्यापार, दोनो को इण्डिया ऑफिस की इस महाजनी से बहुत लाभ था।

पर भारतवर्ष का रुपया भारतवर्ष के काम न आ सकता था। यहा सरकार की नीति इतनी सकीर्ण थी कि बडी-से-बडी बैंक के लिए भी उधार लेना लाभप्रद नही था। १८९९ और १९०६ के बीच कुल छ बार बैंको ने सरकार से कर्ज लिए—प्रत्येक बार २० से ४० लाख रुपए के बीच। १९०६ और १९१३ के बीच लेन-देन का काम हुआ ही नही। व्यापारियो को यहा प्राय ऊँचे ब्याज पर रुपया मिलता। ८ प्रतिशत यहा के लिए साधारण दर थी। जब कभी लोग सरकार से कहते कि रुपया सस्ता करके वाणिज्य-व्यापार और उद्योग-धधो की उन्नति मे सहायता पहुँचाइए तब उन्हे उत्तर मिलता कि "यह सहायता पहुँचाना हमारा काम नही। बाजार को अपने पैरो पर खडा होना चाहिए, और भारतीय पूजी ऐसे कामो मे लग सके, इसका प्रबन्ध करना चाहिए।" भारतवर्ष का धन लन्दन के लिए था, भारतवर्ष के लिए नही!

भारत-सचिव भारत-सरकार पर जो हुण्डी किया करते वह 'कौसिल बिल' कहलाती थी। भारतवर्ष मे आयात (इम्पोर्ट) की अपेक्षा यहा से निर्यात (एक्स्पोर्ट) अधिक होने के कारण स्टर्लिंग की अपेक्षा रुपए की माग प्राय अधिक रहती थी। रुपए चाहनेवाले लोग विलायत मे भारत-सचिव को सोना या स्टर्लिंग देकर उससे भारत-सरकार के नाम हुण्डी ले सकते थे और हुण्डी भुना कर उसके रुपए कर सकते थे। इसके लिए कायदा यह था कि रुपए चाहनेवालो को टेण्डर देना पडता—अर्थात् यह बताना पडता कि वे किस दर से उसे खरीदने को तैयार है। फिर भारत-सरकार की ओर से यह सूचित किया जाता कि किसकी दर मजूर हुई है और किसको कितने की हुण्डी मिलेगी। तार-द्वारा जो हुण्डी की जाती उसके लिए

वाले मि० कोल ने चेम्बरलेन-कमीशन से कहा था कि उनके यहां यह प्रथा नहीं थी, और बड़ी-से-बड़ी बैंक को भी सिक्यूरिटीज देने पर ही रुपया उधार मिल सकता था। कर्ज लेनेवालों में दो बड़ी बैंकें ऐसी थीं, जिनसे लॉर्ड इन्चेप और सर फेलिक्स शुस्टर स्वयं सम्बद्ध थे। उस समय ऐसे समालोचकों की कमी नहीं थी, जिन्होंने इन दोनों पर पक्षपात का दोषारोपण करते हुए यह कहा कि इनका एक हाथ कर्ज देता था, और दूसरा लेता था। पर लार्ड इन्चेप ने अपनी और सर फेलिक्स शुस्टर की सफाई में कहा कि उन्होंने उन बैंकों के साथ जरा भी रिआयत नहीं की थी।

इण्डिया आफिस के दलाल मि० होरेस स्काट थे। उनसे पहले उनके पिता उस पद पर रह चुके थे। ब्याज से जो आमदनी होती उसपर पाव प्रतिशत के हिसाब से मि० स्कॉट को दलाली मिलती थी। १९१०-११ में उनकी दलाली १६,००० पौंड अर्थात् २,४०,००० रुपए हुई थी। इस पर टिप्पणी करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री केन्स ने लिखा था—"जब पहले-पहल यह मालूम हुआ कि बड़े लाट को छोड़, भारत-सरकार की ओर से सबसे अधिक वेतन या पुरस्कार पानेवाला इण्डिया आफिस का यह दलाल है, सब लोग आश्चर्य-चकित हो गए। मजा यह कि इस दलाल को अपना पूरा समय इण्डिया आफिस के काम के लिए नहीं लगाना पड़ता; उसका अपना भी व्यवसाय है, और वह उसे भी देखता-भालता है।"

आन्दोलन उठने पर मि० स्कॉट की दलाली घटा दी गई। फिर भी इसपर उनकी आय आठ हजार पौंड अर्थात् १,२०,००० रुपए के लगभग थी। भारत-सरकार की ओर से स्टॉक (कागज) की खरीद-बिक्री करने के लिए उन्हें १,५०० पौंड अलग मिलता था। समालोचकों का कहना था—और बहुत ठीक कहना था कि घटा देने पर भी इण्डिया आफिस के दलाल की कमाई बहुत ज्यादा थी। लेन देन कागजों का होता था, और ब्याज की दर बाजार की हालत पर निर्भर करती थी। दलाल की कार्यकुशलता से आमदनी के ज्यादा होने का सवाल नहीं था कि उसे इस बात पर पुरस्कार दिया जाय। पर इण्डिया आफिस क्यों दलाल पर यह ज्यादा देन करता था?

भारतवर्ष का जो रुपया लन्दन के व्यापारियो को इस प्रकार उधार दिया जाता वह कभी-कभी २७ करोड के करीब पहुँच जाता था। व्याज की दर कभी-कभी इतनी नीची होती कि बैंक आव् इगलैण्ड भी हैरान हो जाती। इस बात को सब स्वीकार करते थे कि लन्दन का सराफा और लन्दन का व्यापार, दोनो को इण्डिया ऑफिस की इस महाजनी से बहुत लाभ था।

पर भारतवर्ष का रुपया भारतवर्ष के काम न आ सकता था। यहा सरकार की नीति इतनी सकीर्ण थी कि बडी-से-बडी बैंक के लिए भी उधार लेना लाभप्रद नही था। १८९९ और १९०६ के बीच कुल छ बार बैंको ने सरकार से कर्ज लिए—प्रत्येक बार २० से ४० लाख रुपए के बीच। १९०६ और १९१३ के बीच लेन-देन का काम हुआ ही नही। व्यापारियो को यहा प्राय ऊँचे व्याज पर रुपया मिलता। ८ प्रतिशत यहा के लिए साधारण दर थी। जब कभी लोग सरकार से कहते कि रुपया सस्ता करके वाणिज्य-व्यापार और उद्योग-धधो की उन्नति में सहायता पहुँचाइए तब उन्हे उत्तर मिलता कि "यह सहायता पहुँचाना हमारा काम नही। बाजार को अपने पैरो पर खडा होना चाहिए, और भारतीय पूजी ऐसे कामो मे लग सके, इसका प्रवन्ध करना चाहिए।" भारतवर्ष का धन लन्दन के लिए था, भारतवर्ष के लिए नही।

भारत-सचिव भारत-सरकार पर जो हुण्डी किया करते वह 'कौसिल बिल' कहलाती थी। भारतवर्ष मे आयात (इम्पोर्ट) की अपेक्षा यहा से निर्यात (एक्सपोर्ट) अधिक होने के कारण स्टर्लिग की अपेक्षा रुपए की माग प्राय अधिक रहती थी। रुपए चाहनेवाले लोग विलायत मे भारत-सचिव को सोना या स्टर्लिग देकर उससे भारत-सरकार के नाम हुण्डी ले सकते थे और हुण्डी भुना कर उसके रुपए कर सकते थे। इसके लिए कायदा यह था कि रुपए चाहनेवालो को टेण्डर देना पडता—अर्थात् यह बताना पडता कि वे किस दर से उसे खरीदने को तैयार है। फिर भारत-सरकार की ओर से यह सूचित किया जाता कि किसकी दर मजूर हुई है और किसको कितने की हुण्डी मिलेगी। तार-द्वारा जो हुण्डी की जाती उसके लिए

भारत-सचिव १५ १५/१६ पेंस से नीची रेट को किसी भी हालत में मंजूर करने को तैयार नहीं थे।

उस समय रुपए प्राप्त करने के दो तरीके थे; एक तो यह कि भारत-सरकार को यहाँ सोना दिया जाय और एक्सचेंज-दर से बदले में रुपए लिए जाय, दूसरा यह कि भारत-सचिव से हुण्डी खरीदकर उसके रुपए कर लिए जाय।

विलायत से या दूसरे देश से सोना लाने में कुछ खर्च जरूरी था। विलायत से यह खर्च (जहाज का भाड़ा, ब्याज की हानि और बीमा) १६ पेंस (सोना) पीछे १/२ पेनी पड़ता था—अर्थात सोना लानेवाले को एक रुपए की कीमत १६ १/२ पेंस पड़ती थी। ऐसी हालत में उसे अगर हुण्डी-द्वारा एक रुपया १६ १/८ पेंस में ही मिल जाता तो वह कब सोना खरीदने और यहाँ भेजने वाला था? भारत-सचिव की नीति बराबर यह रहती थी कि कम-से-कम सोना भारतवर्ष जाय। इसलिए वह इस हुण्डी की दर प्रायः इतनी नीची रखते थे कि लोग रुपए के लिए सोने के बजाए इसी हुण्डी का उपयोग करें। उन्हें विलायत में अपने काम के लिए स्टर्लिंग की जरूरत हो या न हो, वह हुण्डी बेचते ही रहते थे, बल्कि उन्होंने यह ऐलान कर रखा था कि १६ १/२ पेंस की दर से तो कोई जितनी चाहे, हुण्डी ले सकता है। भारत-सचिव सोने का लन्दन से यहाँ आना रोक कर ही सन्तुष्ट नहीं थे। और देशों से भी जब सोना यहाँ आने लगता तब वह ऐसे मौके पर ऐसी दर से हुण्डी बेच देते कि उसके लिए सोना लन्दन भेज देना और हुण्डी भुनाकर यहाँ रुपए कर लेना अधिक लाभदायक हो जाता।

भारतवासियों की ओर से कहा जाता कि "आखिर सोने की पूर्ति के लिए लन्दन जाना ही है—रुपया की खातिर चाँदी खरीदने के लिए [illegible] के लिए—फिर क्यों उसके [illegible] का अन्दाज क्यों किया जाय? बेहतर यह है कि सोना लन्दन में ही रहने दें और [illegible] उधार देकर भारतवासी कुछ ब्याज भी उठाया करें।" इसका उत्तर यह था —

(१) रुपयो के लिए चादी खरीदने की जरूरत इसलिए पडती थी कि हमारे शासक हमें वह सच्चा गोल्ड स्टैण्डर्ड (सोने का मान) देने को तैयार नही थे, जिसकी सिफारिश फौलर-कमेटी ने की थी और जिसे देना स्वय भारत-सचिव ने स्वीकार कर लिया था। अगर चलन में सोने के सिक्के होते, तो चादी के इन सिक्को की न ऐसी आवश्यकता होती, न ऐसी बहुतायत।

(२) एक्सचेज का गिरना बहुत दूर की बात या सम्भावना थी। भारतवर्ष मे इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट ज्यादा होने के कारण स्टर्लिंग से रुपए की माग ज्यादा रहती है। कभी किसी साल ऐसा सयोग हो जाता है कि एक्सपोर्ट से इम्पोर्ट बढ जाता है और स्टर्लिंग की माग बढ जाने के कारण एक्सचेज की गगा उलटी बहने लगती है। पर ऐसे अवसर बहुत कम हुए है। अधिकारियो को एक्सचेज के गिरने की फिक्र तो इतनी थी कि उसको रोकने के लिए साल-ब-साल लन्दन मे सोना इकट्ठा करते जाते थे। पर महासमर-जैसी परिस्थिति की उन्हे कोई भी चिन्ता नही थी, जिसमे न सोना मिल सकता था, न सिक्यूरिटीज या कागज ही बेचे जा सकते थे।

(३) ब्याज तो भारतवर्ष मे भी उपजाया जा सकता था, बल्कि यहा इसकी गुजाइश विलायत से ज्यादा थी। पर जहा मुद्रा-प्रणाली की वास्तविक भिति या आधार का प्रश्न हो वहा तो सब से पहले यह देखना चाहिए कि वह सुरक्षित किस प्रकार रह सकेगी। उसके सुरक्षित रहने से ही हम सुरक्षित बने रहेगे। थोडे से ब्याज के लिए इतनी बडी जोखिम उठाना कहा की बुद्धिमता थी? पर लन्दन मे सोना इगलैण्ड की भलाई के खयाल मे रखा जा रहा था—भारतवर्ष को ब्याज के रूप मे कुछ लाभ कराने के उद्देश से नही।

लन्दन मे चादी खरीदने का कारण लन्दन का पक्षपात था। वहा का बाजार बहुत ही छोटा है। चार दलालो के गुट या टोली को लन्दन मे चादी का बाजार समझना चाहिए। भारतवर्ष मे लोगो की माग थी कि चादी के लिए टेण्डर कराए जाय और उनपर विचार होने के बाद चादी बम्बई मे खरीदी जाय। सर शापुर्जी भरोचा के कथनानुसार यह नगर सभ-

कल संसार में 'चांदी का सब से बड़ा बाजार' था। पर इंडिया ऑफिस को लन्दन से बाहर चांदी खरीदना मंजूर न था। सर शापुर्जी चेम्बरलेन कमीशन के मेम्बर थे। उन्होंने एक गवाह की जिरह करते हुए कहा था कि "१९०४-०५ में कण्ट्रोलर-जनरल से मुझे चांदी का एक बड़ा आर्डर मिला, पर भारत-सचिव ने आगे के लिए ऐसी खरीदगी की मनाही कर दी। चार साल लन्दन में जिस भाव चांदी खरीदी गई उससे बम्बई में दो पैसा सस्ती खरीदी जा सकती थी।" तमाशा यह था कि लन्दन में जो चांदी खरीदी गई थी वह भारतीय व्यापारियों की थी। पर भारतवासी भारत-सरकार को भारतवर्ष में अपनी चांदी न बेच पाते थे।

एक बार प्रायः ९ करोड़ रुपए की चांदी लन्दन में सैमुएल मौण्टेगु कम्पनी (दलाल) की मार्फत खरीदी गई। मि० मॉण्टेगू—जो बाद में भारत सचिव हुए थे, उस समय इण्डिया आफिस में अण्डर-सेक्रेटरी थे, और उसी कुल-परिवार के थे जो उस कम्पनी का मालिक था। उनके विपक्षियों ने इस सौदे को लेकर लार्ड्स और कॉमन्स में काफी हो-हल्ला मचाया और कितनी ही ऐसी बातों पर प्रकाश डाला, जिनसे पक्षपात का सन्देह हुए बिना न रह सकता था।

सोने का उत्पादन इधर काफी बढ़ चला था और यह वृद्धि इस प्रकार हुई थी —

	टन
१८९०	१७७
१८९५	२९०
१९००	३७७
१९०५	५७७
१९१०	६७८

सोने के दाम भी बढ़ रहे थे, और [illegible] जा रहे थे। [illegible] ऐसी अवस्था में, जैसा कि [illegible] है—[illegible] प्रसिद्ध [illegible] । [illegible]

थी कि अन्तर्राष्ट्रीय समझौता करके इस देश मे चादी को उसकी पुरानी जगह फिर दे दी जाय।

सोने मे दामो की अपेक्षा रुपए मे दाम ज्यादा बढे थे और कुछ विशेषज्ञो का—खास कर श्रीगोखले का—मत यह था कि रुपए चलन मे आवश्यकता से अधिक थे। उनका कहना था कि "सोने के सिक्के, आवश्यकता न रहने पर, निकल जाते है (जैसे निर्यात के रूप मे), पर रुपए निकल नही सकते, उन्हे गलाने से लाभ नही, भुगतान के लिए उन्हे विदेश भेजना सभव नही। या तो वे लौट कर बैंको मे या सरकारी खजाने मे आ जायगे या चलन मे बने रहेगे। पर इस देश मे बैंक-व्यवसाय की अभी यथेष्ट उन्नति नही हुई है, इसलिए रुपए जल्दी लौटते नही, लोगो के ही पास बने रहते है और दामो पर अपना असर डालते रहते है।" इस विषय का अनुसन्धान करने के लिए १९१० मे एक छोटी-सी कमेटी बैठी थी, जिसके अध्यक्ष मि० के० एल० दत्त थे। इसकी राय यह ठहरी कि रुपयो की वृद्धि आवश्यकता के अनुसार ही हुई थी और उनकी कोई ऐसी बहुतायत न थी। हा, बैंको मे उधार मिलने मे अब बडी सहूलियत हो चली थी, और इसका असर दामो पर बेशक पडा था।

चेम्बरलेन-कमीशन की सिफारिशो का जिक्र करने से पहले परिस्थिति का सिहावलोकन कर लेना आवश्यक है —

(१) इस समय सॉवरेन (गिनी) और रुपया, दोनो ही चलन मे थे, और लोग दोनो को ही लेने-देने को बाध्य थे।

(२) सरकार रुपए के बदले सोना देने को कानूनन बाध्य नही थी, पर एक हद तक वह सोना देने को तैयार रहती थी।

(३) सरकार सॉवरेन के बदले १६ पेस की दर से रुपया देने को बाध्य थी, पर धातु के रूप मे सोने के बदले नही।

(४) भारत-सचिव १६$\frac{१}{८}$ पेस की दर से चाहे जितने की हुडी भारत-सरकार के नाम बेचने को तैयार रहते थे। भारत-सरकार भी भारत-सचिव के नाम उलटी हुडी बेचना स्वीकार कर चुकी थी, पर १५$\frac{२९}{३२}$ पेस से नीची दर से नही। ऐसी हालत मे एक्सचेंज न तो १६$\frac{१}{८}$ पेस से ऊपर जा सकता था, न १५$\frac{२९}{३२}$ पेस से नीचे।

(५) चलन में विशेषता रुपयों की थी। करेंसी रिजर्व और सरकार के हाथ के रुपयों को छोड़, बाकी रुपयों का चलन १९१२ में २०० करोड़ कूता गया था।

सोने के सिक्कों का प्रचार बढ़ रहा था। ३१ मार्च १९१३ को समाप्त होनेवाले १२ वर्षों में प्राय ९० करोड़ के सॉवरेन सार्वजनिक चलन में गए। इन बारह वर्षों में चांदी के रुपए भी प्राय ९० करोड़ ही ढले। सोने के चलन की रफ्तार १९०९ के बाद तेजी से बढ़ने लगी थी। ३१ मार्च १९०९ और ३१ मार्च १९१३ के बीच ४५ करोड़ के सॉवरेन सार्वजनिक चलन में गए। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सब-के-सब सॉवरेन चलन में मौजूद थे, पर चेम्बरलेन-कमीशन की रिपोर्ट ने भी यह बात स्वीकार की थी कि लेन-देन के काम में सॉवरेन अधिकाधिक आ रहा था—खास कर बम्बई, संयुक्त प्रांत, पंजाब और मद्रास के कुछ हिस्सों में।

सोने का यह प्रचार या उपयोग हमारे शासकों की अनिच्छा होते हुए भी होने लगा था। हमारे शासन-सूत्रधार की तो बराबर यह चेष्टा रहती थी कि सोना लन्दन से भारतवर्ष आने न पावे। पर फिर भी कुछ न कुछ सोना आता ही रहता था, और करेन्सी के रूप में सॉवरेन के उपयोग का बढ़ना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं था।

जिस विशुद्ध गोल्ड स्टैण्डर्ड या सुवर्ण-मान की फौलर कमेटी ने सिफारिश की थी वह ग्रहण न किया गया। उसकी जगह दिया गया 'गोल्ड एक्सचेंज स्टैण्डर्ड' जिसकी सिफारिश मि० लिण्डसे ने की थी और जो उस समय अस्वीकृत कर दिया गया था। इस स्टैण्डर्ड के अनुसार मूल्य का मान या माप [illegible] था—एक रुपया वास्तव में ७.५३३४४ ग्रेन सोने के बराबर माना गया। पर—पर हमारा अपना कोई मान का सिक्का नहीं था, और [illegible] व्यवस्था पर निर्भर करता था। सोने का रिजर्व [illegible] स्टैण्डर्ड रिजर्व [illegible] में रख दिया गया था और भारत-सरकार की [illegible] यही रहती थी कि कम-से-कम सोना भारतवर्ष आने पावे।

[illegible]

पतियो के हाथ की कठपुतली थे। उन्हे वही करना पडता था जो इगलैण्ड के हित के अनुकूल था, जिससे इगलैण्ड की भलाई निश्चित थी।

१७ अप्रैल १९१३ को एक रायल कमीशन भारतीय मुद्रा-प्रणाली के हर पहलू पर विचार करने के लिए नियुक्त हुआ। इसके अध्यक्ष थे मि० ऑस्टेन चेम्बरलेन, जो बाद मे भारत-सचिव और परराष्ट्रसचिव हुए थे। कमीशन के दूसरे मेम्बरो मे लॉर्ड फैब्रर, सर शापुर्जी भरोचा, सर अर्नस्ट केबल और अध्यापक केन्स थे। इसके सेक्रेटरी थे सर बेसिल ब्लैकेट, जो बाद भारत के अर्थ-सदस्य हुए।

पिछली कमेटियो की तरह इस कमीशन की भी सारी कार्रवाई लन्दन मे ही हुई। इसकी रिपोर्ट २४ फरवरी १९१४ को ब्रिटिश सरकार के पास भेजी गई। इसके एक मेम्बर सर जेम्स बेग्बी ने सोने के प्रचार के सम्बन्ध मे औरो से अपना मतभेद प्रकट किया था। रिपोर्ट मे अध्यापक (वर्त्तमान लॉर्ड) केन्स का रिजर्व बैंक जैसी सस्था पर एक नोट था।

कमीशन ने अपनी रिपोर्ट मे यह स्वीकार किया कि कितनी ही बातो मे वस्तुस्थिति फौलर-कमेटी द्वारा स्वीकृत स्कीम से भिन्न थी। यहा की मुद्रा-प्रणाली का आधार था तो मि० लिण्डसे का प्रस्ताव, जो कमेटी द्वारा अस्वीकृत हो चुका था, पर कमेटी के बताए हुए मार्ग का अवलम्बन न करने के लिए कमीशन ने अधिकारियो की किसी प्रकार की निन्दा नही की, बल्कि उसका कहना था कि जो कुछ हुआ था, अच्छा ही हुआ था।

कमीशन की सिफारिशो में कुछ खास बाते ये थी —

(१) यह निश्चित हो जाना चाहिए कि भारतीय मुद्रा-प्रणाली का लक्ष्य क्या है। १८९८ की कमेटी की राय थी कि इस देश मे सोने के मान की सफलता के लिए सोने का सिक्का आवश्यक है। पर पिछले १५ वर्षों के इतिहास से इस धारणा की पुष्टि नही होती।

(२) चलन मे सोने के उपयोग को प्रोत्साहन देना भारतवर्ष के लिए हितकर न होगा।

(३) सोने के सिक्के की यहा ढलाई की कोई आवश्यकता नही। पर भारतीय जनता सचमुच इसे चाहती है और भारत-सरकार इसका

खर्च देने को तैयार हैं, तो सिद्धांततः कोई आपत्ति नहीं हो सकती। हाँ, जो सिक्का ढाला जाय वह सॉवरेन होना चाहिए।

(४) एक्सचेंज की पुश्ती के लिए रिजर्व में काफी सोना और स्टर्लिंग रहना चाहिए।

(५) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व की अभी कोई हद नहीं बाँधी जा सकती।

(६) रुपयों की ढलाई में जो मुनाफा हो वह पूरा-का-पूरा इसी रिजर्व में जमा किया जाय।

(७) इस रिजर्व में इस समय जितना सोना रखा जाता है उससे अधिक रखने की जरूरत है।

(८) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व लन्दन में ही रहना चाहिए।

(९) सरकार को साफ तौर से यह जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेनी चाहिए कि जब कभी स्टर्लिंग की भारतवर्ष में माँग होगी तब वह भारत सचिव के नाम १५ $\frac{3}{32}$ पेंस की दर से हुंडी बेचने को तैयार रहेगी।

(१०) भारत-सरकार के हाथ में जब कभी बचत का रुपया हो तब उसे प्रेसिडेंसी बैंकों को उधार देने का नियम-सा कर लेना चाहिए। जिन शर्तों पर रुपया उधार दिया जाय, वह निश्चित हो जाना चाहिए।

(११) इस समय हम किसी स्टेट या सेण्ट्रल (केन्द्रीय) बैंक की स्थापना के पक्ष या विपक्ष में कुछ भी नहीं कह सकते, पर इतना हम अवश्य कहेंगे कि यह विषय महत्त्वपूर्ण है और इसपर विशेषज्ञों की एक छोटी-सी कमेटी द्वारा विचार होने की आवश्यकता है।

इण्डिया ऑफिस की फाइनेन्स कमेटी के दो चेयरमैन और एक सदस्य किसी बैंक से सम्बद्ध रह चुके थे, जिनका इण्डिया ऑफिस से लेन-देन का सरोकार रहता था। यह बात समाचारपत्रों-द्वारा आपत्तिजनक बताई जा चुकी थी। इसपर कमीशन ने अपनी राय यह दी कि इस सम्बन्ध के कारण किसी प्रकार का पक्षपात या गोलमाल नहीं हुआ, पर भारत-सचिव को चाहिए कि जहाँ तक हो सके, ऐसी समालोचना या शिकायत के लिए कोई मौका ही न दें।

इण्डिया ऑफिस के दफ्तर का जिस ढंग पर नुक्ताचीनी की जाती थी,

ासका कमीशन समर्थन न कर सका। उसकी सिफारिश थी कि कुछ समय ाद इस प्रश्न पर फिर से विचार किया जाय।

वैंक आव् इगलैंड के विषय मे उसने दवी जवान इतना ही कहा कि ुम लोगो के विचार मे, इडिया ऑफिस और इस वैंक के सम्वन्ध को नई भित्ति पर रखने का समय आ गया है।

कमीशन की रिपोर्ट सरकार के विचाराधीन ही थी कि अगस्त १९१४ मे प्रथम महासमर छिड गया। अव यह निश्चय हुआ कि जव तक शाति स्थापित नही होती तव तक कार्रवाई मुलतवी रहे।

इगलैण्ड तथा अन्य मित्र-देशो को इस समय भारतवर्ष से बहुत कुछ माल मिल सकता था और वह मिलने भी लगा।

एक्सपोर्ट के मार्ग मे कई कठिनाइया थी। जहाज कम मिलते थे, आर्थिक प्रतिबन्ध के कारण जितना माल जा सकता था, न जा पाता था। फिर भी एक्सपोर्ट मे कमी नही हुई, बल्कि १९१६–१७ से वृद्धि ही होने लगी। दूसरी ओर बाहर से कम माल आने लगा, क्योकि जर्मनी, ऑस्ट्रिया, हगरी जैसे देशो से तो कुछ आ ही नही सकता था और दूसरे देशो से भी आने मे कई तरह की रुकावटे थी। फिर भी दाम ऊचे होने के कारण जो कुछ आया उसकी कीमत महासमर के पूर्व जैसी ही बनी रही। १९१४–१५ से १९१८–१९ तक ऐसे माल का जितना इम्पोर्ट हुआ उससे हर साल प्राय ७६ करोड रुपए अधिक का एक्सपोर्ट हुआ। यह कोई असाधारण बात नही थी, पर सोना-चादी पहले की अपेक्षा बहुत कम आई, इसलिए और देशो मे हमारा पावना पहले से कही अधिक हो चला। लडाई से पहले पाच वर्षो मे यहा १८० करोड की सोना-चादी आई थी। पर इन पाच वर्षो मे कुल ५४ करोड की आई। सालाना औसत प्राय ११ करोड बैठा।

भारतवर्ष से ही उस समय ईराक, ईरान और पूर्व अफ्रीका मे लडाई के खर्च के रुपए मगाए जाते थे। फौज का वेतन-आदि चुकाने, लडाई के सामान खरीदने और शासन-सम्बन्धी सारा व्यय चुकाने के लिए इन रुपयो की जरूरत पडती थी। इन रुपयो के बदले भारत-सरकार विलायत मे ब्रिटिश सरकार से स्टर्लिंग पाती थी। १९१४ और १९१९ के बीच इस प्रकार के खर्च का जोड २४०,०००,००० पौड हो चुका था और खर्च जारी ही था। भारतवर्ष मे अमेरिका और ब्रिटिश उपनिवेशो की ओर से उन दिनो करोडो के माल खरीदे गए थे, इसके लिए भी खास व्यवस्था करनी पडी थी।

इन सब कारणो से यहा करेन्सी की माग बढने लगी और टकसालो मे रुपयो की ढलाई जोर-शोर से होने लगी। अप्रैल १९०४ और मार्च १९०९ के बीच जब करेंसी की माग काफी अच्छी थी, प्राय १८०,०००,००० स्टैण्डर्ड औस चादी के रुपए ढले थे। पर अप्रैल १९१६ और मार्च १९१९

के बीच प्राय ५००,०००,००० स्टैण्डर्ड औंस चांदी का इस काम में उपयोग हुआ।

३१ मार्च १९१४ को प्राय ६६ करोड़ के नोट चलन में थे। ३० नवम्बर १९१९ को यह तादाद प्राय १८० करोड़ हो चली थी। नोट बढ़ते गए पर उनकी पुश्ती के लिए करेन्सी रिजर्व में जो सोना-चांदी रखी जाती थी उसका अनुपात घटता गया। महासमर से पहले कानून था कि रिजर्व में सिक्युरिटीज या कागज अधिक-से-अधिक १४ करोड़ रुपए के रखे जा सकते थे। धीरे-धीरे यह हद बढ़ाकर १२० करोड़ कर दी गई जिसमें २० करोड़ के कागज भारत-सरकार के रखे जा सकते थे, बाकी ब्रिटिश सरकार के। ३० नवम्बर १९१९ को नोटों के चलन की पुश्ती इस प्रकार थी —

	करोड़ रुपए
चांदी (रुपए)	४७
सोना	३३
कागज	१००
	१८०

नोटों के सम्बन्ध में दूसरी नई बात यह हुई कि १९१७ में ढाई रुपए के और १९१८ में एक रुपए के नोट जारी किए गए। ३१ मार्च १९१९ को ढाई रुपए के नोट प्राय १ करोड़ ८८ लाख के और एक रुपए के नोट प्राय १०॥ करोड़ के चलन में थे।

पहले सरकार की नीति यह रहती थी कि नोट भुनाने के लिए [illegible] हर तरह की सुविधा दी जाय। महासमर में यह नीति कायम न रह सकी। कागज की पुश्ती [illegible] नोट बढ़ाए जा रहे थे, इसलिए [illegible] नोटों में वह विश्वास न रह गया था जो पहले था। [illegible] १९१६–१७ में प्राय ३८ करोड़ और १९१७–१८ में २४ करोड़ रुपए [illegible]। ४ अप्रैल १९१८ [illegible] १०॥ [illegible] था — अर्थात् महासमर के पूर्व [illegible] प्राय आठ करोड़ था।

मार्च और अप्रैल १९१९ मे महासमर-सम्बन्धी परिस्थिति कुछ चिन्ता-जनक हो चली जिसका नतीजा यह हुआ कि लोग नोटो को बेतहाशा भुनाने लगे। जून के पहले सप्ताह मे रुपए कुल प्राय चार करोड रह गए थे। इस बीच मे सरकार ने अमेरिका से कुछ चादी लेने की व्यवस्था कर ली थी और वह चादी अब आने भी लगी। इसके फलस्वरूप परिस्थिति मे सुधार होने लगा।

सरकार नोटो के बदले रुपए देने के लिए सब जगह बाध्य नही थी पर आम तौर से दिया करती थी। पर यह सुविधा अब न रही। रेल या स्टीमर-द्वारा सिक्के ले जाने पर प्रतिबन्ध लग गया। डाक-द्वारा भी अब कोई उन्हे कही न भेज सकता था। करेन्सी ऑफिसो मे सरकार नोटो के बदले रुपए देने को अब भी बाध्य थी। पर वहा भी अब यह विधान कर दिया गया कि एक आदमी को एक ही दिन इतने से ज्यादा रुपए न मिल सकेंगे। इन प्रतिबन्धो और रुकावटो के कारण चलन मे रुपयो का स्थान नोट ग्रहण करते गए। पर नोटो पर ऐसी हालत में बट्टा लगना स्वाभाविक था। कुछ समय तक तो कही-कही यह बट्टा १९ प्रतिशत तक रहा।

हम स्वाधीन होते और दूसरो के हाथ माल बेचते या उनके लिए कुछ खर्च करते तो हम उनसे बेबाकी स्टर्लिंग—जैसे कागजी रुपए मे न कराके चादी या सोने में कराते। घडी भर के लिए यह मान ले कि हमारे देनदार चादी या सोना देने मे असमर्थ होते और हम फिर भी उनके साथ कारोबार करना चाहते तो हम यह व्यवस्था कर सकते थे कि उन्हे कुछ समय के लिए अपना रुपया कर्ज दे। पर हम थे पराधीन और इस पराधीनता के कारण हम दाम या भुगतान अपनी इच्छा या सुविधा नही बल्कि इगलैण्ड की इच्छा और सुविधा के अनुसार लेने को विवश थे। वर्षो वहा हमने जो सोना जमा कर रखा था वह तो कागज हो ही गया, अब इगलैण्ड हमसे जो कुछ लेने लगा उसका दाम भी कागज मे ही चुकाने लगा। करेन्सी रिजर्व की जो शाखा लन्दन मे थी उसमे स्टर्लिंग के कागज रख दिए जाते और उनके मद्दे इधर नोट निकाल दिए जाते। दोनो ओर पतगबाजी थी।

महासमर छिडते ही प्राय प्रत्येक देश ने सोने के निर्यात पर प्रति-

बन्द लगा दिया। सोना बाहर जा सकता था तो उसी हालत में जब बिना सोना दिए किसी देश का काम चलनेवाला न था। १९१७–१८ में भारतवर्ष में जापान और अमेरिका से कुछ सोना इस कारण आया था कि उन्हें यहां माल खरीदना था और उस समय भारत-सचिव से हुंडी मिलने में कठिनाई थी। जब सोना दुर्लभ हो चला तब चांदी की मांग बढ़ी। पर चांदी का उत्पादन १९१४ से ही कम होने लगा था। १९१० से १९१३ तक तमाम दुनिया की खानों से २२८,५५२,००० औंस चांदी निकली थी। १९१४ से १९१७ तक कुल चांदी १७८,०७५,००० औंस निकली। इस कमी का खास कारण यह था कि मेक्सिको में राजनैतिक अशान्ति के कारण चांदी का उत्पादन बहुत घट गया। इधर ब्रिटिश साम्राज्य और चीन आदि देशों की ओर से मांग कहीं से-कहीं बढ़ गई। इसका नतीजा यह हुआ कि चांदी महंगी हो गई। १९१५ में जो दाम २७। पेंस था वह अगस्त १९१७ में ४३ पेंस, और एक ही महीना बाद ५५ पेंस हो चला था।

अमेरिका, कनाडा और ग्रेट ब्रिटेन ने चांदी के दाम की घटाबढ़ी को रोकने की कुछ खास व्यवस्था की, जिससे चांदी का दाम कुछ समय तक प्रति औंस प्रायः १ डालर बना रहा। मई १९१८ और अप्रैल १९१९ के बीच लन्दन में दाम ४७॥ और ५० पेंस के बीच रहा। मई १९१९ में अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन ने चांदी के बाजार से अपना-अपना नियन्त्रण उठा लिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि लन्दन में दाम फौरन ५८ पेंस हो गया। इसके बाद भी दाम बढ़ता ही गया और १७ दिसम्बर को ७८ पेंस तक पहुंच गया था।

[illegible] अध्याय में कहा गया है कि जब चांदी का दाम लन्दन बाजार में [illegible] पेंस हुआ तब एक रुपए की चांदी की कीमत [illegible] पेंस से कुछ ऊपर [illegible]। इसी प्रकार जब चांदी का दाम ४८ पेंस हो गया तब रुपए की चांदी [illegible] के दाम बढ़ गई, अर्थात् चांदी इतनी महंगी [illegible] [illegible] और [illegible] महंगी हुई [illegible] रुपया बना [illegible] [illegible]।

वचाव के लिए सरकार ने एक्सचेज को ऊचा करना शुरू कर दिया। २८ अगस्त १९१७ को टी० टी०[*] का दाम १६$\frac{१}{४}$ पेंस से १७ पेंस कर दिया गया। उसके कुछ ही दिन वाद यह विज्ञप्ति निकली कि भारत-सरकार के नाम हुडी की दर अव चादी के दाम पर निर्भर करेगी। १२ अप्रैल १९१९ को दर १८ पेंस कर दी गई और १३ मई १९१९ तक यही दर रही। अमेरिका ने चादी के वाजार पर से नियन्त्रण उठा लिया, इस कारण चादी और भी महगी हो चली और रुपए की एक्सचेज-दर अव २० पेंस कर दी गई। उसके वाद ज्यो ज्यो चादी तेज होती गई यह दर ऊची होती गई। इसके मरातिव ये थे —

१२ अगस्त १९१९	२२ पेंस
१५ सितम्वर ,,	२४ पेंस
२२ नवम्वर ,,	२६ पेंस
१२ दिसम्वर ,,	२८ पेंस

३ सितम्वर १९१७ को चादी का व्यापारियो-द्वारा इम्पोर्ट वन्द कर दिया गया। एक्सपोर्ट पर भी प्रतिवन्ध लगा दिया गया—विना सरकार से लाइसेंस प्राप्त किए कोई सोना या चादी के सिक्के इस देश से वाहर नही भेज सकता था।

इम्पोर्ट रोका गया था इस उद्देश से कि जो चादी ससार मे उपलभ्य थी उसका कोई हिस्सा भारतवर्ष के व्यापारियो के हाथ लगने न पावे। एक्सपोर्ट इसलिए रोका गया था कि लोग सिक्को को गला कर या यो ही वाहर भेजना न शुरू कर दे। २९ जून १९१७ के वाद तो चादी या सोने के सिक्को को और किसी काम मे ले आना भी जुर्म करार दे दिया गया।

चादी की कमी के कारण सरकार अपना सोने का स्टॉक भी वढाने लगी। २९ जून १९१७ के वाद जो सोना विदेश से आता उसे मगानेवाले को सरकार के हाथ वेच देना पडता। अगस्त १९१९ मे रॉयल मिण्ट अर्थात् व्रिटिश टकसाल की एक शाखा वम्वई मे खोली गई और वहा गॉव-

---

[*] Telegraphic Transfers—तार-द्वारा की जानेवाली हुडी।

रेन ढाले जाने लगे। इससे पहले कुछ ऐसी मोहरें यहां की टकसालों में ढाली जा चुकी थी जो प्रायः हर बात में सॉवरेन के समान थी। और १९१९ में रॉयल मिण्ट की यह शाखा उठा दी गई।

ऊपर कहा जा चुका है कि महासमर छिड़ते ही सरकार ने सॉवरेन देना बन्द कर दिया था। बाजार में सॉवरेन की कीमत बढ़ चली और १५) से ऊपर रहने लगी। कानूनन सॉवरेन की कीमत अब भी वही १५) थी, और सरकार उसके बदले १५) देने को ही बाध्य थी। सॉवरेन ऐसी हालत में करेन्सी के काम न आ सकते थे। फिर भी रुपयों की इतनी कमी हो रही थी कि दो बार सरकार को इस देश के कुछ हिस्सों में किसानों से माल खरीदने के लिए कई करोड़ के सोने के सिक्के (सॉवरेन और देशी मोहरें) देने पड़े।

शान्ति स्थापित हो जाने पर अमेरिका ने ९ जून १९१९ से सोने के एक्सपोर्ट की स्वतन्त्रता दे दी। दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया का सोना भी बाहर जाने के लिए स्वतन्त्र हो गया। इसलिए इस देश में सोने की आमद बढ़ चली। भारतवर्ष लन्दन में और अन्यत्र भी सोना खरीदने लगा। १५ सितम्बर १९१८ के बाद भारत-सरकार इम्पोर्टर को सोने का दाम इस हिसाब से देने लगी कि हुंडी की दर की घटा-बढ़ी के अनुसार सोने की जो कीमत हो वह उसे मिल जाया करे।

अगस्त १९१९ के अन्त में भारत सरकार ने यह घोषित किया कि हर पखवारे उसकी ओर से सोने की बिक्री की जायगी। इस बिक्री का नतीजा यह हुआ कि बाजार में सोने का दाम गिर पड़ा। १५ अगस्त १९१९ को [illegible] ३२ १२ रुपए तोला [illegible]। २२ सितम्बर को गिर कर २७ रुपए रह गया था। फिर [illegible] में कुछ तेजी आई और अक्तूबर के अन्त में वह [illegible] रुपए [illegible] हो गया। फिर कुछ ही दिन बाद वह गिर कर [illegible] [illegible] रह गया। जब [illegible] ३२ [illegible] रुपए तोला था तब [illegible] [illegible] रुपए थी। जब दाम २८.५ रुपए तोला रह गया तो [illegible] [illegible] रुपए।

[illegible]

तरह की तदवीर की, पर चादी की कमी वनी ही रही और अन्त मे उसे व्रिटिश सरकार की मार्फत अमेरिका का दरवाजा खटखटाना पडा। अमेरिका के पास रिजर्व मे वहुत कुछ चादी पडी हुई थी और उसने उसका एक हिस्सा भारत-सरकार को देना स्वीकार कर लिया। २३ अगस्त १९१८ को वहा इसके लिए पिटमैन ऐक्ट नामक विधान बना जिसका आशय था कि वहा की सरकार दूसरी सरकारो को इस रिजर्व मे से ३५०,०००,००० चादी के डॉलर तक चादी बेच सकती है। भारत को इसमें से २००,०००,००० औंस चादी मिली जिसका दाम प्रति औंस (खालिस चादी) १०१$\frac{1}{4}$ सेंट चुकाना पडा। यह चादी मिल जाने से भारत-सरकार का वहुत वडा सकट टल गया। समय-समय पर वह वाजार मे भी चादी खरीदती रही। सव मिला कर उसने ५३८,००५,००० औंस (स्टैण्डर्ड) चादी खरीदी।

३० मई १९१९ को एक करेन्सी कमेटी की नियुक्ति हुई जिसके अध्यक्ष मि० वैविंगटन स्मिथ थे और जिसके एकमात्र भारतवासी मेम्बर थे मि० दादीवा मेरवान जी दलाल। कमेटी को यह देखना था कि भारतीय प्रणाली पर महासमर का क्या असर हुआ है—उस प्रणाली मे कौन से हेरफेर की जरूरत है और किस प्रकार यहा के 'गोल्ड एक्सचेज स्टैंडर्ड' में स्थिरत्व या स्थायित्व लाया जा सकता है। उस समय एक्सचेज की दर २० पेंस थी।

२२ दिसम्बर १९१९ को कमेटी की रिपोर्ट तैयार हुई और भारत-सचिव के पास भेजी गई। मि० दलाल, कमेटी की रिपोर्ट से सहमत न हो सके और उन्होने अपने विचार अलग ही एक नोट मे प्रकट किए।

कमेटी की खास सिफारिश यह हुई कि रुपए की एक्सचेज-दर सोने मे वाध दी जाय और यह दर २४ पेंस (सोना) हो। इस हिसाव से सॉवरेन की कीमत १५) के वजाय १०) होती। १८७३ से पहले एक्सचेज की जो रेट थी उसे फिर से ले आने के लिए, ऊचे एक्सचेज के पक्षपातियो की दृष्टि मे, यह अवसर अनुपम था—इसे हाथ से जाने देना परले सिरे की मूर्खता होती।

भी जरूरी था कि रुपए की एक्सचेंज-दर काफी ऊँची हो—जिससे भारतवर्ष मे महगी की भीषणता कुछ हद तक कम हो सके।

वास्तव मे—जैसा कि मि० दलाल ने अपने वक्तव्य मे कहा था—चादी की तेजी ही एक्सचेंज की दर मे वृद्धि का एकमात्र कारण नही हो सकती थी, क्योंकि अधिकारियो की मंशा थी कि चादी सस्ती हो जाय तो भी एक्सचेंज १६ पेंस से काफी ऊँचा रखा जाय।

पर जो दलील दी गई थी उसका मि० दलाल के शब्दो मे जवाब यह था—

"महासमर की समाप्ति हो जाने पर भी चादी के एक्सपोर्ट पर प्रतिबन्ध बना रहा। अगर यह प्रतिबन्ध हटा दिया गया होता तो चादी मे इतनी तेजी न आती। भारतवर्ष आसानी से दूसरे देशो के हाथ अपनी चादी का एक हिस्सा बेच सकता था। इसका चादी के दामो पर अच्छा असर पडता। चादी का एक्सपोर्ट रुक जाने मे और जो चादी बेच सकता था उसका चादी का खरीदार बन जाने से ही इस बाजार मे आग लग गई।

"अगर यह मान भी लिया जाय कि चादी का एक्सपोर्ट होने लायक न था तो भी लडाई के समय उसका दाम बढने के कारण एक्सचेंज को उठाना मुनासिब न था। भारत-सचिव को चाहिए था कि जितने रुपए की उन्हे जरूरत होती उतने की भारत-सरकार के नाम हुण्डी करके इस काम से हाथ खींच लेते—व्यापारी अपना देना, चादी न भेजकर, और जिस तरह चुका सकते, चुकाते।

"जब तक ससार-मात्र मे सोने के एक्सपोर्ट पर-प्रतिबन्ध था तब तक थोडे समय के लिए एक्सचेंज मे कुछ वृद्धि शायद अनिवार्य-सी थी, पर जब अमेरिका ने ९ जून १९१९ से प्रतिबन्ध हटा लिया और दक्षिण अफ्रीका का सोना भी १८ जुलाई १९१९ से लन्दन के बाजार मे बे-रोक-टोक बिकने लगा तब कोई भी कारण न हो सकता था कि एक्सचेंज की दर को २० पेंस से २८ पेंस कर दिया जाय।

"सोने और रुपए के बीच की दर जो कायम थी वह महासमर के समय उठा दी गई। पर महासमर के बाद जो कुछ किया गया वह उससे

मि० दलाल ने इस धींगाधींगी का जोरों से विरोध किया। उन्होंने अकाट्य युक्तियों से यह प्रमाणित कर दिया कि एक्सचेंज की दर (१६ पेंस) में किसी प्रकार का परिवर्तन न होना चाहिए था।

कमेटी ने जिस दर की सिफारिश की थी वह थी २४ पेंस (सोना)। उस समय इंगलैण्ड में सोने का स्टैण्डर्ड या मान नहीं था—नोटों के बदले सोना मिलना बन्द हो गया था। सोना और स्टर्लिंग दोनों दो चीजें हो रही थीं। एक सौ औंस खालिस सोना हो तो उसके ४२५ सॉवरेन ढाले जा सकते हैं—शायद यह कहना ठीक होगा कि ढाले जा सकते थे। पर १३ दिसम्बर १९१९ को जो भाव था उसके अनुसार एक सौ औंस खालिस सोने का दाम प्रायः ५४८ पौंड स्टर्लिंग (कागजी) होता था। एक पौंड स्टर्लिंग (कागजी) अब एक सॉवरेन के बराबर न होकर $\frac{४२५}{५४८}$ अर्थात् .७८ सॉवरेन (सोना) के बराबर था। इसी को दूसरी तरह यों कह सकते हैं कि एक सॉवरेन (सोना) अब $\frac{५४८}{४२५}$ अर्थात् १.२८ पौंड स्टर्लिंग (कागजी) के बराबर था। कमेटी ने रुपए को स्टर्लिंग से न बाँध कर सोने से बाँधने की सिफारिश की। २४ पेंस (सोने) का अर्थ २४ पेंस स्टर्लिंग नहीं, बल्कि उससे कहीं अधिक था।

उस समय कमेटी के पक्ष में दलील यह दी गई थी और दी जा रही थी कि चाँदी का दाम ४३ पेंस से ऊपर हो जाने पर रुपए का प्रचलित मूल्य रखना असम्भव था, इसलिए रुपए को चलन में कायम रखने के लिए उसकी विनिमय-दर का काफी ऊँचा रखना भी जरूरी था। लोगों के मन में यह भी आशा थी कि चीजों के दाम शीघ्र गिरेंगे [illegible]

भी जरूरी था कि रुपए की एक्सचेंज-दर काफी ऊँची हो—जिससे भारतवर्ष मे महगी की भीषणता कुछ हद तक कम हो सके।

वास्तव मे—जैसा कि मि० दलाल ने अपने वक्तव्य में कहा था—चादी की तेजी ही एक्सचेंज की दर मे वृद्धि का एकमात्र कारण नही हो सकती थी, क्योकि अधिकारियो की मशा थी कि चादी सस्ती हो जाय तो भी एक्सचेंज १६ पेंस से काफी ऊँचा रखा जाय।

पर जो दलील दी गई थी उसका मि० दलाल के शब्दो मे जवाब यह था—

"महासमर की समाप्ति हो जाने पर भी चादी के एक्सपोर्ट पर प्रतिबन्ध बना रहा। अगर यह प्रतिबन्ध हटा दिया गया होता तो चादी मे इतनी तेजी न आती। भारतवर्ष आसानी से दूसरे देशो के हाथ अपनी चादी का एक हिस्सा बेच सकता था। इसका चादी के दामो पर अच्छा असर पडता। चादी का एक्सपोर्ट रुक जाने से और जो चादी बेच सकता था उसका चादी का खरीदार बन जाने से ही इस बाजार मे आग लग गई।

"अगर यह मान भी लिया जाय कि चादी का एक्सपोर्ट होने लायक न था तो भी लडाई के समय उसका दाम बढने के कारण एक्सचेंज को उठाना मुनासिब न था। भारत-सचिव को चाहिए था कि जितने रुपए की उन्हे जरूरत होती उतने की भारत-सरकार के नाम हुण्डी करके इस काम से हाथ खींच लेते—व्यापारी अपना देना, चादी न भेजकर, और जिस तरह चुका सकते, चुकाते।

'जब तक ससार-मात्र मे सोने के एक्सपोर्ट पर प्रतिबन्ध था तब तक थोडे समय के लिए एक्सचेंज मे कुछ वृद्धि शायद अनिवार्य-सी थी, पर जब अमेरिका ने ९ जून १९१९ से प्रतिबन्ध हटा लिया और दक्षिण अफ्रीका का सोना भी १८ जुलाई १९१९ से लन्दन के बाजार मे बे-रोक-टोक बिकने लगा तब कोई भी कारण न हो सकता था कि एक्सचेंज की दर को २० पेंस से २८ पेंस कर दिया जाय।

"सोने और रुपए के बीच की दर जो कायम थी वह महासमर के समय उठा दी गई। पर महासमर के बाद जो कुछ किया गया वह उससे

रखते हुए, रुपए मे चादी का परिमाण कम कर देती या नए रुपए ढालती ही नही। कई व्यक्तियो और सस्थाओ ने उस समय यह प्रस्ताव किया था कि दो या तीन रुपए के ऐसे सिक्के निकाले जाय जिनमे चादी का परिमाण फी रुपया १६५ ग्रेन के हिसाब से न होकर इतना कम हो कि चादी का दाम काफी ऊँचा होते हुए भी रुपयो के चलन से निकल जाने का कोई खतरा न रहे। दरअसल नए रुपए ढालने की कोई ऐसी जरूरत ही न थी। व्यापारियो पर ही यह जिम्मेवारी छोड देनी चाहिए थी कि अपना देना चुकाने के लिए उन्हे जो व्यवस्था उत्तम जचती, करते।

पूछा जा सकता है कि व्यापारी आखिर क्या करते ? उत्तर यह है कि इगलैण्ड को अगर हमारे माल की जरूरत थी तो वह हमे सोना देता—खास कर जब शान्ति स्थापित हो गई और कई देशो मे सोने को बाहर जाने की स्वतन्त्रता मिल गई—या इगलैण्ड हमसे कर्ज लेता। इसके बजाय किया यह गया कि हमारा स्टैण्डर्ड बदल दिया गया—एक्सचेज की जो ऊँची-से-ऊँची दर उस समय हो सकती थी, कायम कर दी गई—नोटो की छूट कर दी गई और नोटो की पुश्ती के लिए लन्दन मे ब्रिटिश 'ट्रेजरी बिलो' के रूप मे स्टर्लिग कागज रखे जाने लगे। इन ट्रेजरी बिलो के द्वारा भी ब्रिटिश सरकार ने हमसे कर्ज लिया, पर यह कर्ज ऐसा न था जिसे हमने अपनी खुशी या रजामन्दी से दिया हो। यह तो हमसे जबरन लिया हुआ कर्ज था—और जिस समय बैबिगटन स्मिथ कमेटी की रिपोर्ट तैयार हुई उस समय यह कर्ज ८३ करोड रुपए से ऊपर हो चला था।

या विधान का एक फल यह होगा कि जो किसीको एक गज देने के लिए बाध्य है उसे १६ की जगह अब २४ अगुल नाप कर देना होगा। एक्सचेंज-रेट बढा देने का नतीजा भी ठीक ऐसा ही हुआ। पहले जो किसीको १) देने को बाध्य था उसे अब ७ ५३३४४ ग्रेन की जगह ११ ३००१६ ग्रेन सोना (या इसी हिसाब से अपने खेत की उपज) देना पडा। कारण कि रुपया-रूपी गज अब १६ की जगह २४ अगुल की नाप या स्टैण्डर्ड बन गया था।

रखते हुए, रुपए में चादी का परिमाण कम कर देती या नए रुपए ढालती ही नही। कई व्यक्तियो और सस्थाओ ने उस समय यह प्रस्ताव किया था कि दो या तीन रुपए के ऐसे सिक्के निकाले जाय जिनमे चादी का परिमाण फी रुपया १६५ ग्रेन के हिसाब से न होकर इतना कम हो कि चादी का दाम काफी ऊँचा होते हुए भी रुपयो के चलन से निकल जाने का कोई खतरा न रहे। दरअसल नए रुपए ढालने की कोई ऐसी जरूरत ही न थी। व्यापारियो पर ही यह जिम्मेवारी छोड देनी चाहिए थी कि अपना देना चुकाने के लिए उन्हे जो व्यवस्था उत्तम जचती, करते।

पूछा जा सकता है कि व्यापारी आखिर क्या करते ? उत्तर यह है कि इगलैण्ड को अगर हमारे माल की जरूरत थी तो वह हमें सोना देता—खास कर जब शान्ति स्थापित हो गई और कई देशो मे सोने को बाहर जाने की स्वतन्त्रता मिल गई—या इगलैण्ड हमसे कर्ज लेता। इसके बजाय किया यह गया कि हमारा स्टैण्डर्ड बदल दिया गया—एक्सचेज की जो ऊँची-से-ऊँची दर उस समय हो सकती थी, कायम कर दी गई—नोटो की छूट कर दी गई और नोटो की पुश्ती के लिए लन्दन मे ब्रिटिश 'ट्रेजरी बिलो' के रूप मे स्टर्लिंग कागज रखे जाने लगे। इन ट्रेजरी बिलो के द्वारा भी ब्रिटिश सरकार ने हमसे कर्ज लिया, पर यह कर्ज ऐसा न था जिसे हमने अपनी खुशी या रजामन्दी से दिया हो। यह तो हमसे जबरन लिया हुआ कर्ज था—और जिस समय बैंबिगटन स्मिथ कमेटी की रिपोर्ट तैयार हुई उस समय यह कर्ज ८३ करोड रुपए से ऊपर हो चला था।

या विधान का एक फल यह होगा कि जो किसीको एक गज देने के लिए बाध्य है उसे १६ की जगह अब २४ अगुल नाप कर देना होगा। एक्सचेंज-रेट बढा देने का नतीजा भी ठीक ऐसा ही हुआ। पहले जो किसीको १) देने को बाध्य था उसे अब ७.५३३४४ ग्रेन की जगह ११.३००१६ ग्रेन सोना (या इसी हिसाब से अपने खेत की उपज) देना पडा। कारण कि रुपया-रूपी गज अब १६ की जगह २४ अगुल की नाप या स्टैण्डर्ड बन गया था।

ऊँची एक्सचेंज-दर के द्वारा इस देश में दाम गिराने के सम्बन्ध में कमेटी ने जो कुछ कहा था उसपर मि० दलाल की टिप्पणी यह थी —

"कहा गया है कि एक्सचेंज उठाने का एक अच्छा नतीजा यह होगा कि भारतवर्ष में दाम गिर जायँगे। दाम जरूर गिरेंगे, पर दाम गिराने का यह तरीका ठीक नहीं कहा जा सकता। भारतवर्ष में कृत्रिम फुलावट-जैसी अवस्था नहीं हुई है। यहाँ फुलावट हुई भी है तो उस प्रकार की जिसे स्वाभाविक विस्तार का नाम देना अधिक उपयुक्त होगा।............ एक्सचेंज-दर ऊँची कर देने से रुपयों में दाम जरूर गिरेंगे, पर जहाँ करेन्सी की फुलावट हो वहाँ गिरावट करके दाम गिराना तो जायज है पर रुपये या मुद्रा के मान में अदल-बदल करके दाम गिराना जायज नहीं हो सकता। भारतवर्ष में करेन्सी की बढ़ती, दाम ऊँचे होने के कारण हुई है, दाम, करेन्सी अधिक होने के कारण नहीं बढ़े हैं। और नहीं हुई करेन्सी का दामों पर कोई खास असर दिखाई नहीं पड़ा है कि लोग हर तरह की करेन्सी को दबा कर बैठ गए हैं। भारतवर्ष में एक्सचेंज ऊँचा होने से दाम जरूर नीचे रहेंगे, पर दाम बढ़ने का जो वास्तविक कारण है वह ज्यों-का-त्यों बना रहेगा।"

कमेटी की दूसरी सिफारिशें भी कुछ इस प्रकार थीं —

(१) भारत सरकार, जितना भारत-मंत्री की अनुमति प्राप्त कि, [illegible] पर [illegible] हुण्डी बेचने को तैयार रहे। [illegible] कि भारत [illegible] अर्थ यह था कि [illegible] (सत्रह [illegible]) [illegible]।

(२) [illegible] किया जाय।

(३) [illegible]

(४) [illegible]

सॉवरेन (गिनी) ढालने की व्यवस्था की जाय। सरकार यह घोषित कर दे कि जो कोई सोना लावेगा उसे नई एक्सचेंज-दर से—अर्थात् एक रुपया = ११.३००१६ ग्रेन खालिस सोना के हिसाब से सॉवरेन मिल सकेंगे।

(५) चादी की कमी और महगी के कारण सरकार के लिए अब सॉवरेन के बदले रुपए देना आवश्यक न रहे।

(६) सॉवरेन की कीमत अब १५) के बजाय १०) होगी, इसलिए सरकार यह घोषित कर दे कि अमुक तिथि तक जो कोई सॉवरेन लाकर देगा उसे फी सॉवरेन १५) मिल जायगा। यही बात मोहर के सम्बन्ध में भी रहे, और कुछ समय बाद चलन से मोहर उठा दी जाय।

(७) चादी के इम्पोर्ट पर जो प्रतिबन्ध है वह यथासम्भव शीघ्र हटा दिया जाय।

(८) एक्सपोर्ट-सम्बन्धी प्रतिबन्ध अभी कुछ समय के लिए बना रहे।

(९) चादी खरीदने की जो वर्तमान व्यवस्था है उसमे किसी प्रकार के हेर-फेर की हम सिफारिश नही करते।

(१०) करेन्सी रिजर्व का जो हिस्सा कागज के रूप मे रखा जा सकता है वह कुछ समय के लिए १२० करोड बना रहे।

(११) करेन्सी रिजर्व मे जितना सोना या स्टर्लिग* है उसकी नई कीमत २४ पेस की दर से ठहराई जाय। ऐसा करने से रिजर्व मे ३८ ४ करोड की कमी होगी। यह कमी धीरे-धीरे पूरी कर दी जायगी।

(१२) करेन्सी रिजर्व की जो सोना-चादी हो वह इसी देश मे रखी जाय। बाहर उसी हालत मे रह सकती है जब यहा आनेवाली हो या आ रही हो।

(१३) नोट भुनाने के लिए जो सुविधाएँ सर्वसाधारण को पहले प्राप्त थी वे स्थिति सुधरते ही फिर से जारी कर दी जाय। सरकार को यह अधिकार हो कि वह नोटो के बदले चादी या सोने के सिक्के दे सके।

(१४) सरकार को जो सोना प्राप्त हो सके वह फिलहाल गोल्ड

---

* इसके लिए सोना और स्टर्लिग समान माने गए।

करने लगी। यह नीति-परिवर्तन २४ जून १९२० से किया गया। पर इसमे भी उसे सफलता नही मिली और अन्त मे हार मान कर उसने २८ सितम्बर को उलटी हुण्डी वेचना वन्द कर दिया।

स्टर्लिंग की माग अपरिमित-सी थी, और वह माग पूरी करने की सरकार की शक्ति अत्यन्त परिमित। ऐसी दशा मे एक्सचेज का गिरना स्वाभाविक था। जो दर १ जनवरी १९२० को २७$\frac{9}{16}$ पेस स्टर्लिंग थी वह १ अगस्त १९२० को २२$\frac{5}{8}$ पेस स्टर्लिंग हो चली थी। उसके वाद भी दर क्रमश गिरती ही गई।

१९१९–२० और १९२०–२१ मे सब मिलाकर सरकार ने ५५,५३२,००० पौड स्टर्लिंग की उलटी हुण्डिया वेची। सरकार को इसके वदले यहा ४७ करोड १४ लाख रुपए मिले। अगर पुरानी दर १६ पेस रहती तो इतने रुपयो के वदले सरकार को कुल ३१,४२६,६६६ पौड स्टर्लिंग वेचना पडता। इससे स्पष्ट है कि २४ पेसवाली दर को कायम करने के प्रयत्न मे सरकार ने २४,०००,००० पौड स्टर्लिंग से अधिक गवा दिया। यह धन भारतवासियो का था, जिसे सरकार ने उनके हानि-लाभ की तनिक भी परवा न कर वात-की-वात मे लुटा दिया। पुरानी दर से २४,०००,००० पौड स्टर्लिंग के ३६ करोड रुपए हुए।

स्टर्लिंग के लिए जो इतनी वडी माग पैदा हो गई वह इस नई ऊची दर के कारण ही। इसलिए यद्यपि यह कहा गया है कि उलटी हुडियो की विक्री से प्राय ३६ करोड की हानि हुई तथापि यह भी ध्यान मे रखने की वात है कि अगर यह ऊची दर सरकार-द्वारा स्वीकृत न होती तो स्टर्लिंग के लिए जो कृत्रिम माग पैदा हो गई वह न होती और लन्दन मे जो हमारा स्टर्लिंग धन था वह इस प्रकार हवा न हो जाता।

१९१९–२० मे यहा से एक्सपोर्ट वहुत ही वडे पैमाने पर हुआ। सोने-चादी को छोड वाकी चीजो के इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट प्राय १२६ करोड रुपए अधिक का हुआ। पर स्थिति पलटते देर न लगी। १९२०–२१ मे एक्सपोर्ट तो ३२७ करोड से २५८ करोड और इम्पोर्ट २०१ करोड से ३३६ करोड हो चला। १९२१–२२ मे भी ऐसी ही अवस्था रही। जिस समय एक्सचेज

ने देखा कि यह सौदा उसको बेतरह महगा पडने जा रहा था। बस, उसने माल छुडाने मे ही इनकार कर दिया, क्योकि माल छुडाने का अर्थ था उसका सर्वनाश। उससे यह कहना कि व्यापारी को अपना कौल-करार जरूर पूरा करना चाहिए, बिलकुल व्यर्थ था, वह इसका उत्तर यह देता कि इस विषय मे सरकार ही अपना उदाहरण सबके सामने रख चुकी थी—उसने भी एक तरह का कौल-करार किया था कि वह रुपए की कीमत दो शिलिंग कर देगी और उसने अपने वचन की रक्षा न हो सकी थी। सरकार की ओर से कहा गया कि उसने कोई कौल-करार नही किया था, पर भारतीय व्यापारी की ओर से इसका जवाब यह दिया गया कि अब तक तो सरकार की बात को लोग इसी प्रकार का महत्व देते आ रहे थे—यहा तो यही समझा जाता था कि उसने जो कुछ कह दिया उसे वह पूरा करके ही रहेगी।"

सर वैलण्टाइन शिरोल भारतीय आकाक्षाओ के और भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के विरोधी और निन्दक थे, इसलिए उनका ऐसा लिखना विशेषतापूर्ण है।

उलटी हुडियो की बिक्री-द्वारा जो परिस्थिति पैदा की गई उसे उस समय 'लूटपाट' कहा गया था। इसकी सार्थकता समझने के लिए कुछ बाते ध्यान मे रखने की है। लन्दन मे हमारा जो धन सचित था वह १६ पेंस या उससे कुछ ऊँची दर के हिसाब से—अर्थात् जब हमने १५) का माल बेचा तब हमे लन्दन मे एक पौड स्टर्लिंग या उससे कुछ अधिक स्वीकार करना पडा। पर जब दर २४ पेंस (सोना) कर दी गई और उसे ठहराने के लिए उल्टी हुडिया बेची जाने लगी तब एक पौड स्टर्लिंग ७) मे ही मिलने लगा*। १५) की दर से हमने लन्दन मे जो कुछ जमा किया था उसे

---

* स्टर्लिंग में उल्टी हुडियो की दर २७$\frac{3}{4}$ पेंस से ३४$\frac{3}{4}$ पेंस तक थी। स्टर्लिंग सोने की अपेक्षा सस्ता था, इसलिए (२४ पेंस सोना) ३४$\frac{3}{4}$ पेंस (स्टर्लिंग) होता था। ३४$\frac{3}{4}$ पेन्स के हिसाब से एक पौंड स्टर्लिंग प्राय ७) का हुआ।

७) की दर से हमें छोड़ना पड़ा। यह लूट-खसोट नहीं तो और क्या था?

इस लूट-खसोट के लिए दोषी कहा तक भारत-सचिव थे और कहां तक भारत-सरकार, इसका स्पष्टीकरण न हो सका। जनता की ओर से कई बार यह मांग पेश की गई कि सरकार इस सम्बन्ध में भेजे हुए पत्रों और तारों को प्रकाशित करे। पर उसने ऐसा नहीं किया। अनुमान—जिसकी पुष्टि इतिहास से होती है—यही है कि जो कुछ हुआ, भारत सचिव की प्रेरणा और दबाव से।

२८ सितम्बर १९२० के बाद उल्टी हुंडियों की बिक्री तो बन्द हो गई, पर कानूनन दर २४ ग्रेन (सोना) ही बनी रही—अर्थात् एक सॉवरेन के बदले सरकार केवल १०) देने को बाध्य थी। एक्सचेंज गिर जाने के कारण सॉवरेन की वास्तविक कीमत उससे कहीं ज्यादा थी, और ऐसी हालत में सॉवरेन करेन्सी के काम न आ सकते थे।

सरकार रुपए लेकर बदले में स्टर्लिंग दे रही थी। इसका अर्थ यह हुआ कि चलन से रुपए या नोट निकले जा रहे थे। १ फरवरी और २५ सितम्बर १९२० के बीच उल्टी हुंडियों की बिक्री के फलस्वरूप नोटों का चलन १८५ करोड़ रुपए से घट कर १५८ करोड़ रुपए हो गया था। इससे अनुमान होता है कि चलन में भी कमी हुई थी। सिद्धान्ततः सरकार के लिए [illegible]

[illegible]

हो कि इतनी सिक्यूरिटीज तो स्टर्लिंग मे रहे और इतनी रुपए में। इस विधान मे दूसरे ऐक्ट द्वारा और भी हेर-फेर किए गए। रिजर्व मे जो सिक्यू-रिटीज और सोना था उनकी कीमत नई दर से लगाई गई। एक सॉवरेन पहले १५) के नोट की पुश्ती करता था, अब १०) के नोट की पुश्ती करने लगा। इस कारण रिजर्व मे कुछ कमी पडी, जिसकी पूर्ति भारत-सरकार ने अपने कागज रिजर्व को देकर कर दी।

मे फिर सोने के मान या स्टैण्डर्ड की प्रतिष्ठा हो गई। उसके बाद स्टर्लिंग और सोने मे मूल्य-सम्बन्धी एकता हो चली।

१ अगस्त १९२१ को रुपए की एक्सचेंज-दर स्टर्लिंग मे १५$\frac{१}{३}$ पेंस और सोने मे ११$\frac{१}{३}$ पेंस थी। पर कानूनन दर वही २४ पेंस (सोना) थी—अर्थात सरकार एक सॉवरेन के बदले १०) से ज्यादा देने को तैयार नही थी। जाहिरा तौर पर वह चुपचाप बैठी हुई थी, कुछ नहीं कर रही थी, पर असलियत मे उसने अपनी इस नीति-द्वारा नई करेन्सी की पैदाइश को रोक रखा था। उद्देश था धीरे-धीरे रुपए को महगा करके उसके मूल्य मे मनमानी वृद्धि करना। अनुकूल परिस्थिति का अर्थ था रुपए का ऐसा अभाव कि लोग उसकी कीमत ज्यादा देने को मजबूर हो जाय। कुछ न करके सरकार वास्तव मे ऐसे अभाव को प्रकृत या यथार्थ करना चाहती थी।

२४ जनवरी १९२२ को व्यवस्थापिका परिषद् मे सर विट्ठलदास ठाकरसी ने इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया कि—

"एक ऐसी कमेटी नियुक्त की जाय जिसके अधिकाश मेम्बर भारतवासी हो और जो निम्नलिखित विषयो पर विचार करे —

(१) करेन्सी और एक्सचेंज-सम्बन्धी वर्तमान नीति,

(२) भारतीय टकसालो मे सोने के सिक्को की अबाधित ढलाई,

(३) गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व को लन्दन से हटा कर भारतवर्ष मे रखने की आवश्यकता।"

उस समय तक दाम काफी गिर चुके थे। कपास, पाट, चाय, लोहा, प्राय सभी चीजो के दाम नीचे हो रहे थे। अगर १९१३ के दाम को १०० मान ले तो फरवरी १९२० मे दाम इस प्रकार थे —

ग्रेट ब्रिटेन ३०३

अमेरिका २३२

और ये दाम गिर कर जनवरी १९२२ मे क्रमश १५९ और १३८ हो गए थे।

भारतवर्ष मे जुलाई १९१४ का दाम १०० माना जाय तो १९२०

१९२१-२२ मे	१७,५००,०००	पौंड	स्टर्लिग
१९२२-२३ में	३२,५००,०००	"	"
१९२३-२४ मे	२०,०००,०००	"	"

सरकारी दर २४ पेंस सोना होने के कारण नई करेन्सी की पैदाइश बन्द थी ही, उधर सरकारी नीति के कारण जो करेन्सी मौजूद थी उसका भी सकोच हो रहा था। यह सकोच कई प्रकार से किया जा सकता था। जब रुपया चलन मे जाता है तब करेन्सी का विस्तार होता है, जब रुपया चलन से खिच कर सरकारी खजाने या रिजर्व मे पहुच जाता है तब करेन्सी का सकोच होता है। जब भारत-सचिव भारत-सरकार के नाम हुडिया बेचते और यहा उन हुडियो के भुगतान के लिए रुपए दिए जाते तब करेन्सी का विस्तार होता। इसके विपरीत जब भारत-सरकार लोगो से रुपए लेकर उलटी हुडिया बेचती तब करेन्सी का सकोच होता। १ जनवरी १९२० और ३१ अगस्त १९२४ के बीच इस प्रकार प्राय ४५॥। करोड रुपए का सकोच हुआ। इसी तरह जब सरकार कर्ज लेती तो करेन्सी का सकोच होता, और जब कर्ज चुकाती तब करेन्सी का विस्तार।

सरकार की नीति कुछ हद तक सफल हो चली और सितम्बर १९२४ मे एक्सचेज-दर १६ पेंस (सोना) पर आ गई। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने उस समय व्यवस्थापिका परिषद् मे दो बिल पेश कर यह विधान कराना चाहा कि स्थायी रूप से एक्सचेंज १६ पेंस (सोना) कर दिया जाय। पर इन बिलो पर परिषद् मे विचार न हो सका। इस समय अर्थ-सदस्य सर बेसिल ब्लैकेट थे। उन्होने सरकारी नीति का स्पष्टीकरण करते हुए १९ सितम्बर को कहा कि —

"ऐसे समय मे जब कि हॉलैण्ड, स्विटजरलैण्ड और दक्षिण अफ्रीका जैसे देश भी स्टर्लिग की गति के विषय मे कुछ और निश्चयपूर्वक जाने बिना सोने के मान या स्टैण्डर्ड की स्थापना को अपने लिए जोखिम का काम समझते है, भारत-सरकार रुपए की एक्सचेज-दर को सोने मे अभी निश्चित कर देना भारतवर्ष के लिए हितकर नही समझती।"

बात यह थी कि सरकार की नीयत १६ पेंस (सोना) से ऊची दर करने

सोने का मान या स्टैण्डर्ड फिर स्थापित हो जाय तब रुपए की एक्सचेंज-दर भी बराबर के लिए १८ पेंस सोना हो चले। भारत-सचिव इतने से ही सन्तुष्ट नही थे। वह १८ पेंस (सोना) से भी ऊची दर के इच्छुक थे। पर भारत-सरकार को वस्तुस्थिति का जैसा ज्ञान था वैसा उनको नही। सरकार जानती थी कि अगर इससे भी ऊची दर के लिए प्रयत्न किया गया तो यहा ऐसी भयकर स्थिति पैदा हो जायगी जिसे सभालना सभवत उसके लिए असभव हो जायगा। ८ अक्तूबर १९२४ को उसने भारत-सचिव को तार दिया—

"अब आम तौर से लोग यह समझने लगे है कि बाजार मे रुपए की जो तगी है वह सरकार के करेन्सी का सकोच करने या उसके विस्तार को रोक देने का फल है।"

उसी तार मे यह भी कहा गया था कि "अगर हम पेंस जडते ही गए और रुपए की तगी बढती ही गई तो आर्थिक सकट उपस्थित होने का बड़ा खतरा है।"

फिर भी भारत-सचिव की राय न बदली—वह यही चाहते रहे कि एक्सचेंज की ऊपरी हद न बाधी जाय। हा, वह इतना करने को राजी हुए कि किसी एक हफ्ते मे ½ पेनी से अधिक एक्सचेंज को न उठने दिया जाय।

११ अक्तूबर को भारत-सरकार ने फिर तार दिया—

"भारत के हित को, और भविष्य मे अपनी आर्थिक जिम्मेवारी को, देखते हुए हम समझते है कि १८ पेंस से ऊची दर मुनासिब न होगी।"

उसने जिस नीति का समर्थन किया वह उसीके शब्दो मे यह थी—

"अपने मन मे हम यह निश्चित कर ले कि रुपए की एक्सचेंज-दर १८ पेंस स्टर्लिंग की जायगी, और तब तक कुछ न करे जब तक स्टर्लिंग और सोना इन दोनो का मूल्य एक नही हो जाता।"

उस समय सारे विषय पर एक नए करेन्सी कमीशन द्वारा विचार होने जा रहा था। रेट के सम्बन्ध मे केवल विचार का अभिनय होनेवाला था, क्योकि विचार तो सरकार पहले ही कर चुकी थी, और होना वही था जो उसे मजूर था। भारत-सचिव तो और भी ऊची दर चाहते थे, इसलिए भारत-सरकार की नीति के सम्बन्ध मे उन्होने उसे व्यग-पूर्वक लिखा

बहुमत ने एक्सचेज के सम्बन्ध मे वही राय दी जिसकी उससे आशा की जा सकती थी—यह कि एक्सचेज को १८ पेस पर टिका दिया जाय। उसकी खास दलील यह थी कि इस दर को कायम हुए इतना समय हो चुका—देश मे चीजो के दाम और मजूरी का इससे बहुत कुछ मिलान हो चुका है—अब इसको हटाकर दूसरी दर कायम करने से बडी गडबडी होगी। पाठको को याद होगा कि फौलर कमेटी ने १६ पेस के पक्ष मे भी ऐसी ही बाते कही थी। १६ पेस की तरह १८ पेस भी कृत्रिम ढग से पैदा किया गया और कुछ महीनो के लिए टिकाया गया। फिर एक करेन्सी कमीशन ने आकर यह कहा कि जो चीज जमी हुई है उसे उखाडने की सलाह हम दे ही कैसे सकते है!

मिलानवाली दलील यह है कि एक्सचेज उठने से दाम गिरते है, मजूरी सस्ती हो जाती है— और किसान-जैसे उत्पादक को जहा अपना गल्ला बेचने पर कम रुपया मिलता है वहा साथ ही और चीजे सस्ती होने के कारण उसका खर्च भी कम पडता है—इसलिए वह अन्त मे न नफे मे रहता है, न घाटे मे। एक्सचेज की घटाबढी थोडे समय के लिए किसीको लाभ पहुचा सकती है, और किसीको हानि। पर अन्त मे सब चीजो का उससे मिलान हो जाता है और यह मिलान हो जाने पर हानि-लाभ का प्रश्न ही जाता रहता है। लेना-देना समान हो गया, किसीकी स्थिति मे कोई अन्तर नही पडा।

बात ठीक-सी जचती है, पर इस सम्बन्ध मे कई प्रश्न किए जा सकते है। क्या गल्ले का दाम गिरने के साथ सरकार ने या जमीदारो ने किसानो से कम लगान लेना शुरू कर दिया था? क्या महाजन इस बात पर राजी हो गए थे कि ब्याज मे कमी कर देगे? क्या मजूरो ने सचमुच खुशी-खुशी अपनी मजूरी मे कटौती मजूर कर ली थी, और क्या रेल-भाडा अब दाम गिरने से घटा दिया गया था? अगर नही, तो कैसे कहा जा सकता था कि मिलान हो चुका था? भारतवर्ष का भीतरी व्यापार उसके विदेशी व्यापार से कई गुना बडा है। इस भीतरी व्यापार की सैकडो चीजे ऐसी है जो कभी एक्सचेज या इम्पोर्ट की लिस्ट पर नही चढती और जिनपर

भी विचार किया और प्रमाणित कर दिया कि प्रत्येक दृष्टि से पुराना चावल ही हमारे लिए पथ्य हो सकता था।

कमीशन की दूसरी सिफारिशें यह थी—

(१) चलन में नोट और रुपए रहे और सरकार इनके बदले सोना देने को बाध्य हो, पर वह सोना इस रूप में हो कि उसका मुद्रा की तरह उपयोग न हो सके।

(२) करेन्सी-सम्बन्धी सारी व्यवस्था एक बड़ी बैंक के हवाले कर दी जाय जिसका नाम रिजर्व बैंक हो।

(३) सॉवरेन अब सिक्का न रहे और उसे लेने-देने को कोई बाध्य न हो।

(४) कागज के नोटो के बदले जो रुपए देने की व्यवस्था है वह धीरे-धीरे उठा दी जाय। जो पुराने नोट चलन में है उनके लिए तो यह व्यवस्था रहे, पर नए नोटो के लिए न रहे। पर कानूनन ऐसी व्यवस्था न होते हुए भी व्यवहार मे नोटो के बदले रुपए दिए जाय। एक रुपए के नोट फिर से जारी किए जाय। करेन्सी-विभाग को अधिकार हो कि वह एक रुपए के नोटो को छोड बाकी नोटो के बदले या तो कम कीमत के दूसरे नोट दे सके या—अगर वह चाहे तो—रुपए।

(५) रुपया लेने-देने को लोग बाध्य बने रहे पर नए रुपए तब तक न ढाले जाये जब तक चलन मे उनका परिमाण काफी कम न हो जाय।

(६) पेपर करेन्सी और गोल्ड स्टेण्डर्ड रिजर्व मिला दिए जाय, और उस संयुक्त रिजर्व मे सोना, चादी या सिक्यूरिटीज का परिमाण क्या हो वह कानून-द्वारा निश्चित कर दिया जाय।

(७) हुडियो और चेको पर जो स्टाम्प-ड्यूटी है वह उठा दी जाय।

सोने के जिस मान या स्टैण्डर्ड की कमीशन ने सिफारिश की थी उसमे सिक्को का कोई स्थान नही था। कमीशन की राय सोने के सिक्को के चलन के खिलाफ थी, इसलिए उसने सिफारिश की थी कि करेन्सी-विभाग सोना लेने-देने को बाध्य तो हो पर वह सोना सिक्को के रूप मे न होकर सिल या पासे के रूप मे हो, और ४९० औस से कम लेने-देने का किसीको

आज जनता कही अधिक जाग्रत थी। १९१९-२० से भी वह बहुत आगे बढ़ गई थी। इसका श्रेय महात्मा गाधी को था। लोग इतने दिनो से बराबर यही देखते आ रहे थे कि सरकार को अपनी मुद्रा-सबधी नीति-रीति वही रखनी पड़ती थी जो इगलैण्ड के व्यापारियो या पू जीपतियो के हक मे अच्छी थी, न कि इस देश की जनता के। इस नीति-रीति का उद्देश होता आया था भारतवर्ष का दोहन कर इगलैण्ड के मुह मे धारोष्ण पहुचा देना। १६ पेस की जगह १८ पेस एक्सचेज करने की तैयारी भी इसी नीयत से थी। इसमे भारतवर्ष के उत्पादको की, करोडो किसानो की, हानि थी। लाभ था ब्रिटिश व्यवसायियो का--इस देश मे ब्रिटिश माल मगानेवालो का, यहा के ब्रिटिश कर्मचारियो का।

सरकार ने निश्चय किया कि व्यवस्थापिका सभा-द्वारा सबसे पहले एक्सचेज की नई दर पास करा ली जाय, फिर और विषयो को हाथ मे लिया जाय। यह जानी हुई बात थी कि व्यवस्थापिका सभा मे जनता के प्रतिनिधियो की ओर से इस प्रस्ताव का घोर-से-घोर विरोध होगा। इसलिए सरकार ने भी अपनी पूरी शक्ति लगा कर १८ पेस को पास कराने की तैयारी शुरू कर दी।

२७ और २८ मार्च १९२७ को परिषद् मे इस विषय पर वाद-विवाद हुआ। अर्थ-सदस्य सर बेसिल ब्लैकेट ने इसका श्रीगणेश करते हुए उन परिणामो का एक बडा ही भयकर चित्र खीचा, जो १८ की जगह १६ पेस के ग्रहण से उपस्थित होनेवाले थे। उनके कहने का साराश यह था कि अगर एक्सचेज की दर १६ पेंस कर दी जायगी तो दाम चढेगे, और दाम चढने से चारो ओर बडी अशाति पैदा हो जायगी। मजूरो के तथा ऐसे लोगो के हक मे, जिनकी आमदनी बधी या निश्चित है, इस प्रकार की महगी बहुत ही बुरी चीज होगी।

वास्तव मे दाम बढने की कोई सभावना नही थी, क्योकि जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, १८ पेस के कारण दाम या मजूरी अभी यथेष्ट परिमाण में गिरी नही थी। अगर रेट उस समय १६ पेस कर दी जाती तो अवस्था मे विशेष अन्तर पड़ने का कोई कारण नही था। गिरने के बजाय दाम जहा थे, प्राय वही बने रहते। उठने की बात तो विभीषिका-मात्र थी, जिसका

की विस्मृति-सी दिखाते हैं कि हम लोगो ने १९२४ मे ही एक्सचेंज को स्थिर कर देने का आग्रह किया था। हम लोगो का प्रस्ताव था कि एक्सचेंज १६ पेंस कर दिया जाय—यह उन्हे स्वीकार क्यो न हुआ ? उस समय तो उन्हे इतना भी स्वीकार न हुआ कि रायल (शाही) कमीशन-द्वारा इस विषय पर विचार कराया जाय। बाद मे उन्होने इसे स्वीकार भी किया तो लोकमत का निरादर-सा करते हुए। कमीशन के मेम्बरो की नामावली प्रकाशित होते ही हम लोग समझ गए थे कि फैसला वही होनेवाला है जो सरकार को मजूर है। हम लोगो को इस बात का निश्चय हो गया था कि उसका निर्णय १८ पेंस के ही पक्ष में होनेवाला है।"

इसके बाद जो बहस हुई उसमें खास हिस्सा लेनेवाले सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, श्रीयुत घनश्यामदास बिडला, मि० जिन्ना, मि० जमनादास मेहता और सर विक्टर ससून थे—जो सब-के-सब १६ पेंस के पक्षपाती थे। दो-एक अगरेज मेम्बरो ने भी इसी पक्ष का समर्थन किया। बडी सरगर्मी से बहस हुई और १८ पेंस के पक्ष मे जो दलीले दी गई थी उनकी बडी छीछा-लेदर की गई। वोटो के लिए काफी खीचातानी रही और सरकार ने सचमुच अपनी पूरी ताकत लगा दी। अन्त में जब वोट लिए गए तब सरकार के पक्ष मे आए ६८ और विपक्ष में ६५—अर्थात् तीन वोटो से सरकार की जीत रही, और १८ पेंस कायम रह गया।

जो विधान पास हुआ उसके द्वारा व्यवस्था यह हुई कि सरकार को कोई जितना सोना चाहे २१≡)१० तोले के हिसाब से बेच सकता था। सोने को बम्बई टकसाल मे पहुचाना पडता और कोई भी पासा ४० तोले से कम का न हो सकता था। नोटो या रुपयो के बदले सरकार उसी दर से बम्बई में सोना—या वह चाहती तो लन्दन मे स्टर्लिंग—दे सकती थी। पर १,०६५ तोले से कम सोना न मिल सकता था। स्टर्लिंग देने के लिए सरकार की ओर से १७$\frac{49}{64}$ पेंस की दर मुकर्रर हुई—बम्बई से लन्दन सोना भेजने मे जो खर्च पडता उसे १८ पेंस से काट कर। सॉवरेन लेने-देने को कोई बाध्य न रहा, पर सरकार २१≡)१० तोला के हिसाब से (अर्थात् १३।-४ फी सॉवरेन) उन्हे लेने को बाध्य कर दी गई।

७

इतिहास की पुनरावृत्ति

रेट कायम कर देना एक वात है, उसे टिकाना और। इस देश मे जब से स्वयसिद्ध मुद्रा नाम की कोई चीज नही रही और करेन्सी की मिकदार सरकार की मर्जी पर रह गई, तब से—जैसा कि पहले कहा जा चुका है—सरकार के लिए कोई भी दर कायम करना और उसे टिकाना सम्भव हो गया। पर यह सिद्धान्त की बात है। व्यवहार मे सरकार की शक्ति और उसके साधन परिमित है, इसलिए सब कुछ उसीकी मर्जी से नही हो सकता। पहले-पहल जब उसने १६ पेस की दर चलानी चाही थी तब उसे इसके लिए कई साल ठहरना पडा था। करेन्सी की मात्रा कम करते-करते वह सफलता के पास पहुची थी। फिर जब वह उसी दर को बराबर के लिए २ शिलिग करने चली तब उसे इस देश के करोडो रुपए लुटा देने पर भी कामयाबी नही हुई और अन्त मे उसे यह प्रयास छोड देना पडा। अब दर १८ पेस कायम कर दी गई, पर इसका यह अर्थ नही कि विधान बनते ही इस दर मे आप-ही-आप स्थायित्व आ गया। जब आर्थिक स्थिति इसके अनुकूल नही थी—अर्थात् जब रुपए की असली कीमत बाजार मे १६ पेस के लगभग थी तब उसके बदले १८ पेस आसानी से कैसे मिल सकता था? हा, उसी पुराने अस्त्र का फिर उपयोग करके—करेन्सी का सकोच करके—सरकार ऐसी स्थिति अवश्य पैदा कर सकती थी कि बाजार को रुपए की नई कीमत स्वीकार करनी पडे। और इस अध्याय मे हम देखेंगे कि उसने सचमुच यही किया। १८ पेस दर को टिकाने के लिए सरकार ने फिर उन्ही कृत्रिम उपायो का अवलम्बन किया और जहा तक करेन्सी का सम्बन्ध है, देश को भूखो मार कर उससे रुपए की नई कीमत मजूर करा ली। जो कुछ हुआ वह, और ही पैमाने पर सही, इस देश मे पहले भी हो चुका था।

नई दर के विरोधियो ने सरकार को काफी चेतावनी दे दी थी कि

लाख पौड स्टर्लिंग

	बजट के अनुसार	जो रकम भेजी जा सकी
१९२७—२८	३५५	२८३
१९२८—२९	३६०	३०८
१९२९—३०	३५२	१५२
१९३०—३१	३४५	५४
	१,४१२	७९७

पिछले दोनो साल हालत बडी ही नाजुक रही। १९३०-३१ मे कुल ५,३९५,००० पौड स्टर्लिंग खरीदा जा सका। प्राय ५७ लाख पौंड स्टर्लिंग सरकार को बेचना भी पडा। १९ नवम्बर १९३० को सरकार के पास स्टर्लिंग बेचनेवालो की ओर से कोई टेण्डर आया ही नही, जिसका नतीजा यह हुआ कि कुछ समय के लिए सरकार बाजार से ही हट गई। १९३१-३२ मे एक्सचेज की कमजोरी इतनी बनी रही कि सरकार कुछ भी स्टर्लिंग न खरीद सकी। उसके रुपए को दबाकर बैठ जाने पर भी रुपए की कीमत जैसी-की-तैसी ही रही।

जब उलटी हुण्डिया बेची गई थी तब भारतवर्ष के सचित सुवर्ण तथा स्टर्लिंग धन को लुटा देने मे सरकार को तनिक भी सकोच नहीं हुआ था। ३१ मार्च १९१९ को जितने नोट चलन में थे उनके सैकडे ६५ ९ भाग की पुश्ती रिजर्व मे ऐसे सुवर्ण तथा स्टर्लिंग धन-द्वारा होती थी। एक साल बाद यह परिमाण घट कर १९.६ रह गया था– क्योकि पहले जहा प्राय ११५ करोड (१६ पेस की रेट से) था वहा अब कुल ३२ करोड (२४ पेस की दर से) रह गया था। उलटी हुण्डियो की बिक्री के प्रारम्भ और अन्त के बीच प्राय ७७ करोड का सोना और स्टर्लिंग हवा हो गया। इसके बाद जो समय आया उसमे फिर कुछ सचय हुआ और ३१ मार्च १९२६ को नोटो का सैकडे २६,५ भाग रिजर्व में सोने-स्टर्लिंग के रूप मे था। यह रकम थी प्राय ५१ करोड (२४ पेस की रेट से) अर्थात् प्राय २२ करोड (१८ पेस की रेट से प्राय ३० करोड) सोना और प्रायः २९ करोड (१८ पेस की रेट से प्राय ३८॥। करोड),स्टर्लिंग।

पास जनवरी के अन्त मे प्राय ८८ करोड का सोना या सोने की सिक्यूरिटीज थी। चलन में जितने नोट है उनका यह प्राय आधा होता है। बैंक ऑव् इगलैण्ड के पास तो सोने का परिमाण ८ जनवरी को इससे कम ही था—अर्थात् नोटो के सैकडे ३६ भाग की ही पुश्ती सोने मे होती थी।"

हमारे अर्थ-सदस्य ने जानबूझ कर ऐसी बात कही जो असत्य थी। जनवरी १९३० के अन्त मे पेपर करेन्सी रिजर्व में सोना और सोने की सिक्यूरिटीज मिलाकर कुल प्राय ३५ करोड था। इससे स्पष्ट है कि गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व के सोने को शामिल करके ही उन्होने सोना ८८ करोड रुपए का बताया था। पर गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व कागज के नोटो की पुश्ती के लिए तो था नही। वह तो चादी के नोटो अर्थात् रुपयो की पुश्ती के लिए था। असलियत यह थी कि गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व रुपयो की दृष्टि मे ही काफी नही था। उस समय करेन्सी रिजर्व के रुपयो को छोड चलन मे बाकी रुपए प्राय २०० करोड थे। सोने मे इनकी कीमत प्राय ५० करोड थी। गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व का सोना बेचने पर भी रुपयो की पुश्ती के लिए प्राय १०० करोड की कमी थी। इस सम्बन्ध मे यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि चादी की जो कीमत यहा ली गई है वह उस समय की बाजार-दर के अनुसार है। अगर इतनी चादी कभी बाजार मे बिकने को आती तो दर और भी गिरती और उसकी कीमत कम हो जाती। कुछ भी हो, कागज के नोटो के प्रसग मे गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व के सोने की बात करना लोगो को भ्रमान्ध करने की चेष्टामात्र थी।

भारत-सचिव को अपना काम चलाने के लिए न सिर्फ करेन्सी रिजर्व के धन पर हाथ फेरना पडा, बल्कि उन्हे लन्दन मे कर्ज भी काफी लेना पडा। मई १९२३ से १९२७ के अन्त तक स्टर्लिंग मे हमे कोई कर्ज लेना नही पडा था। पर इसके बाद तो स्थिति इतनी बिगडी कि सरकार के लिए लन्दन मे कर्ज लेना अनिवार्य-सा हो गया। बजट मे व्यवस्था न होते हुए भी कर्ज लेना पडता, या सरकार का तखमीना कुछ होता, और असलियत कुछ और ही होती।

	करोड रुपए		
	३१मार्च१९२४	३१मार्च१९२७	३१मार्च१९३१
इगलैंड मे —			
कर्ज और दूसरी देनदारी १८ पेंस की रेट से	४३२.०४	४५२.४८	५१७ ०१
भारतवर्ष और इगलैंड की मिलाकर	९११.००	१,००६ १९	१,१७१.९६

ऊपर ट्रेजरी बिलो का जिक्र है। १९३०–३१ मे सरकार की इस रूप मे देनदारी ५५ करोड से ऊपर थी। इन बिलो के द्वारा कुछ महीनो के लिए कर्ज लेना और इस प्रकार बाजार से रुपए को यथासम्भव खीच लेना अब सरकार की मुद्रा-नीति का एक मुख्य भाग बन गया। जुलाई १९२७ मे सरकार ने कुछ कर्ज लेना चाहा, पर उमे यथेष्ट सफलता नही हुई। अगस्त मे उसने ट्रेजरी बिल निकाल कर ऊचे ब्याज पर रुपया लेना शुरू किया। साख गिर जाने के कारण सरकार को यह ऊचा ब्याज देना पडता था। बैंको को डिपॉजिट के लिए जो ब्याज देना पडता उससे प्राय १ प्रतिशत अधिक सरकार को ऐसे कर्ज के लिए देना पडता था। पर एक्सचेंज-दर को टिकाने के लिए करेन्सी का सकोच करना सरकार के लिए इतना आवश्यक था कि वह इन ट्रेजरी बिलो के जरिए बाजार से रुपया खीचती ही गई। इधर करेन्सी का कब कितना विस्तार या सकोच हुआ यह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा। इसमे + विस्तार का और – सकोच का सूचक है।

	लाख रुपए
१ जनवरी १९२० से ३१ मार्च १९२१ तक	– ३८,४८
१९२१—२२	– ३,८०
१९२२—२३	– ९,६०
१९२३—२४	+ १८,१५
१९२४—२५	+ १,६०
१९२५—२६	+ १,००

	करोड रुपए		
	३१ मार्च १९२४	३१ मार्च १९२७	३१ मार्च १९३१
इगलैंड मे —			
कर्ज और दूसरी देनदारी १८ पैंस की रेट से	४३२.०४	४५२.४८	५१३.०१
भारतवर्ष और इगलैंड की मिलाकर	९१९.००	१,००६.१२	१,१३१.१६

ऊपर ट्रेजरी बिलो का जिक्र है। १९३०-३१ में सरकार की इस रूप में देनदारी ५५ करोड से ऊपर थी। इन बिलों के द्वारा कुछ महीनो के लिए कर्ज लेना और इस प्रकार बाजार से रुपए को यथासम्भव खींच लेना अब सरकार की मुद्रा-नीति का एक मुख्य भाग बन गया। जुलाई १९२७ मे सरकार ने कुछ कर्ज लेना चाहा, पर उसे यथेष्ट सफलता नहीं हुई। अगस्त मे उसने ट्रेजरी बिल निकाल कर ऊचे ब्याज पर रुपया लेना शुरू किया। साख गिर जाने के कारण सरकार को यह ऊचा ब्याज देना पडता था। बैंको को डिपॉजिट के लिए जो ब्याज देना पडता उससे प्राय १ प्रतिशत अधिक सरकार को ऐसे कर्ज के लिए देना पडता था। पर एक्सचेंज-दर को टिकाने के लिए करेन्सी का सकोच करना सरकार के लिए इतना आवश्यक था कि वह इन ट्रेजरी बिलो के जरिए बाजार से रुपया खींचती ही गई। इधर करेन्सी का कब कितना विस्तार या सकोच हुआ यह नीचे की तालिका से स्पष्ट होगा। इसमे + विस्तार का और − सकोच का सूचक है।

	लाख रुपए
१ जनवरी १९२० से ३१ मार्च १९२१ तक	− ३८,४८
१९२१—२२	− ३,८०
१९२२—२३	− ९,६०
१९२३—२४	+ १८,१५
१९२४—२५	+ १,६०
१९२५—२६	+ १,००

बर्न	३½	३¼	२½	२½
कलकत्ता	७	७	७	६

२० जून १९३१ को दरें इस प्रकार थी —

लन्दन	२½ फीसदी
न्यूयार्क	१½ "
एम्स्टर्डम	२ "
बर्न	२ "
कलकत्ता	६ "

१९२९ में इम्पीरियल बैंक के विरोध करने पर भी सरकारी आदेश से बैंक-रेट ७ से ८ प्रतिशत कर दी गई थी। परिषद् में इस विषय पर प्रश्न किए गए तो अर्थ-सदस्य ने कहा कि सरकार ने जो कुछ किया, सोच-समझ कर किया और उसकी जिम्मेवारी मेरे ऊपर है।

१८९३ के बाद भी सरकारी नीति ने इस देश में ऐसी ही स्थिति पैदा कर दी थी। उस नीति का उद्देश था रुपए की तगी करके उसका मूल्य १६ पेंस कर देना। जो तगी इस बार पैदा की गई थी उसका उद्देश था रुपए के मूल्य को १८ पेंस पर ठहराना। फौलर कमेटी के सामने सरकारी नीति के समर्थकों ने कहा था कि इधर एक्सचेंज मे स्थिरता का अभाव रहा है, इसलिए विलायतवालो ने अपनी बहुत कुछ रकम यहा से उठा ली है — बैंको के पास उधार देने के लिए अब उतना रुपया-पैसा नही रहा है और इसी कारण बाजार मे ऐसी तगी है—अर्थात् इस तगी का सरकार के रुपए न ढालने से कोई सम्बन्ध नहीं था। दूसरे गवाहो ने इस तर्क का खण्डन करते हुए कहा था कि "बात ऐसी नहीं है। एक्सचेंज की स्थिरता से ही किसी देश में बाहर से पूजी नहीं आ सकती। पूजी तो तब आती है जब उसका लाभदायक उपयोग हो सकता है,और जहा ऐसी स्थिति होती है वहा एक्सचेंज की अस्थिरता भी पूजी के आने को नही रोक सकती। एक्सचेंज-दर गिरते रहने पर भी बाहर से करोडो रुपए आकर यहा के वाणिज्य-व्यवसाय और उद्योग-धधो मे लग चुके थे। उधर इगलैण्ड और आयरलैंड के बीच का एक्सचेंज स्थिर होते हुए भी इगलैण्ड से आयरलैंड मे जाकर बहुत

रही थी उसकी तह मे फिर सरकार की वही गिरावट-नीति थी। फर्क था तो इतना ही कि इस बार उस नीति का रूप कहीं उग्र था—और करेन्सी की वृद्धि ही नही रोक दी गई थी, बल्कि चलन से करेन्सी बहुत मिकदार मे उठा ली गई थी।

१९२३–२४ से १९२५–२६ तक हर साल इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट प्राय ८८ करोड अधिक हुआ, पर बाद के तीनो साल इतने अच्छे न रह सके और एक्सपोर्ट हर साल ४७ करोड ही अधिक रहा। १९२९–३० मे यह आधिक्य बढ कर प्राय. ५३ करोड हो गया था, पर एक्सपोर्ट को कम होते देर न लगी और १९३०–३१ मे वह इम्पोर्ट ने प्राय ३७॥ करोड ही अधिक रहा।

जिस समय एक्सचेज-दर २४ पेंस की गई थी उस समय उसके पक्षपातियो ने जोर देकर कहा था कि ससार मे दाम गिरनेवाले नहीं, वल्कि और ऊपर चढनेवाले है। बात कुछ और ही हुई, और दाम काफी नीचे गिर पडे। १९२७ मे जब दर १८ पेंस की जा रही थी तब उसके विरोधियो ने कहा था कि ससार मे दाम चढने की तो कोई आशा की नही जा सकती, पर दाम गिरने की आशका जरूर की जा सकती है। और अगर सचमुच ऐसा हुआ—अर्थात् चीजो के सोने मे दाम गिरे—और रुपए की एक्सचेज-दर १८ पेंस रही, तो यहा के किसानो को इन दोनो पाटो की चक्की में पिसना पडेगा। पर सरकार की ओर से उनका मजाक उडाया गया और कहा गया कि ससार मे दाम गिरने का कोई कारण नजर नही आता—हमे यह मान ही लेना होगा कि दाम स्थिर बने रहेगे। काश कि ऐसा ही होता!

श्री बिडला जी बराबर यह कहते जाते थे कि सरकार को अपना घर सभालना चाहिए—अर्थात् अपने खर्च को घटा कर दिवालियापन से बचना चाहिए। ७ मार्च १९२८ को उनके एक भाषण मे हम यह चेतावनी पाते है —

"जो आफत हमारे ऊपर आ पहुची है उसके बारे मे भी मै कुछ कहना चाहता हू। पाच साल से लगातार फसल अच्छी होती आई है। इससे मुल्क मे खुशहाली होनी चाहिए थी। पर हम देखते क्या है? परिषद् के बहुत से मेम्बरो को मालूम होगा कि देश की क्रय-शक्ति बहुत ही कम हो गई

३० मे १ करोड ५६ लाख टोटा रहा। १९३०–३१ मे हालत ज्यादा बिगडी और पाच करोड से ऊपर नए टैक्स लगने पर भी जहा ८६ लाख बचत की आशा की गई थी वहा प्राय १३॥ करोड टोटा रहा।

सरकार ने अपने खर्च को कुछ हद तक घटाया। कर्मचारियो के वेतन मे १० प्रतिशत की कटौती* भी की, पर परिस्थिति काबू में लाई गई विशेषत करदाताओ का बोझ भारी करके। तीन साल में प्राय' ४२ करोड की कर-वृद्धि हुई—१९३०-३१ के बजट-द्वारा पाच करोड, १९३१-३२ के बजट-द्वारा १५ करोड, और बाद के सप्लीमेटरी बजट-द्वारा २२ करोड की।

आरम्भ मे ही निराशावादियो की चेतावनी पर ध्यान दिया जाता तो यह नौबत न आती। निराशावादी ही यथार्थवादी थे।

* ११३३-३४ के बजट-द्वारा यह कटौती १० से ५ प्रतिशत कर दी गई और १९३५-३६ के बजट-द्वारा बिलकुल उठा दी गई।

उधर अमेरिका मे वाहर से इतना सोना आया कि १९१४ मे वहा जो स्टॉक था वह १९१९ मे दूना हो चला। वहा सोने का चलन भी बना रहा। सोने का उत्पादन कम होते हुए भी दामो के उस ऊँचे सतह पर कायम रहने का रहस्य यही है कि अमेरिका मे तो सोने की यो ही वहुतायत हो चली, और दूसरे देशो मे सोना चलन से निकल कर रिजर्व वैको की तिजोरियो मे भर गया। सोने और नोटो के वीच जो अनुपात पहले था वह अव न रहा—अर्थात् नोटो की पुश्ती के लिए अव पहले की अपेक्षा कम सोना आवश्यक हो चला। सोना केन्द्रीभूत हो गया, अनुपात मे हेर-फेर कर दिए गए—नोटो का प्रसार वढ गया, दामो की सतह ऊँची हो चली।

लडाई की मुसीवत ने इगलैण्ड तथा कई अन्य देशो को गोल्ड स्टैण्डर्ड से अलग कर दिया था। अव जरा अच्छे दिन आए और लोगो को यह दीखने लगा कि सोने की ओर से कोई खतरा नही है, तव उन देशो मे लोकमत का झुकाव गोल्ड स्टैण्डर्ड को फिर अपना लेने के पक्ष मे होने लगा। अमेरिका मे गोल्ड स्टैण्डर्ड वना हुआ था—वहा का डॉलर एक निर्दिष्ट मात्रा के सोने का प्रतिनिधि था, नोट देकर कोई भी उसके वदले उतना सोना पा सकता था और उसका जैसा उपयोग चाहता, कर सकता था। ऐसी हालत में इगलैण्ड-जैसे देश के लिए गोल्ड स्टैण्डर्ड पर वापिस आने का व्यावहारिक अर्थ था पौण्ड को डॉलर के साथ वाध देना—अर्थात् डॉलर या सोने मे पौण्ड की कीमत को तरल या चचल न छोड कर उसे स्थिर, निश्चित, निश्चल कर देना।

पर कीमत वाधी जाय तो किस दर से ? निर्ख पुराना हो या नया ? जव पहले इगलैण्ड और अमेरिका दोनो गोल्ड स्टैण्डर्ड पर थे तव एक पौण्ड ४ ८६ डॉलर की वरावरी करता था। वहा १९२५ मे सरकार ने यह निर्णय किया कि अव आगे से पौण्ड के वदले वे-रोक-टोक सोना मिल सकेगा और निर्ख वही पुराना (अर्थात् १ पौण्ड = ४ ८६ डॉलर) होगा। पर इस निर्णय के विरोधी भी थे जिनका कहना था कि पौण्ड का मूल्य इतना ऊँचा नही होना चाहिए—इससे निर्यात (एक्सपोर्ट) व्यापार को धक्का लगेगा और उद्योग-धधो की गहरी हानि होगी।

१९२२ मे पौंड और डॉलर के बीच एक्सचेंज की दर १ पौंड= ४.२५ डॉलर थी। उस समय इगलैण्ड में थोक दाम अमेरिका से प्राय १५ प्रतिशत ऊंचे थे। अगर यह मान लेने का यथेष्ट कारण होता कि अब आगे दोनो देशो मे दामो की गति समान रहेगी तो एक्सचेंज की इसी रेट को स्थायी कर देना उपयुक्त होता। पर इसके खिलाफ यह दलील थी कि आदर्श तो यही हो सकता है कि पौंड फिर अपने असली स्वरूप को प्राप्त कर ले—अर्थात् ४ ८६ डॉलर तक पहुच जाय। कारण कि जब तक पौंड वहा तक नही पहुच जाता तब तक लन्दन की साख फिर पूरी तरह नही जम सकती और वह फिर एक बार ससार का आर्थिक केन्द्र नही बन सकता। लुप्त गौरव को फिर से प्राप्त करने के उद्देश से ही वहा की सरकार ने १९२५ मे पौंड को ४ ८६ डॉलर पर पहुचा कर उसका यही मूल्य स्थिर कर दिया, यद्यपि इगलैण्ड को इसके बाद यह अनुभव होने लगा कि यह जल्दबाजी हो गई—उसे पौंड को इस तरह सोने की जजीर मे जकडबन्द नही करना चाहिए था।

१९२५ मे लक्षणो से यह प्रतीत होता था कि अमेरिका मे दाम उठने-वाले है, पर वहा उसके बाद दाम उठने के बजाय गिरने लगे। बाकी दुनिया मे भी दामो का झुकाव गिरने की ही ओर था।

इगलैण्ड अगर औरो की तरह अपने दामो को गिरा सकता तो उसके लिए चिन्ता की कोई बात नही थी, पर वह ऐसा करने मे असमर्थ था। कारण यह कि वहा मजदूरी मे कमी करना जरा टेढी खीर थी। कल-कारखानेवालो का कहना था कि विदेशो मे दाम गिर रहे है, हमारे सामने उस प्रतियोगिता का मुकाबिला करने के दो ही उपाय है—या तो एक्सचेंज-रेट नीची कर दी जाय या हमे भी उसी हद तक दाम गिराने दिया जाय। पर दोनो मे एक भी सभव न हो सका। न तो सरकार ने रेट गिराई, न मजदूरो ने अपनी औसत मजदूरी मे कोई खास कमी होने दी। कल-कारखानेवाले चीखते-चिल्लाते रहे—लाखो आदमी बेकार बने रहे।

जो सोना अमेरिका जाता वह वहा तिजोरियो मे बन्द कर प्राय निष्क्रिय

उसमे माल मे भुगतान लेने को तैयार नही था। अमेरिका की तरह फ्रास भी साहूकार बन गया था, पर उसकी भी नीति यही हो रही थी कि कर्जदारो से जहा तक हो सके सोने में ही भुगतान लिया जाय, बल्कि उसने अपनी मुद्रा की कीमत घटाकर अपने निर्यात-व्यापार को उत्तेजन देना और दूसरो के क्षेत्र पर आक्रमण करना भी शुरु कर दिया था। प्राय सबकी नीति यही हो रही थी— अपना माल अधिक-से-अधिक बेचना, दूसरो का माल कम-से-कम खरीदना। ऐसी स्थिति मे वह तारतम्य कैसे हो सकता था जिस पर ससार का आर्थिक स्वास्थ्य निर्भर था ?

बला जब तक टाली जा सकती थी, टाली गई। अमेरिका और फ्रास ने दूसरे देशो को कर्ज दे-देकर परिस्थिति को सम्हालने की चेष्टा की। इससे प्राय दो साल—१९२६ से १९२८ तक—सुकाल-सा बना रहा। उत्पादन की वृद्धि हुई, सुख-शान्ति विराजमान् रही। पर यह अवस्था स्थायी नही थी। रोग जड से तो गया नही था, केवल उसका उभडना कुछ समय के लिए रुक गया था।

कुछ ही समय बाद न्यूयार्क के शेयर-बाजार मे सट्टा ऐसे जोर-शोर से चला कि अमेरिका के ब्याज उपजानेवालो के लिए, दूसरे देशो को देने के बजाय अपने घर के सटोरियो को कर्ज देना कही अधिक लाभदायक प्रतीत होने लगा। फ्रास ने भी दूसरे देशो को कर्ज देने से हाथ खीच लिया। इससे इन देशो की मुसीबत और भी बढ गई। वहा दाम तेजी मे गिरने लगे। उन देशो की दशा विशेष शोचनीय हो चली जो कच्चा माल—मसलन चीनी, रबर, कहवा—पैदा करनेवाले थे। १९२९ मे अमेरिका में शेयरो के सट्टे ने और भी जोर पकडा। इसका नतीजा यह हुआ कि बाहर से आकर्षित होकर बहुत कुछ पैसा अमेरिका पहुँचने लगा। दूसरे देश अपने-अपने बचाव के लिए तरह-तरह की तरकीबे करने लगे। इगलैण्ड ने अपनी बैंक-रेट अर्थात् ब्याज की दर ६॥ प्रतिशत कर दी। इसके फलस्वरूप वहा दाम और भी नीचे गिरे। आखिर अमेरिका भी मन्दी की हवा के झोके से कब तक बच सकता था ? वहा के शेयर-बाजार मे जो बेहद तेजी आ गई थी वह कुछ ही समय बाद जाती रही और प्रतिक्रियास्वरूप दामो का गिरना शुरु

उससे माल मे भुगतान लेने को तैयार नही था। अमेरिका की तरह फ्रास भी साहूकार बन गया था, पर उसकी भी नीति यही हो रही थी कि कर्जदारो से जहा तक हो सके सोने मे ही भुगतान लिया जाय, वल्कि उसने अपनी मुद्रा की कीमत घटाकर अपने निर्यात-व्यापार को उत्तेजन देना और दूसरो के क्षेत्र पर आक्रमण करना भी शुरू कर दिया था। प्राय सबकी नीति यही हो रही थी— अपना माल अधिक-से-अधिक बेचना, दूसरो का माल कम-से-कम खरीदना। ऐसी स्थिति मे वह तारतम्य कैसे हो सकता था जिस पर ससार का आर्थिक स्वास्थ्य निर्भर था ?

बला जब तक टाली जा सकती थी, टाली गई। अमेरिका और फ्रास ने दूसरे देशो को कर्ज दे-देकर परिस्थिति को सम्हालने की चेष्टा की। इससे प्राय. दो साल—१९२६ से १९२८ तक—सुकाल-सा बना रहा। उत्पादन की वृद्धि हुई, सुख-शान्ति विराजमान् रही। पर यह अवस्था स्थायी नही थी। रोग जड मे तो गया नही था, केवल उसका उभडना कुछ समय के लिए रुक गया था।

कुछ ही समय बाद न्यूयार्क के शेयर-बाजार मे सट्टा ऐसे जोर-शोर से चला कि अमेरिका के ब्याज उपजानेवालो के लिए, दूसरे देशो को देने के बजाय अपने घर के सटोरियो को कर्ज देना कही अधिक लाभदायक प्रतीत होने लगा। फ्रास ने भी दूसरे देशो को कर्ज देने से हाथ खीच लिया। इससे इन देशो की मुसीबत और भी बढ गई। वहा दाम तेजी मे गिरने लगे। उन देशो की दशा विशेष शोचनीय हो चली जो कच्चा माल—मसलन चीनी, रबर, कहवा—पैदा करनेवाले थे। १९२९ मे अमेरिका मे शेयरो के सट्टे ने और भी जोर पकडा। इसका नतीजा यह हुआ कि बाहर से आकर्षित होकर बहुत कुछ पैसा अमेरिका पहुँचने लगा। दूसरे देश अपने-अपने बचाव के लिए तरह-तरह की तरकीबे करने लगे। इगलैण्ड ने अपनी बैक-रेट अर्थात् ब्याज की दर ६॥ प्रतिशत कर दी। इसके फलस्वरूप वहा दाम और भी नीचे गिरे। आखिर अमेरिका भी मन्दी की हवा के झोके से कब तक बच सकता था ? वहा के शेयर-बाजार मे जो बेहद तेजी आ गई थी वह कुछ ही समय बाद जाती रही और प्रतिक्रियास्वरूप दामो का गिरना शुरू

यों तो यह मन्दी सब को तबाह करनेवाली थी, मगर खास कर उन देशो को, जो कृषि-प्रधान थे। कल-पुरजो से बननेवाली चीजो के दाम उस हद तक नहीं गिरे जिस हद तक खेती की उपज के। एक तो खेती-बारी करनेवाले, कल-कारखानेवालो की अपेक्षा, कही कम चुस्त-चालाक होते है। फिर, यह धधा ऐसा है कि उसकी नीति-रीति मे समयानुकूल परिवर्तन या तो होता ही नही, या थोडा-बहुत होता भी है तो बडी देर और मुश्किल से। अन्न की माग कम हो जाने पर भी किसान करे तो क्या? न तो वह अन्न उपजाना छोडकर दूसरे धधे मे लग सकता है, न वह कोई सगठन या समझौता करके उत्पादन को ही कम कर सकता है। इधर दुनिया मे काश्तकारी बहुत बढ गई है। अर्जेण्टाइन, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया—जैसे देशो मे खेती बहुत बडे पैमाने पर होने लगी है और अन्न का निर्यात उनके आर्थिक अस्तित्व का मुख्य आधार बन गया है। खेती का विस्तार ही नहीं बढा है, उसकी गहराई भी बढ गई है—अर्थात् अग्रगामी देशो मे खेती वैज्ञानिक ढग से होने लगी है और इस कारण भूमि की उत्पादन-शक्ति कही-से-कही बढ चली है। भारतवर्ष-जैसे देश मे लोगो को भरपेट मोटा अन्न भी नही मिलता, इसलिए यहा वह दिल्ली दूर है जहा पहुँच जाने पर अन्न की माग तृप्त हो सकती है। पर समृद्धिशाली देशो मे और बात है। वहा लोगो को भरपेट अन्न मिल रहा है। इसलिए अन्न की माग परिमित हो गई है, बल्कि भोजन मे अन्न का स्थान कुछ हद तक मास-मछली, फल-मूल इत्यादि ने ले लिया है, इसलिए अन्न की खपत कम हो गई है। अमेरिका का उदाहरण देते है। वहा १८८९ मे फी शख्स पीछे २४४ पौण्ड गेहूँ का आटा लगा था। पर १९२९ मे यह मात्रा घट कर १७५ पौण्ड रह गई थी। ऐसी स्थिति मे दाम गिरने के कारण, कृषि-जीवी लोगो को उन लोगो की अपेक्षा विशेष क्षतिग्रस्त होना पडा जो तैयार माल बनानेवाले थे या अपनी जीविका के लिए उसपर निर्भर थे। एक ओर अन्न की पैदावार बढ रही थी, दूसरी ओर उसकी खपत कम हो रही थी। भारतवर्ष—जैसे देशो मे अन्न की वास्तविक कमी थी, पर वहा के लोग इतने दीन-हीन थे कि ऐसी सस्ती मे भी उन्हे पेट भर अन्न मिलना असम्भव था।

शाली है। ऐसी स्थिति मे उन्होने जिस तरह अपनी रक्षा कर ली उस तरह दूसरो के लिए करना असम्भव था। चाय के व्यवसायियो और भारत-सरकार के सहयोग से उसका उत्पादन परिमित कर दिया गया, जिससे दामो का गिरना रुक गया और कुछ समय बाद दाम चढने भी लगे। १९१४ (=१००) के आधार पर १९२९ सितम्बर मे चाय के दाम १२९ थे, मई १९३३ मे ७४ और मई १९३४ मे १४७ थे। पर यह खुशनसीबी उन चीजो को हासिल नही हो सकती थी जिन्हे उपजाने मे यहा के किसानो का हाथ है और जिनपर उनका अस्तित्व निर्भर है। नीचे के सूचक अको से यह स्पष्ट है—

जुलाई १९१४=१००

	सितम्बर १९२९	मई १९३३	मई १९३४
चावल	१२४	६०	६५
गेहू	१३५	८९	७२
तेलहन	१७५	७२	९२
पाट	९०	५०	३७
कपास	१४६	८४	७१

दामो के गिरने के कारण किसानो की आय कही-से-कही कम हो गई। नीचे दिए गए अको से इसपर प्रकाश पडता है। तालिका मे, किसानो को मिलनेवाले दामो के आधार पर, यह दिखाया गया है कि प्रत्येक प्रान्त की खेती की खास पैदावार की कीमत पर मन्दी का क्या असर पडा—

(लाख रुपए)

	१९२८—२९	१९३२—३३
मद्रास	१,८०,७८	९९,३३
बम्बई	१,२०,५२	८३,८६
बगाल	२,३२,५९	९०,५४
सयुक्त प्रान्त	१,४०,५२	९१,०१
पजाब	७६,७८	४८,५३

मन्दी के कारण दाम कहा तक गिरे यह नीचे के सूचक अको से जाहिर होगा —

(थोक दाम)

	कलकत्ता जुलाई १९१४ = १००	इगलैण्ड १९१३ = १००
१९२९ सितम्बर	१४३	१३५ ८
१९३० ,,	१११	११५ ५
१९३१ ,,	९१	९९ २
१९३२ ,,	९१	१०२.?
१९३३ ,,	८८	१०३ ०

पर जिन वस्तुओ के दाम ऊपर लिए गए है उनमे निर्यात और आयात दोनो ही शामिल है। अगर इनका पृथक्करण किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि जिस हद तक निर्यात (अर्थात् यहा से बाहर जानेवाली) वस्तुओ के दाम गिरे उस हद तक आयात (अर्थात् बाहर से यहा आनेवाली) वस्तुओ के नही। इन सूचक अको को देखिए —

कलकत्ता (१९१४ = १००)

	निर्यात वस्तुओ के दाम	आयात वस्तुओ के दाम
१९२९ सितम्बर	१३३	१५०
१९३१ दिसम्बर	८१	१२४
१९३२ ,,	६९	११५
१९३३ ,,	७३	११२

पर इन अको से भी परिस्थिति की भीषणता का पूरा पता नही चलता। निर्यात वस्तुओ मे कुछ ऐसी है जिनके उत्पादन का व्यवसाय विशेष रूप से सगठित है। मन्दी की मार इनपर वैसी नही पडी जैसी साधारण कृषि-व्यवसाय पर। चाय का उदाहरण देते है। यो तो इस देश की पैदावार मे यह भी शामिल है और करोडो रुपए की चाय यहा से बाहर जाती है, पर यह व्यवसाय प्रधानत विदेशियो के हाथ मे है और चाय उपजानेवाले धान या पाट उपजानेवालो से कही अधिक शिक्षित, सगठित और शक्ति-

शाली है। ऐसी स्थिति मे उन्होंने जिस तरह अपनी रक्षा कर ली उस तरह दूसरों के लिए करना असम्भव था। चाय के व्यवसायियो और भारत-सरकार के सहयोग से उसका उत्पादन परिमित कर दिया गया, जिससे दामो का गिरना रुक गया और कुछ समय वाद दाम चढने भी लगे। १९१४ (=१००) के आधार पर १९२९ सितम्बर मे चाय के दाम १२९ थे, मई १९३३ मे ७४ और मई १९३४ मे १८७ थे। पर यह खुशनसीबी उन चीजो को हासिल नही हो सकती थी जिन्हे उपजाने मे यहा के किसानो का हाथ है और जिनपर उनका अस्तित्व निर्भर है। नीचे के सूचक अको मे यह स्पष्ट है—

जुलाई १९१४=१००

	सितम्बर १९२९	मई १९३३	मई १९३४
चावल	१२४	६०	६५
गेहू	१३५	८९	७२
तेलहन	१७५	७२	९२
पाट	९०	५०	३७
कपास	१८६	८४	७१

दामो के गिरने के कारण किसानो की आय कही-से-कही कम हो गई। नीचे दिए गए अको से इसपर प्रकाश पडता है। तालिका मे, किसानो को मिलनेवाले दामो के आधार पर, यह दिखाया गया है कि प्रत्येक प्रान्त की खेती की खास पैदावार की कीमत पर मन्दी का क्या असर पडा—

(लाख रुपए)

	१९२८—२९	१९३२—३३
मद्रास	१,८०,७८	९९,३३
बम्बई	१,२०,५२	८३,८६
बगाल	२,३२,५९	९०,५४
सयुक्त प्रान्त	१,४०,५२	९१,०१
पजाब	,७६,७८	४८,५३

९

स्टर्लिंग से गंठबन्धन

पाठको को स्मरण होगा कि हिल्टन यग कमीशन ने रुपए को सोने का प्रतीक बनाने का प्रस्ताव किया था। सरकारी विधान ने रुपए को सोने और स्टर्लिंग का प्रतीक बना दिया। १९२७ मे जो ऐक्ट पास हुआ उसमे यह व्यवस्था थी कि सरकार सोने के बदले रुपया दे, और रुपए के बदले सोना अथवा स्टर्लिंग। व्यवहार मे वह सोने के बदले रुपए देती थी, और रुपए के बदले स्टर्लिंग। इगलैण्ड मे उन दिनो स्टर्लिंग के नोट सोने के प्रतीक थे। इसलिए स्टर्लिंग के रास्ते भी रुपया सोने पर ही पहुच जाता था।

१८९३ मे चादी की टकसाल बन्द करने के समय कहा गया था कि रुपया सोने का प्रतीक होगा। हमको वचन दिया गया था कि यहा विशुद्ध गोल्ड स्टैण्डर्ड (सुवर्ण-मान) की स्थापना होगी। पर गोल्ड स्टैण्डर्ड की जगह गोल्ड एक्स्चेज स्टैण्डर्ड स्थापित किया गया। हिल्टन यग कमीशन की सिफारिश हुई कि गोल्ड एक्स्चेज की जगह गोल्ड बुलियन (धात्वात्मक) स्टैण्डर्ड की प्रतिष्ठा की जाय, पर जो विधान बना उसने इस देश को कुछ और ही स्टैण्डर्ड दिया। यह एक गगा-जमुनी चीज थी जिसमे सोने से स्टर्लिंग की प्रधानता थी और स्टर्लिंग सोने का प्रतीक था, इसलिए कहना चाहिए कि यहा वही पुराना गोल्ड एक्स्चेज स्टैण्डर्ड, कुछ हेरफेर के साथ, काम कर रहा था। हा, लक्ष्य यही था कि धातु के रूप मे ही सही, यहा विशुद्ध गोल्ड स्टैण्डर्ड की स्थापना की जाय।

१९२७ मे यहा मुद्रा-सबधी जो व्यवस्था की गई वह १ अप्रैल (१९२७) से १९ सितम्बर १९३१ तक चली। २० सितम्बर को यह घोषित किया गया कि इगलैड मे मूल्य का मान अब सोना न रह गया था—अर्थात् वहा से गोल्ड स्टैण्डर्ड उठ चुका था। २१ सितम्बर को यहा बडे लाट ने एक

फर्मान निकाल कर रुपयो के बदले सरकार के सोना या स्टर्लिंग देने की व्यवस्था उठा दी। इसका अर्थ यही हो सकता था कि सरकार रुपए को न सोने से सम्बद्ध रखना चाहती थी, न स्टर्लिंग से—वह रुपए के मूल्य को हर तरह के बन्धन से मुक्त कर देना चाहती थी। पर उसी दिन लन्दन मे भारत-सचिव ने यह ऐलान किया कि रुपए का मूल्य १८ पेंस स्टर्लिंग रहेगा। श्रीयुत घनश्यामदास जी बिडला, जो उस समय लन्दन मे थे, अपनी एक पुस्तक* मे लिखते है—"इंगलैण्ड ने आखिर गोल्ड स्टैण्डर्ड छोड दिया। भारतवर्ष सोने से तो हट गया पर स्टर्लिंग से वह अभी तक बंधा हुआ है। शुस्टर ने शिमले मे कुछ कहा, और होर ने फेडरल कमेटी मे कुछ। जान-बूझ कर यहावालो ने पीछे बेईमानी की है।"

इस पुस्तक के पूर्वार्द्ध मे लिखा है कि प्रतीक और स्वयसिद्ध मुद्रा का तलाक हो जाने पर "प्रतीक की कीमत कटी पतग की तरह हो जाती है और जैसे हवा के झोको के बल पर पतग गिरती है या उठती है उसी तरह प्रतीक की कीमत भी चलन की फुलावट की कमी-बेशी के आधार पर झिलोरे खाती रहती है।" मान लीजिए कि रुपए का तलाक जहा सोने से हो गया था वहा स्टर्लिंग से भी हो जाता। उस हालत मे रुपए की गति उसी कटी पतग-सी होती। उसका विनिमय-मूल्य इस बात पर निर्भर करता कि चलन मे उसकी मिकदार क्या थी—उसके लिए माग कैसी थी—यहा इस देश मे वह कितनी क्रय-शक्ति अथवा मूल्य रखता था। कटी पतग पर आदमी का कोई बस नही रह जाता, क्योकि हवा आदमी का हुक्म माननेवाली नही है, पर चलन मे फुलावट या गिरावट करके—या यो कहिए कि उसका विस्तार या सकोच करके—रुपए की कीमत घटाई-बढाई जा सकती थी। सोने या स्टर्लिंग का प्रतीक न रहने पर भी रुपए की अपनी कीमत हो सकती थी और उस कीमत का रुपए की चादी की कीमत से ऊपर रहना भी सभव था।

पर जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अधिकारियो ने एक बार रुपए को स्वतत्र कर फिर कुछ ही घटो बाद अपना विचार बदल दिया और उसका

---

* 'डायरी के कुछ पन्ने"

स्टर्लिंग से गठबन्धन कर दिया। २४ सितम्बर को बडे लाट ने एक नया फर्मान निकाल कर २१ सितम्बर के फर्मान को मन्सूख कर दिया—कानूनन परिस्थिति फिर वही हो चली जो २१ सितम्बर से पहले थी। हा, रुपए के बदले स्टर्लिंग मिलना पहले से जरूर मुश्किल कर दिया गया। अब स्टर्लिंग सर्वसाधारण को नही, बल्कि कुछ खास बैको को ही मिल सकता था। रेट वही पुरानी रही—एक रुपए के १७$\frac{2}{3}\frac{5}{2}$ पेंस। इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई कि किस प्रकार का देना चुकाने के लिए स्टर्लिंग मिल सकता था। रुपया अब स्टर्लिंग का प्रतीक हो गया, इसलिए सोने मे उसकी कीमत वही हो सकती थी जो स्टर्लिंग की। अगस्त १९३१ के अन्त मे यहा सोने का दाम २१।।।~)। तोला था—यह दिसम्बर १९३१ मे २९=) हो चला था। आने वाले दिनो मे यह दाम और भी ऊचा होने वाला था। रुपया अब स्टर्लिंग से बधा हुआ था, इसलिए सोने के मुकाबले जिस हद तक स्टर्लिंग गिरता उसी हद तक रुपए को भी गिरना पडता। उसकी अपनी कोई हस्ती नही थी।

भारतवर्ष मे इस समय लोगो की आर्थिक अवस्था शोचनीय थी। इधर सरकार की जो मुद्रा-नीति चली आ रही थी उसके भयकर फल अब प्रत्यक्ष होने लगे थे। मन्दी के कारण दाम यो ही नीचे थे, पर इस देश मे ऊँचे एक्सचेज ने दामो को और भी नीचे गिरा दिया था और गाव मे रुपए का भीषण दुष्काल उपस्थित कर दिया था। ऐसे समय मे जब सोने की कीमत (रुपयो मे) ऊँची हो चली तब लोगो को इसका सहारा-सा मिल गया और वे सुनारो के हाथ अपना जेवर इत्यादि बेच कर अपना काम चलाने लगे। पर यह सोना उन सुनारो के पास कब तक टिक सकता था? थोडे ही समय मे इस देश से सोना विदेश जाने लगा और कुछ ही महीनो के अन्दर प्राय ५० करोड का सोना विदेश चला गया। इस सोने के बदले मिलनेवाले स्टर्लिंग की बहुतायत हो जाने मे स्टर्लिंग की बिक्री पर किसी प्रकार का नियन्त्रण रखना अब अनावश्यक हो गया और ३१ जनवरी १९३२ के बाद उसकी बिक्री बे-रोक-टोक होने लगी।

रुपए का स्टर्लिंग से गठबन्धन भारत-सचिव के दबाव से किया गया।

लन्दन में उस समय गोलमेज परिषद् के सिलसिले में जो थोड़े से भारतीय नेता या प्रतिनिधि मौजूद थे उन्होंने वहा सरकारी नीति का घोर विरोध किया और भारत-सचिव को महात्मा गाधी के सन्तोष के लिए इस विषय पर कुछ कहने-सुनने को मजबूर किया।

श्री बिडला जी अपनी "डायरी"* में प्रसगवश लिखते हैं —

"आज (६ अक्तूबर १९३१) शाम को इण्डिया ऑफिस में सर हेनरी स्ट्रॉकोश के साथ दगल हुआ। सभापति का आसन पहले तो भारत-सचिव सर सैमुएल होर ने ग्रहण किया, पर मन्त्रिमण्डल की मीटिंग थी, इसलिए सर रेजिनल्ड मैण्ट को अपना पद देकर कुछ ही मिनट बाद चलता बना। और बहुत से लोग उपस्थित थे—गाधीजी, सर पुरुषोत्तमदास, मि० जिन्ना, सर मानिकजी, सर फिरोजशाह सेठना, के० टी० शाह, प्रो० जोशी, रगास्वामी अयगार इत्यादि। गाधीजी प्राय ७ बजे कार्यवश उठकर चले गए। ५॥ बजे से कार्रवाई आरम्भ हुई। सरकार की ओर से सर हेनरी स्ट्रॉकोश ने वक्ता का काम किया, और अपनी ओर से मैंने। ब्लैकेट भी मौजूद था, पर कुछ बोला नहीं।

"स्ट्रॉकोश ने पहले तो ससार की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराया, फिर भारतवर्ष की बाते करने लगा। उसकी सबसे बडी दलील यही थी कि अगर एक्सचेंज १–६ स्टर्लिंग पर न बाध दिया गया होता तो न जाने लुढकते-लुढकते कहा जाकर दम लेता और न जाने सरकार को कहा तक नोट छपाकर अपना काम चलाना पड़ता। मैंने जब पूछा कि आखिर ठहराने के लिए तुम्हारे पास साधन क्या है ? तब उससे कोई उत्तर न बन पडा। उसने अधिकाश समय मेरी उन दलीलों का जवाब देने मे लगाया जो मैंने Monetary Reform (मुद्रा-सम्बन्धी सुधार) नाम की पुस्तिका मे पेश की है। मैंने कहा कि मैं बात-बात पर बहस करने को तैयार हूँ, पर मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि उस पुस्तिका मे मैंने जो मत प्रकट किया है वह मेरा अपना है, भारतीय व्यापारीवर्ग का नहीं। यहा जो लोग आए है

---

* "डायरी के कुछ पन्ने", पृष्ठ ६७ और ६९।

वे भारत-सरकार की नीति के विषय में कुछ कहने उस विषय को छोड कर मेरी * पुस्तिका की समा उनके साथ अन्याय करना है। फिर भी स्ट्रॉकोश ने अ.

"खैर, अच्छी वहस हुई। मैंने लिखा था कि ... वास्तविक उद्देश अंग्रेज सिविलियन और व्यवसायी को। यह वात इन लोगो को खूब चुभी और स्ट्रॉकोश कहने ल प्रमाणित कर सकते हो? सर पुरुषोत्तमदास ने तो लम्बा-चौडा है और इसे सुनने-सुनाने के लिए सम पीने का वक्त हो रहा था, लोगो को अपने-अपने काम इसलिए चर्चा स्थगित की गई।

---

*इस पुस्तिका का विषय है दामो की घटा-बढ़ी को क्रयशक्ति को वरावर समान रखने की वाछनीयता और

रुपए के दो प्रकार के मूल्य हैं—एक तो देश के भी . देश के वाहर का। देश के भीतर के मूल्य का अर्थ है इसकी सम्वन्धी क्रय-शक्ति। देश के वाहर के मूल्य का अर्थ है जैसे पौंड, स्टर्लिंग से विनिमय की दर या भाव। अव तक का लक्ष्य इसके वाहरी मूल्य को स्थिर रखने की ओर रहा है या १८ पेंस, जव जो ठीक जचा इसका मूल्य कर दिया और वहीं टिका दिया। पर इसके वाहरी मूल्य के प्रश्न से कहीं अधि पूर्ण प्रश्न है इसके देशान्तर्गत मूल्य का। यह मूल्य अब तक अ घटता-चढता रहा है—जब रुपए का मूल्य घटा तब दाम चढ १८९६ और १९१४ के बीच) और जव रुपए का मूल्य बढ़ा गिर गए (जैसे कुछ दिन पहले की मन्दी के जमाने में)। लेखक घटा-वढी को रोकने की वाछनीयता पर भारतवर्ष की दृष्टि से। किया है और दिखाया है कि इस विषय में Irving Fisher विद्वानो के सिद्धान्तो को, हेर-फेर के साथ, कैसे व्यावहारिक रूप दिया सकता है। इस सम्वन्ध में, मीमासा-भाग का अन्तिम अध्याय द्रष्टव्य

"मुझे ऐसा जान पड़ा कि स्ट्रॉकोश अपने विषय का बड़ा पंडित है, पर बेईमान नहीं है। इसलिए सम्भव है या तो इसकी चर्चा ही न हो, या ब्लैकेट* जैसे आदमी को सरकारी पक्ष के समर्थन का काम सौंपा जाय। स्ट्रॉकोश अच्छी तरह जानता है कि सरकार की ओर से पेश करने लायक कोई जोरदार दलील नहीं है। वह करे तो क्या ? बोला कि तुमने बार-बार कहा है कि हमारा सोना उड़ा दिया। वास्तव में सरकार ने उड़ाया नहीं; हिन्दुस्तान की जो जिम्मेदारी थी उसे पूरा किया। मैंने पूछा, इंगलैण्ड की भी तो जिम्मेदारी थी— यहा क्या किया ? उसने कहा— मगर इंगलैण्ड हिन्दुस्तान-जैसा दूसरो का देनदार नहीं है। मैंने उत्तर दिया— मैं इसे मानता हूं, पर दो बातें हैं। इंगलैण्ड वैसे देनदार न हो, पर यहां एक्सपोर्ट से इम्पोर्ट ज्यादा है। हमारा देश देनदार है, पर वह इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट ज्यादा करता है, यह तुम्हें न भूलना चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान में रखने की बात है कि हम अपने उद्योग-धन्धो की उन्नति कर, अपनी उत्पादन-शक्ति बढ़ा कर ही अपना देना चुका सकते हैं। फिर

---

* वास्तव में ब्लैकेट के इस विषय पर अपने स्वतंत्र विचार थे जो उसने अपनी Planned Money (व्यवस्थित मुद्रा) नामक पुस्तक में प्रकट किए हैं। पुस्तक-लेखक के विचार में मन्दी के कारण भारतवर्ष-जैसे देशो के सामने बड़ी गहन समस्या उपस्थित हो गई थी और साधारणतः सबकी, पर विशेषत उनकी दृष्टि से, दामो का उठना बहुत जरूरी था। वह लिखता है :—

"भारतवर्ष की परिस्थिति इस देश से भी खराब है। वहा की पैदावार के दाम गिर जाने से, कर्ज का बोझ—चाहे कर्ज देश के भीतर लिया गया हो चाहे बाहर—बेहद भारी हो चला है। भारतवर्ष अधिक काल तक उस बोझ को लेकर न चल सकेगा। अगर दाम न बढ़े तो कर्ज, लगान, मजूरी, किराया, महसूल-जैसी निर्दिष्ट रकमो में कमी किए बिना काम चलने का नहीं। पर जो भारतवर्ष की स्थिति से परिचित हैं उन्हें इस प्रकार की कमी होने की संभावना हास्यास्पद जचेगी। सबकी

जुटाना पडता। समस्या हल करने के लिए उसे नोट छापने पडते। पर इसका नतीजा यह होता कि दाम और भी बढते—अर्थात् रुपए की कीमत और भी गिरती, और ज्यो-ज्यो दवा की जाती त्यो-त्यो मर्ज वढता ही जाता। इसलिए भारत-सरकार को यहा से यही सलाह देना मुनासिव समझा गया कि वह रुपए को स्टर्लिंग से सम्वद्ध कर दे। पूछा जा सकता है कि जब इगलैण्ड ने स्टर्लिंग को स्वतन्त्र छोड दिया है तब भारतवर्ष रुपए को क्यो न स्वतन्त्र छोड दे? इसका उत्तर यह है कि इगलैण्ड, भारतवर्ष की तरह देनदार मुल्क नही। वह पावनेदार है—इसलिए यहा स्टर्लिंग को स्वतन्त्र छोड देने से वह खतरा नही जो भारतवर्ष में रुपए को स्वतन्त्र छोड देने से हो सकता है। भारतवर्ष ने इगलैण्ड से बहुत कुछ कर्ज ले रखा है, उसे हर साल यहा करीब ३॥ करोड स्टर्लिंग खर्च करना पडता है, उसके विदेशी व्यापार का वहुत वडा अश ब्रिटिश साम्राज्य के साथ है—ऐसी अवस्था मे, उसके हित की दृष्टि से, स्टर्लिंग से सम्वद्ध रहना ही उसके लिए वाछनीय है।"

श्रीघनश्यामदास विडला —

"यह सच है कि भारतवर्ष के लिए रुपए को सोने से सम्वद्ध रखना असम्भव था। आखिर सम्वद्ध रखने का अर्थ तो यही है कि अगर कोई रुपए के बदले सोना मागे तो सरकार उसे दे सके। पर यहा तो सरकार अपना सोना खो चुकी थी—सोने मे रुपए की कीमत ऊँची रखने की नीति को सफल बनाने के लिए वह रिजर्व के सोने से ही हाथ धो चुकी थी–फिर जब सोना पास न हो तब रुपए को उससे सम्वद्ध रखने का अर्थ ही क्या? पर हम लोगो का कहना है कि जब रुपया सोने का प्रतीक न रहा तव उसे स्टर्लिंग का भी प्रतीक न रहना चाहिए था। आज रिजर्व मे सरकार के पास स्टर्लिंग भी कहा है? जहा किसी समय प्राय ६८ करोड रुपए का सोना (या स्टर्लिंग) था वहा इस समय सिर्फ ४ या ५ करोड का सोना वच गया है, और स्टर्लिंग नही के बराबर है। फलत १८ पेस स्टर्लिंग पर रुपए का विनिमय-मूल्य टिकाने के लिए सरकार को या तो रुपए गला-गला कर वाजार में चादी वेचनी पडेगी—जिससे चादी वेहद सस्ती हो

जायगी—या इंगलैण्ड में कर्ज लेना पड़ेगा, जिससे हमारी देनदारी और भी बढ़ जायगी। सर हेनरी स्ट्रॉकोश को भय है कि अगर रुपया स्वतन्त्र छोड़ दिया गया तो उसकी कीमत गिरते-गिरते उसकी चादी की कीमत (प्राय ६ या ७ पेंस) के आस-पास पहुँच जायगी। मैं नही समझता कि रुपए की कीमत यहा तक गिर सकती है, पर अगर रुपए की असली कीमत सचमुच ६ पेंस है तो कृत्रिम रीति से वह १८ पेंस पर कब तक टिकाई जा सकती है? लोग सरकार को रुपए देना शुरू कर देंगे और बदले में स्टर्लिंग मागेंगे। सरकार कुछ हद तक यह माग पूरी करेगी और फिर कह देगी कि "अब हम और स्टर्लिंग नहीं दे सकते।" पर तब तक हमारा बचा-खुचा स्टर्लिंग-धन स्वाहा हो जायगा और हमारे नोट बिना किसी प्रकार की पुश्ती के रह जायगे। इंगलैण्ड के पास १६०,०००,००० पौण्ड स्टर्लिंग सोना था। ज्योंही यह घट कर १३३,०००,००० पौण्ड स्टर्लिंग हो चला, इंगलैण्ड ने सुवर्णमान—गोल्ड स्टैण्डर्ड का परित्याग कर दिया और स्टर्लिंग को बिलकुल स्वतन्त्र कर दिया। पर भारतवर्ष में सर्वस्व खोकर भी सरकार उसका अनुकरण करना अनुचित समझती है और रुपए का स्टर्लिंग से गठबन्धन कर देती है—और कहा जाता है कि अगर रुपया इस प्रकार आबद्ध न रहा तो भारतवर्ष रसातल को पहुँच जायगा! सर हेनरी स्ट्रॉकोश ने भारतवर्ष की देनदारी का जिक्र करते हुए फरमाया कि इंगलैण्ड के लिए जो वस्तु अमृत है वही भारतवर्ष के लिए विष हो सकती है। हम भारत-वासी इस विषय में उनके कथन की सत्यता स्वीकार नही कर सकते। भारत-वर्ष देनदार है तो उसकी आर्थिक नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे उसकी देनदारी घटे। देनदारी तभी घट सकती है जब उसकी उत्पादन-शक्ति और उसका निर्यात-व्यापार बढ़े। पर इसके लिए यह आवश्यक है कि वहा चीजों के दाम ऊँचे हो—और दाम उठाने को, मौजूदा हालत में, एकमात्र उपाय है एक्सचेंज को गिरा देना। कहा गया है कि रुपया जब गिरने लगेगा तब अपनी चादी की कीमत के पास पहुँच कर ही रुकेगा। इस सम्बन्ध में मेरे दो निवेदन हैं। एक तो यह कि भारतवर्ष देनदार भले ही हो पर साधारणत वह इम्पोर्ट (आयात) से एक्सपोर्ट (निर्यात)

जुटाना पडता। समस्या हल करने के लिए उसे नोट छापने पडते। पर इसका नतीजा यह होता कि दाम और भी बढते—अर्थात् रुपए की कीमत और भी गिरती, और ज्यो-ज्यो दवा की जाती त्यो-त्यो मर्ज बढता ही जाता। इसलिए भारत-सरकार को यहा से यही सलाह देना मुनासिव समझा गया कि वह रुपए को स्टर्लिग से सम्बद्ध कर दे। पूछा जा सकता है कि जव इगलैण्ड ने स्टर्लिग को स्वतन्त्र छोड दिया है तव भारतवर्ष रुपए को क्यो न स्वतन्त्र छोड दे? इसका उत्तर यह है कि इगलैण्ड, भारतवर्ष की तरह देनदार मुल्क नही। वह पावनेदार है—इसलिए यहा स्टर्लिग को स्वतन्त्र छोड देने से वह खतरा नही जो भारतवर्ष में रुपए को स्वतन्त्र छोड देने से हो सकता है। भारतवर्ष ने इगलैण्ड से वहुत कुछ कर्ज ले रखा है, उसे हर साल यहा करीव ३॥ करोड स्टर्लिग खर्च करना पडता है, उसके विदेशी व्यापार का वहुत वडा अश ब्रिटिश साम्राज्य के साथ है—ऐसी अवस्था में, उसके हित की दृष्टि से, स्टर्लिग से सम्वद्ध रहना ही उसके लिए वाछनीय है।"

श्रीघनश्यामदास विडला —

"यह सच है कि भारतवर्ष के लिए रुपए को सोने से सम्वद्ध रखना असम्भव था। आखिर सम्वद्ध रखने का अर्थ तो यही है कि अगर कोई रुपए के बदले सोना मागे तो सरकार उसे दे सके। पर यहा तो सरकार अपना सोना खो चुकी थी—सोने मे रुपए की कीमत ऊँची रखने की नीति को सफल वनाने के लिए वह रिजर्व के सोने से ही हाथ धो चुकी थी—फिर जव सोना पास न हो तव रुपए को उससे सम्वद्ध रखने का अर्थ ही क्या? पर हम लोगो का कहना है कि जव रुपया सोने का प्रतीक न रहा तव उसे स्टर्लिग का भी प्रतीक न रहना चाहिए था। आज रिजर्व मे सरकार के पास स्टर्लिग भी कहा है? जहा किसी समय प्राय ६८ करोड रुपए का सोना (या स्टर्लिग) था वहा इस समय सिर्फ ४ या ५ करोड का सोना वच गया है, और स्टर्लिग नही के वरावर है। फलत १८ पेंस स्टर्लिग पर रुपए का विनिमय-मूल्य टिकाने के लिए सरकार को या तो रुपए गला-गला कर वाजार में चादी वेचनी पडेगी—जिससे चादी वेहद सस्ती हो

जायगी—या इंगलैण्ड में कर्ज लेना पड़ेगा, जिससे हमारी देनदारी और भी बढ़ जायगी। सर हेनरी स्ट्रॉकोश को भय है कि अगर रुपया स्वतन्त्र छोड़ दिया गया तो उसकी कीमत गिरते-गिरते उसकी चादी की कीमत (प्राय ६ या ७ पेंस) के आस-पास पहुँच जायगी। मै नही समझता कि रुपए की कीमत यहा तक गिर सकती है, पर अगर रुपए की असली कीमत सचमुच ६ पेंस है तो कृत्रिम रीति से वह १८ पेंस पर कब तक टिकाई जा सकती है ? लोग सरकार को रुपए देना शुरू कर देगे और बदले मे स्टर्लिंग मागेगे। सरकार कुछ हद तक यह माग पूरी करेगी और फिर कह देगी कि "अब हम और स्टर्लिंग नही दे सकते।" पर तब तक हमारा बचा-खुचा स्टर्लिंग-धन स्वाहा हो जायगा और हमारे नोट बिना किसी प्रकार की पुश्ती के रह जायगे। इंगलैण्ड के पास १६०,०००,००० पौण्ड स्टर्लिंग सोना था। ज्योंही यह घट कर १३३,०००,००० पौण्ड स्टर्लिंग हो चला, इंगलैण्ड ने सुवर्णमान—गोल्ड स्टैण्डर्ड का परित्याग कर दिया और स्टर्लिंग को बिलकुल स्वतन्त्र कर दिया। पर भारतवर्ष मे सर्वस्व खोकर भी सरकार उसका अनुकरण करना अनुचित समझती है और रुपए का स्टर्लिंग से गठबन्धन कर देती है—और कहा जाता है कि अगर रुपया इस प्रकार आबद्ध न रहा तो भारतवर्ष रसातल को पहुँच जायगा ! सर हेनरी स्ट्रॉकोश ने भारतवर्ष की देनदारी का जिक्र करते हुए फरमाया कि इंगलैण्ड के लिए जो वस्तु अमृत है वही भारतवर्ष के लिए विष हो सकती है। हम भारतवासी इस विषय मे उनके कथन की सत्यता स्वीकार नही कर सकते। भारतवर्ष देनदार है तो उसकी आर्थिक नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे उसकी देनदारी घटे। देनदारी तभी घट सकती है जब उसकी उत्पादन-शक्ति और उसका निर्यात-व्यापार बढ़े। पर इसके लिए यह आवश्यक है कि वहा चीजो के दाम ऊँचे हो—और दाम उठाने का, मौजूदा हालत मे, एकमात्र उपाय है एक्सचेंज को गिरा देना। कहा गया है कि रुपया जब गिरने लगेगा तब अपनी चादी की कीमत के पास पहुँच कर ही रुकेगा। इस सम्बन्ध मे मेरे दो निवेदन है। एक तो यह कि भारतवर्ष देनदार भले ही हो पर साधारणत वह इम्पोर्ट (आयात) से एक्सपोर्ट (निर्यात)

ज्यादा करता है। दूसरा यह कि चलन में जितने सिक्के या नोट है सब-के-सब, विनिमय के लिए, कभी उपस्थित नही किए जा सकते। अगर रुपए के सिक्को की तादाद दो अरब मान ली जाय और नोटो की डेढ अरब, तो सब मिला कर साढे तीन अरब हुए। इनमे से अगर डेढ अरब भी स्टर्लिंग से विनिमय के लिए उपस्थित किए जाय तो देश मे रुपए की बेहद तगी हो जायगी—जिसका अर्थ यह हुआ कि रुपए की कीमत बढ जायगी। इन दो कारणो से, मैं नही समझता कि किसी भी हालत मे रुपया ११ पेस या १२ पेस (सोना) से नीचे गिर सकता है। पर दाम बढाने के लिए—जिससे किसानो और दूसरे उत्पादको का भला हो और जो मन्दी चली आ रही है उससे उनका दम घुटने न पाए—रुपए की कीमत का गिरना जरूरी है। कहा गया है कि दामो की स्थिरता वाछनीय है। पर कौन-से दामो की ? इतना तो सभी स्वीकार करते है कि आज के दाम बहुत नीचे है और अगर हम इन्हे ज्यो-के-त्यो रहने देते है तो हम करोडो किसानो के हित की हत्या करते है। भारतवर्ष मे न्याय का तकाजा यह है कि दाम १०० से उठा कर १५० कर दिए जाय—और उस हद तक एक्सचेंज को गिरने दिया जाय। इसीलिए हम लोगो का कहना है कि रुपए को स्टर्लिंग मे बाध कर, और दामो का उस हद तक उठना असम्भव कर, सरकार ने हमारे देश के साथ घोर अन्याय किया है।"

सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास —

"रुपए को स्टर्लिंग का प्रतीक कर दिया गया, पर केवल इसी अर्थ मे कि उसकी कीमत १८ पेस से नीचे नही जा सकती। ऊपर के लिए कोई रुकावट नही है, क्योकि सरकार ने यह जिम्मेवारी नही ली है कि १८ पेस स्टर्लिंग बेचनेवाले को वह एक रुपया दे दे। १९२७ वाले विधान मे सरकार पर यह जिम्मेवारी रखी गई थी कि अगर कोई सोना बेचना चाहे तो सरकार उसे १८ पेस = १ रुपए की दर से खरीदने को बाध्य होगी। उस परिस्थिति मे कोई अन्तर नही पडा है, जिसका अर्थ यह होता है कि अगर कोई सरकार के हाथ अपना सोना बेचना चाहता है तो उसे उसी पुराने भाव से बेचना पडेगा। पुराना भाव था प्राय २१॥।-) तोला। आज का बाजार-

भाव २५) से भी अधिक है। इस समय बम्बई में गावों से काफी सोना आ रहा है। लोग इतने विपन्न है कि उनके पास जो कुछ सोना है उसे बेचकर अपना काम चला रहे हैं। पर सरकार इस सोने का दाम इतना कम देने को तैयार है कि व्यापारी इसे उसके पास नही ले जा सकते। लेहाजा सारा सोना भारतवर्ष से बाहर जा रहा है। सरकार की इस नीति से जनता का असन्तुष्ट होना स्वाभाविक है। कहा जाता है कि भारतवर्ष ऋणी देश है, उसने इंगलैण्ड मे बहुत कुछ कर्ज ले रखा है, इसलिए एक्सचेंज गिराना उसके लिए हितकर नही हो सकता। पर ऑस्ट्रेलिया का उदाहरण हम लोगो के सामने है। भारतवर्ष की अपेक्षा बडा ऋणी होते हुए भी उसने अपना एक्सचेंज गिरा दिया। किसानो की दृष्टि मे भारतवर्ष की दशा ऑस्ट्रेलिया से कही खराब है। गेहूँ का १।-) मन बिकना एक ऐसी बात है जिसे पिछले ८० साल के इतिहास मे हम अभूतपूर्व कह सकते है। सरकार को इसमे क्या आपत्ति हो सकती है कि बतौर एक प्रयोग के, कुछ महीनो के लिए ही सही, रुपए को इस बन्धन से मुक्त कर दे और देखे कि इससे दाम चढते है या नही और किसानो का कुछ भला होता है या नही? इस समय तो उन्हे बाजार या मडी मे जो दाम मिलता है वह बैलगाडी का भाडा चुकाने के लिए भी काफी नही होता। एक घटना की खुद मुझे जानकारी है, जहा किसान बाजार मे गन्ना बेचने लाए और दाम सुनकर इतने निराश हुए कि गन्ने को बेचने के बजाय गायो और भैसो को समर्पित कर अपने घर लौट गए।"

पर इस शास्त्रार्थ मे परिस्थिति मे तनिक भी अन्तर न पडा और रुपए-स्टर्लिंग का गठबन्धन ज्यो-का-त्यो बना रहा।

यह तो हुई लन्दन की बात। यहा भारतवर्ष मे उस समय व्यवस्थापिका परिषद् का अधिवेशन हो रहा था। वहा सदस्यो ने २१ सितम्बर को एक बात सुनी, २२ को दूसरी। भारत-सचिव द्वारा किए जानेवाले हस्तक्षेप और स्टर्लिंग-गठबन्धन का प्रतिवाद करने के लिए सर कावसजी जहागीर ने परिषद् मे "काम स्थगित करानेवाला" प्रस्ताव लाना चाहा, पर बडे लाट ने एक खास आदेश से इसे रोक दिया। २६ सितम्बर

को मि० (अव सर) षण्मुखम् चेट्टी ने निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया —

"चूकि इस बात का डर है कि मौजूदा हालत मे रुपए का स्टर्लिंग से गठबन्धन कर देना भारत के लिए अत्यन्त अहितकर होगा,

"और चूकि भारत-सरकार के रुपए का विनिमय-मूल्य १८ पेंस रखने के कारण इस देश की कृषि और उद्योग-धन्धो की गहरी हानि हुई है और करेन्सी-कोष मे जो सोना या सोने के तुल्य समझे जाने लायक धन था वह प्राय साफ हो चुका है,

"और चूकि इस बात का भी डर है कि भारत-सरकार के रुपए का स्टर्लिंग से गठजोडा कर देने और इस सम्बन्ध मे कुछ खास जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लेने के कारण उस सोने या धन की और भी बरबादी होगी, और इससे इस देश की विशेष आर्थिक क्षति होगी;

"इस परिषद् की राय है कि भारत-सरकार को फौरन इस उद्देश से कुछ खास कार्रवाई करनी चाहिए कि हमारे करेन्सी तथा गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्वो या कोषो मे जो सोना या स्टर्लिंग जमा है वह किसी भी हालत में आज की अपेक्षा कम न होने पावे,

"और इस परिषद् की यह भी राय है कि इस देश की भलाई के लिए भारत-सरकार को चाहिए कि वह रुपए के बदले सोना या स्टर्लिंग देने की कोई जिम्मेवारी अपने ऊपर न रहने दे और एतद्विषयक विधान मे जो सशोधन आवश्यक हो, कर दे। अगर सरकार को यह मजूर न हो तो वह तब तक कोई जिम्मेवारी अपने ऊपर न ले जब तक ब्रिटिश सरकार से उसे लम्बी मुद्दत के लिए, मुनासिब शर्तो पर, काफी बडी रकम लन्दन मे तत्काल कर्ज नही मिल जाती।

"अर्थ-सदस्य ने उस दिन यह सूचित किया कि वह अतिरिक्त कर लगाने के लिए परिषद् मे दूसरा राजस्व बिल पेश करनेवाले है। इस सम्बन्ध मे परिषद् का कहना है कि इसके सदस्यो को काफी नोटिस दिए बिना कर-सम्बन्धी कोई नया प्रस्ताव यहा पेश नही होना चाहिए और इस अधिवेशन मे तो ऐसा प्रस्ताव हर्गिज नही होना चाहिए।"

प्रस्ताव के पक्ष में आए ६४ वोट, और विपक्ष में ४०। पर बहुमत से पास होने पर भी प्रस्ताव स्थिति में कोई अन्तर डालनेवाला न था। उस समय के भारत-सचिव ने ही एक अवसर पर कहा था कि कुत्ते भूकते रहते हैं, कारवा आगे बढता जाता है। प्रजा पर इधर करो का बोझ काफी भारी हो चला था। वह और भी भारी कर दिया गया। इसी अधिवेशन में नए प्रस्ताव-द्वारा प्राय २५ करोड रुपए की कर-वृद्धि कर, हमारे शासको का कारवा अपने मार्ग पर अग्रसर हुआ।

१०

गंठबन्धन के बाद

इगलेंड के बाद और कई देशो ने भी गोल्ड स्टैण्डर्ड का परित्याग कर दिया। वास्तव मे यह कोई अन्ध अनुकरण नही था—सब मजबूर होकर सोने को तलाक देने लगे थे। सोने से बधे रहते है तो दाम ऊचे हो नही सकते, और जो देश अपनी मुद्रा की कीमत सोने के मुकाबिले गिरा देता है वह प्रतियोगिता मे अपना माल सस्ता बेचने की क्षमता पा जाता है—यह विचार कर कई देशो ने अपने-अपने प्रतीक को सोने के बन्धन से मुक्त कर दिया। अमेरिका भी १९३३ मे सोने से हट गया, यद्यपि कुछ समय बाद वह अपने डॉलर की कीमत घटाकर गोल्ड स्टैण्डर्ड पर वापस आ गया। सोने मे डॉलर की कीमत जहा १०० थी वहा अब घटाकर ६० कर दी गई।

सोने के बन्धन से प्रतीक-मुद्राओ को मुक्त करने और इनका मूल्य गिराने का रहस्य क्या था, यह इस प्रकार समझाया जा सकता है—

मान लीजिए, इगलैण्ड और अमेरिका दोनो गोल्ड स्टैण्डर्ड पर है और १ पौड=४.८६ डॉलर—यह एक्सचेज-रेट है। यह भी मान लीजिए कि किसी चीज का पडता इगलैण्ड मे १ पौड है और अमेरिका में ४.८६ डॉलर।

इगलैण्ड ने गोल्ड स्टैण्डर्ड को छोड दिया और सोने के मुकाबिले पौड की कीमत घट गई। अमेरिका गोल्ड स्टैण्डर्ड पर कायम है, इसलिए एक्सचेज-रेट मे फर्क पड गया और जहा पहले १ पौड के ४.८६ डॉलर होते थे वहा अब (उदाहरणार्थ) ३.७४ ही होने लगे।

अमेरिका मे उस वस्तु का दाम वही ४.८६ डॉलर है जो पहले था। इसलिए इगलैण्ड का व्यवसायी अगर अपना माल अमेरिका भेजता है

तो वहा उसका दाम ४ ८६ डॉलर उठता है। नई एक्सचेज-रेट (३ ७४ डॉलर=१ पौड) से यह रकम इगलैण्ड में २६ शिलिंग होती है।

वहा पहले पडता था २० शिलिंग का। अब यह कुछ ऊचा हो चला होगा। पर स्पष्ट है कि जब तक पडता २६ शिलिंग नही हो जाता तब तक इगलैण्ड के व्यवसायी को नई एक्सचेज-रेट के कारण विशेष लाभ रहेगा और वह प्रतियोगिता मे अमेरिका के व्यवसायी को पछाडता जायगा।

मान लीजिए इगलैण्ड मे अब पडता २३ शिलिंग हो चला है। अगर अमेरिका का माल वहा जाकर बिकता है तो उसका दाम २३ शिलिंग उठता है और नई एक्सचेज-रेट से २३ शिलिंग के प्राय ४ ३० डॉलर होते है। चूकि अमेरिका का पडता ४ ८६ डॉलर का है, वहा का माल इगलैड जाकर न बिक सकेगा। प्रत्युत इगलैण्ड का माल अब विशेष रूप से अमेरिका जाने लगेगा। वहा का पडता २३ शिलिंग है। अमेरिका में दाम ४ ८६ डॉलर है, जिसके २६ शिलिंग होते है। ऐसी अवस्था मे इगलैण्डवाले वहा अपना माल ४ ८६ डॉलर से कम मे बेच कर भी नफे मे ही रहेगे। अगर उन्होने ४ ६८ डॉलर मे ही बेचा तो भी उन्हे तो प्राय २५ शिलिंग मिल गए और अमेरिका के कल-कारखानेवालो का व्यवसाय चौपट हो गया।

पर ऐसी स्थिति मे अगर अमेरिका भी गोल्ड स्टैण्डर्ड का परित्याग कर दे और सोने के मुकाबिले अपनी मुद्रा की कीमत उसी हद तक गिरा दे (जिस हद तक इगलैण्ड गिरा चुका है) तो (और सब बाते समान होते हुए) एक्सचेज-रेट फिर वही १ पौड=४ ८६ डॉलर हो चलेगी और ऐसी साम्यावस्था होने पर विशेष लाभ या हानि का प्रश्न ही न रहेगा। हा, अगर अमेरिका सोने के मुकाबिले अपने प्रतीक की कीमत, इगलैण्ड से भी अधिक गिरा दे, तो साम्य की जगह फिर वैषम्य उपस्थित हो जायगा और गगा उलटी दिशा मे बहने लगेगी—अर्थात् प्रतियोगिता मे अब अमेरिका इगलैण्ड को दबाने लगेगा।

इने-गिने देशो को छोड प्राय सभी गोल्ड स्टैण्डर्ड से अलग हो गए। १९३४ मे केवल आधे दर्जन देश गोल्ड स्टैण्डर्ड पर रह गए थे। इन्हे विदेशी

प्रतियोगिता-रूपी आक्रमण से अपने-आपको बचाने के लिए तरह-तरह के उपायो का अवलम्बन करना पडा। जकात या टैरिफ की दीवारें और भी ऊची कर दी गई—विनिमय के व्यवसाय को इस प्रकार से नियंत्रित कर दिया गया कि बाहर से कम-से-कम माल आ सके। जो देश गोल्ड स्टैण्डर्ड छोड चुके थे वे इनका जवाब दिए बिना कब रह सकते थे? नतीजा यह हुआ कि व्यापार के क्षेत्र मे प्राय सभी देश ऐसी लडाई लडने लग गए जैसी इससे पहले कभी देखी या सुनी नही गई थी। प्रत्येक देश अपनी रण-नीति को सफल बनाने के लिए विभिन्न अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग करने लगा। इगलैंड बहुत बडे अरसे से इस सिद्धात का प्रतिपादक चला आ रहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मार्ग मे किसी भी देश को किसी भी हालत मे जकात या शुल्क-रूपी अवरोध खडा करना नही चाहिए। पर अब काबे मे ही 'कुफ सुनाई देने लगा'! अपने उद्योग-धन्धो की जान खतरे में देख इगलैण्ड ने उस पुराने सिद्धान्त को ताक पर रख दिया और अब "स्वतन्त्र व्यापार" (Free Trade) से "सरक्षण" (Protection) का हिमायती बन गया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में स्वतन्त्रता या स्वच्छन्दता नाम की अब कोई चीज ही नही रह गई—कदम-कदम पर प्रतिबन्ध, नियन्त्रण, अटकाव नजर आने लगे। वार-प्रहार, घात-प्रतिघात करते-करते जब दो देश थक जाते तब आपस में समझौता या इकरारनामा करके यह तय कर लेते कि कौन किससे कितना माल लिया करेगा। पर इस प्रकार का समझौता भी व्यापार के क्षेत्र को सकुचित ही करनेवाला होता। आश्चर्य नही कि सारे ससार के व्यापार की मालियत जहा १९२९ में १०० थी वहा १९३३ में प्राय ३३ ही रह गई थी।

तुलनात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि गोल्ड स्टैण्डर्ड पर रह जानेवाले देशो की अपेक्षा उससे अलग हो जानेवाले देश अच्छे रहे। इन देशो में दामो की अधोमुग्व गति कुछ समय के बाद रुक गई और वे ऊपर चढने लगे। १९२९ से १९३२ तक के अध्याय का नाम अगर 'अन्धकार' रखा जाय तो १९३३ से १९३७ तक के अध्याय को 'अरुणोदय' कहा जा सकता है। पर यह इगलैण्ड और अमेरिका-जैसे देशो के ही सम्बन्ध

में। यहा भारतवर्ष मे तो अन्धकार बना ही रहा— कहना चाहिए कि १९३२ के बाद वह और भी घनघोर हो चला। नीचे के 'सूचक अक' यही जाहिर करते हैं।

जिन्सो के थोक दाम

	भारतवर्ष (कलकत्ता)	इगलैण्ड	अमेरिका
१९२९	१००	१००	१००
१९३०	८२	८८	९१
१९३१	६८	७७	७७
१९३२	६५	७५	६८
१९३३	६२	७५	६९
१९३४	६३	७७	७९
१९३५	६५	७८	८४
१९३६	६५	८३	८५
१९३७	७२	९५	९१
१९३८	६८	८९	८२

१९३७ मे जो सुधार दिखाई देता है वह अमेरिका में तेजी की एक लहर के आने का नतीजा था। पर वह स्थायी न हो सका और दाम फिर गिर पडे। खासकर भारतवर्ष का यह हाल हुआ कि 'चार दिना की चादनी, फिर अन्धियारी रात!' १९३८ मे हम फिर वही जा पहुचे जहा १९३१ मे थे।

जब इगलैण्ड गोल्ड स्टैण्डर्ड पर था तब वहा एक औस खालिस सोने का दाम प्राय ८५ शिलिंग होता था। पर स्टर्लिंग और सोने का सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने पर वह दाम ऊचा हो चला अर्थात् सोना स्टर्लिंग मे पहले की अपेक्षा महगा बिकने लगा। कई साल तक यह दाम १४० शिलिंग के आस-पास या उससे भी ऊपर रहा। इसके दो खास नतीजे हुए। नोट-प्रसारक बैंको के पास जो सोना था उसकी कीमत बढ जाने से, उनके लिए उसके आधार पर और भी नोट जारी कर देना सम्भव हो गया। इससे चीजो के दाम ऊपर उठाने मे सहायता मिली। उधर सोने की खानो के

मालिको का मुनाफा बढ गया और इसके फलस्वरूप सोने का उत्पादन अधिकाधिक होने लगा। १९२९ से १९३७ तक ससार मे सोने का उत्पादन इस प्रकार हुआ —

	टन
१९२९	६००
१९३०	६३९
१९३१	६२५
१९३२	६७८
१९३३	७०७
१९३४	७५६
१९३५	८२४
१९३६	९२१
१९३७	९९०

चूकि रुपया स्टर्लिंग से सम्बद्ध था, यहा भी सोना पहले से महगा रहने लगा। अगस्त १९३१ के अन्त में—जब भारतवर्ष गोल्ड स्टैण्डर्ड पर था—यहा सोने का दाम २१।।।~)। था। उसके बाद इस दाम में जो वृद्धि हुई वह नीचे की तालिका मे दिखाई गई है। साथ ही स्टर्लिंग में भी सोने की कीमत दे दी गई है —

सोने का ऊचे से ऊचा दाम

		लन्दन मे (प्रति औंस) *			वम्बई में (प्रति तोला)
		पौं०	शि०	पें०	रु० आ० पा०
अप्रेल	१९३३	६	२	६	३०—०—०
,,	१९३४	७	५	८।।	३६–१२—०
,,	१९३८	७	०	१।।	३५—०—०
,,	१९३९	७	८	६।।	३७—१—३

पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि १९३१ में एक असाधारण बात यह हुई कि यहा से सोने की रपतनी होने लगी। आत्मरक्षा का

*१ औंस = ४८० ग्रेन, १ तोला = १८० ग्रेन, अर्थात् ३ औंस = ८ तोला

और कोई उपाय न देख कर विपन्न भारतवर्ष ने अपना सोना बेचना आरम्भ कर दिया और चूंकि भारत-सरकार इस सोने की खरीदार नही थी, यह सोना विदेश जाने लगा। भारतवर्ष से इधर कब कितना सोना बाहर गया है यह नीचे के अको से स्पष्ट होगा —

साल	रुपए (लाख)
१९३१–३२	५७,९७
१९३२–३३	६५,५२
१९३३–३४	५७,०५
१९३४–३५	५२,५४
१९३५–३६	३७,३५
१९३६–३७	२७,८४
१९३७–३८	१६,३३
१९३८–३९	२३,२६
१९३९–४०	४४,६४
	३,८२,५० लाख रुपए

आम तौर से यह देश बराबर सोने का खरीदार रहा है। इस बीसवी सदी के आरम्भ के ३० वर्षों मे यहा प्राय ७ अरब रुपए का सोना बाहर से आया था। इन ९ वर्षों मे उसमे से प्राय ४ अरब का सोना बाहर चला गया। किसीने ठीक ही कहा था कि जितना सोना हमने इन वर्षों मे खो दिया उतना तैमूरलग और नादिरशाह भी यहा से लूट कर न ले गए होगे।

इस बात के लिए हमारे नेताओ और प्रजा-प्रतिनिधियो की ओर से काफी कोशिश की गई कि सोने की इतने बडे पैमाने पर रफ्तनी न हो और सरकार या रिजर्व बैंक इस सोने को खरीदकर नोटो की पुश्ती के लिए यही रखती जाय, पर कुछ भी नतीजा न निकला। सरकार की ओर से बराबर यही जवाब दिया गया कि खरीद-बिक्री या व्यापार की दृष्टि से जैसी और चीजे है, वैसा सोना है, फिर जब दूसरी चीजो के लिए कोई रुकावट नही है तब सोने के लिए ही क्यो हो? हमारे देश मे अगर राष्ट्रीय

सरकार होती तो ऐसी वात मुह से न निकालती और सोना सचित . .
का जो यह सुअवसर उपस्थित हुआ था उसे हाथ से न जाने देती।

सोने के सम्बन्ध मे हमारे शासक हमको तो अनासक्ति और त्या।
का उपदेश देते जाते थे और स्वय अपने देश मे सोने से चिपटे जाते थे
वल्कि यथासभव उसका परिमाण वढाते जाते थे। वैंक आव् इगलैंड के
पास जहा १९३१ मे सब मिलाकर १२५,४०१,६२८ पौंड का सोना ।
वहा १९३७ मे वह रकम ३२६,४०६,६२५ पौंड हो चली थी। 'हमको
लिखि-लिखि योग पठावत आपु करत रजधानी'।

सोने की इस रफ्तनी की असलियत क्या थी, यह दिखाने के लिए हम
परिपद् मे किए हुए एक अगरेज सदस्य के भाषण से कुछ अंश उद्धृत करते हैं।

मार्च १९३३ को व्यवस्थापिका परिषद् मे बजट की आलोचना करते
हुए सर लेस्ली हडसन ने कहा था —

"पूरव वगाल के किसानो की अवस्था अत्यन्त दयनीय है। १९३१ मे
नदियो की वाढ के कारण उनकी कर्जदारी बेहद वढ गई। १९३२ मे फसल
अच्छी जरूर हुई,पर दाम इतने नीचे थे कि किसान अपने कर्ज न चुका सके।
जीवन-निर्वाह के लिए उन्हे अपने पीतल के बर्तन और मकानो मे लगी हुई
लोहे की चादरे-जैसी चीजें भी बेच देनी पडी। पहले तो उन्होने अपने सोने-
चादी के जेवर बेच डाले, फिर जब इसमे भी पूरा न पडा तब उन्होंने और
मालमता बेचना शुरु कर दिया। पीतल और अल्मूमीनियम के बर्तन बिक
गए, उनकी जगह मिट्टी के बर्तनो ने ले ली। पर किसानो की मुसीबत की,
कहानी यही समाप्त नहीं होती। अब वे अपनी झोपडियो की भी आहुति
देने लग गए है। और तो उनके पास कुछ है नहीं—उन झोपडियो में लगी
हुई लकडी या लोहे की जो कीमत उन्हे मिल सकती है वही अब उनका
एकमात्र अवलम्ब रह गई है।

"हमारे अर्थ-सदस्य ने सोने के निर्यात के सम्बन्ध मे जो यह कहा है
कि उसीकी वदौलत हमारी रक्षा हो सकी है—हम इस ववडर मे उड जाने
से बच गए है, यह सच है, पर सोना क्यो बिका या बिकता जा रहा है,
इसका जो उत्तर हमारे अर्थ-सदस्य ने दिया है मैं उसे ठीक नहीं मानता।

उनका कहना है कि लोगों का जो पूंजी-पल्ला सोने के रूप मे था अव वे उसे दूसरा रूप देने लगे हैं। असलियत कुछ और ही है। कम-से-कम इस वात मे उतनी सचाई नही जितनी हमारे अर्थ-सदस्य समझते हैं। वाहर जाने वाले सोने का वहुत वडा हिस्सा सुख या समृद्धि नही वल्कि दुःख या दारिद्र्य का सूचक है—अर्थात् उसे वेचनेवाले ऐसे लोग हैं जिन्होने अपने धन या पूंजी को दूसरा रूप देने के लिए ऐसा नही किया है, वल्कि जिन्हे अपनी रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करने के लिए—चावल, आटा, दाल, नमक खरीदने के लिए—अपना संचित सुवर्ण वेच देना पडा है।"

यहा कुछ चादी के भी सम्वन्ध मे कहने की जरूरत है।

अगस्त १९३१ मे—जव इगलैण्ड गोल्ड स्टैण्डर्ड पर था—लन्दन में चादी का दाम (फी स्टैण्डर्ड औंस) १३ पेंस के आसपास था। सितम्वर मे, इगलैण्ड के गोल्ड स्टैण्डर्ड से हट जाने पर, यह दाम प्राय १९ पेंस हो चला। भारतवर्ष में इधर दाम इस प्रकार रहा—

			१०० तोले का रु० आ०
मार्च	१९३१-३२	(औसत)	५६–२ ६/१०
"	१९३२-३३	"	५६–२ [illegible]
"	१९३३-३४	"	५६–३ [illegible]
"	१९३४-३५	"	६५–२
"	१९३५-३६	"	४९–३ [illegible]
"	१९३६-३७	"	५३–० [illegible]
"	१९३७-३८	"	५०–१५ [illegible]
"	१९३८-३९	"	५२–१५ [illegible]

लन्दन मे १२ जून १९३३ को आर्थिक विषयो पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के लिए एक कार्फ्रेंस वैठी। इसमे ६४ राष्ट्र सम्मिलित हुए। पर कोई समझौता न हो सका। सवसे गहरा मतभेद मुद्रा-सम्वन्धी प्रश्न पर हुआ और कार्फ्रेंस निष्फल सावित हुई। हा, उसमें चादी के सम्वन्ध मे एक समझौता ऐसे

देशो के बीच जरूर हुआ जो या तो चादी के उत्पादक थे या जिनके प
काफी परिमाण म चादी इकट्ठी थी।

पर चादी के बाजार पर इस समझौते का कोई खास असर न पड़ा
लोग पहले से ही यह धारणा किए बैठे थे कि इस प्रकार का कोई समझौ
होकर ही रहेगा। इसलिए दाम जहा तक उठ सकते थे पहले ही उठ चुके

इस समझौते या इकरारनामे की मीयाद १९३७ के अन्त मे ख़
हो गई।

भारत-सरकार ने इधर भी बराबर चादी बेचना जारी रखा। चल
से रुपए खीच कर गला दिए जाते और उनकी चादी बेच दी जाती
१९३१–३२ और १९३९–४० के बीच सरकार-द्वारा बाहर भे
जानेवाली चादी २० करोड औंस से ऊपर थी। चलन मे चादी के रु
का स्थान या तो नोटो ने ले लिया या वह खाली रहा।

१९३१–३२ और १९३८–३९ के बीच, चलन मे जानेवा
रुपयो का जोड ५७,४५ लाख बैठता है, और चलन से नि
आनेवाले रुपयो का जोड ५४,४४ लाख। प्यासे को किस हद त
पानी मिल सका, इस सम्बन्ध मे और कुछ लिखने की आवश्यक
नही।

इस देश मे जिन्सो के आयात से निर्यात अधिक होता रहा है।
वास्तव मे हम उसी आधिक्य के रूप मे अपनी देनदारी* चुकाते आए है।
१९२४–२५ से १९२८–२९ तक उस आधिक्य का औसत ११० करोड

* "भारतवर्ष अपनी जिन्सो के निर्यात से जिन्सो के आयात का ही दाम नहीं चुकाता, कुछ ऐसे आयात का भी दाम चुकाता है जो अदृश्य रूप से हुआ करता है। इस अदृश्य आयात में इगलैण्ड को Home Charges तथा अन्य रूप में जानेवाली रकमें शामिल है। इनका जोड हर साल प्राय ८० करोड़ रुपए बैठता है।"—

भारतीय व्यापारी महासभा (फेडरेशन) के दशम अधिवेशन के अध्यक्ष श्रीयुत देवीप्रसाद खतान का भाषण (अप्रेल, १९३७)।

रुपए से अधिक पडा था। पर १९३२-३३ में वह घटकर केवल ३ करोड रुपए के लगभग रह गया था। उसके बाद स्थिति कुछ सुधरी, पर यथेष्ट रूप से नही। अगर इन वर्षों में सोने का निर्यात सहायक न होता तो अदृश्य रूप से होनेवाले आयात का दाम हमसे न चुकता और हमारी देनदारी और भी बढ जाती।

अपने देश के किसानों की दीनता-हीनता का कर्जदारी से खास सम्बन्ध है। १९२८-२९ मे कुछ विशेषज्ञ जाच-पडताल के बाद इस नतीजे पर पहुचे थे कि सारे भारतवर्ष के किसानो का कुल कर्ज ९ अरब रुपए के करीब था। भिन्न-भिन्न प्रातो मे यह इस प्रकार विभक्त था —

	सारा कर्ज (करोड रुपए)
मद्रास	१५०
बम्बई	८१
बगाल	१००
सयुक्त प्रात	१२४
मध्य प्रात	३६
पजाब	१३५
बिहार-उडीसा	१५५
आसाम	२२
केन्द्रीय इलाका	१८
बर्मा	६०
ब्रिटिश भारत	८८१ करोड

देशी रियासतो के किसानो का कर्ज इसके अलावा था।

अब देखिए मन्दी का इस कर्जदारी पर क्या असर पडा। गल्ले के दामो में प्राय ५० प्रतिशत कमी हो जाने से कर्जदारो का बोझ यो ही दूना हो गया। कारण यह कि जो १० मन अनाज बेचकर कर्जदारी से छुटकारा पा सकता था उसे अब २० मन जुटाना पडता था। अगर यह मान लिया जाय कि ऐसी

मन्दी के समय मे किसान न तो असल अदा कर सकते थे, न सूद, तो हमारे अर्थशास्त्रियो का यह तखमीना सही समझा जा सकता है कि जो बोझ १९२९ मे ९ अरब रुपए था वह १९३३ मे २२ अरब रुपए के बराबर हो चला था।

दामो को बढाना और उसके द्वारा किसानो या कर्जदारो की रक्षा करना भारत-सरकार की नीति के प्रतिकूल था। उधर असन्तोष और अशाति की वृद्धि के कारण परिस्थिति भयकर होती जा रही थी। इस कारण प्रातीय सरकारो के लिए चुपचाप बैठे रहना भी असभव था। उन्होने इधर कुछ ऐसे कानून बनाए जिनका उद्देश था साहूकार के पावने की रकम को कम कराके कर्जदार को इमदाद पहुचाना। कुछ हद तक सरकारी लगान मे भी छूट दी गई। पर इन उपायो से किसानो का कष्ट कहा तक दूर हो सकता था? उनकी वास्तविक सहायता या रक्षा का उपाय था ऐसी नीति का अवलम्बन जो दामो को ऊपर चढा सके या कम-से-कम उन्हे नीचे गिरने से रोक सके। पर हमारी सरकार की नीति तो उन्हे नीचे की ही दिशा मे ढकेलनेवाली थी—उससे यहा के किसानो की भलाई की आशा कैसे की जा सकती थी? दामो की मन्दी और हमारी सरकार की एक्सचेज-नीति, चक्की के इन दोनो पाटो के बीच पडकर हमारे किसान तग-तबाह हो गए।

दिसम्बर १९३३ मे जब रिजर्व बैक से सम्बन्ध रखनेवाला बिल परिषद् मे विचाराधीन था, वहा इस बात की चेष्टा की गई कि एक्सचेंज-रेट को स्थायी रूप से १८ पेस न करके इस प्रश्न पर पुनर्विचार की गुजाइश रहने दी जाय। बिल मे यह व्यवस्था थी कि जब रिजर्व बैंक स्थापित हो जाय—और इसमे अभी कुछ देर थी—वह प्राय १८ पेस की रेट से स्टर्लिग खरीदने और बेचने को बाध्य हो।

१९२७ के विधान मे स्टर्लिग खरीदने की सरकार पर कोई जिम्मेवारी नही थी—जिम्मेवारी २१≈) १० तोला के भाव से (खालिस) सोना खरीदने की थी। बाजार मे १९३१ के बाद सोने का भाव इससे कही ऊँचा हो रहा था, इसलिए सरकार की वह जिम्मेवारी अब कोई अर्थ नही रखती थी। अब सरकार अपने ऊपर स्थायी रूप से सोने की

जगह स्टर्लिंग खरीदने की जिम्मेवारी लेने जा रही थी। उसकी ओर से यह कहा जा चुका था कि कानूनन जो स्थिति इस समय है उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करना हमें अभीष्ट नहीं। परिषद में पूछा गया कि अगर बात ऐसी ही है तो स्टर्लिंग खरीदने की जिम्मेवारी आप अपने ऊपर क्यों लेने जा रहे हैं? खैर यह तो एक विधि-विषयक छोटी-सी बात हुई। विशेष आपत्तिजनक बात तो यह थी कि सरकार भविष्य के लिए स्टर्लिंग खरीदने या बेचने की दर अभी मुकर्रर करने जा रही थी। गैर-सरकारी मेम्बरों ने सरकार की इस कार्रवाई का घोर विरोध किया और उनकी ओर से इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले कई संशोधन पेश किए गए। उनमें एक संशोधन इस आशय का था कि एक्सचेंज-रेट अभी निश्चित न की जाय—सारे प्रश्न का निर्णय भविष्य के लिए छोड़ दिया जाय। रिजर्व बैंक की स्थापना में अभी देर थी, इसलिए उसके द्वारा सोने या स्टर्लिंग की खरीद-बिक्री का प्रश्न अभी कुछ काल तक उठनेवाला नहीं था। फिर भी सरकार इसी समय दर को निश्चित कर देने पर तुली हुई थी और उसने जो चाहा, कर दिया। इस प्रश्न से सम्बन्ध रखनेवाला एक भी संशोधन परिषद्-द्वारा स्वीकृत न हो सका, और रिजर्व बैंक-द्वारा स्टर्लिंग की खरीद-बिक्री के लिए १८ पेंस की रेट निर्धारित हो गई।

दिसम्बर १९३८ में श्रीसुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया—

"जब से रुपए की दर १८ पेंस मुकर्रर कर दी गई तब से यहां व्यवसायी-वर्ग और यहां की सार्वजनिक संस्थाएं इसका विरोध करती रही हैं। उनकी मांग यह रही है कि चूंकि हुण्डी की यह दर, आर्थिक से, भारतवर्ष के लिए अहितकर है, इसमें रद्दोबदल होना जरूरी है। सरकार इस लोकमत की उपेक्षा करती आई है। ६ जून (१९३८ उसने इस विषय पर एक वक्तव्य निकाल कर कहा कि वह हुण्डी की कोई भी हेर-फेर करना नहीं चाहती और दलील यह पेश की कि करने से परिस्थिति इतनी डावाडोल और अनिश्चित हो जायगी को लाभ के बदले हानि उठानी पड़ेगी।

"समिति की राय में १८ पेंस की दर से यहा के किसानो की गहरी हानि हुई है। इसने उनकी पैदावार की कीमत गिरा दी है और बाहर से आनेवाले माल को नाजायज फायदा पहुचाया है।

"कार्यकारिणी समिति का विश्वास है कि अगर व्यापार की यही हालत बनी रही तो यह दर आगे टिकनेवाली नही है। पिछले ७ वर्षों में यह सिर्फ सोने के बडे पैमाने पर निर्यात के कारण ही टिक सकी है। उस निर्यात से देश की बडी क्षति हुई है। अब इसको आगे टिकाने के लिए गिरावट के सिवा और कोई रास्ता नजर नही आता। भारतवर्ष के पास सोने और स्टर्लिंग के रूप मे जो सम्पत्ति बच गई है उसको बरबाद करके ही हुण्डी की यह दर कायम रखी जा सकती है। जो स्टर्लिंग था वह पहले भी बहुत कुछ स्वाहा हो चुका है, अगर भारत-सरकार ने इस दर को टिकाने के प्रयत्न से मुह न मोडा तो बचा-खुचा स्टर्लिंग भी जाता रहेगा। कार्यकारिणी की दृष्टि मे ऐसी सम्भावना अत्यन्त चिन्ताजनक है।

"परिस्थिति को देखते हुए कार्यकारिणी इस नतीजे पर पहुची है कि देश की भलाई इसी मे है कि हुण्डी की दर को टिकाने का प्रयत्न छोड दिया जाय और सरकार इसे शीघ्रातिशीघ्र १६ पेंस कर देने की दिशा में अग्रसर हो।"

पर सरकार का उस दिशा मे अग्रसर होना एक असभव-सी बात थी। ऊची दर कायम की गई थी इगलैण्डके हित की दृष्टिसे, और जब तक इगलैण्ड का यहा आधिपत्य था तब तक यहा की सरकार की नीति मे वैसे परिवर्तन की आशा दुराशा-मात्र थी। कार्यकारिणी के प्रस्ताव का उसकी ओर से जो उत्तर दिया गया उसमे एक बार फिर वही पुराना झूठ दोहराया गया कि हुण्डी की दर गिरने से किसानो का लाभ नही बल्कि हानि है।

बडे पैमाने पर सोने की रफ्तनी से इतना जरूर हुआ कि १८ पेंस की दर टिकाने मे सरकार को किसी कठिनाई का सामना करना नही पडा। हमारा सोना गया, रेट अपनी जगह बनी रही।

११

रिजर्व बैंक की स्थापना

१९३१ के बाद की घटनाओ मे यहा रिजर्व बैंक की स्थापना महत्व-पूर्ण स्थान रखती है।

इस प्रकार की बैंक से सम्बन्ध रखनेवाला प्रस्ताव प्राय सौ व॰ पुराना बताया जाता है। १८३६ मे कुछ अगरेज व्यापारियो ने ई॰ इडिया कम्पनी के सचालको के सामने यह प्रस्ताव रखा था कि भारतव में एक ऐसी बडी बैंक स्थापित की जाय जिसमे साधन और शक्ति ५॰ रूप से केन्द्रीभूत हो और जिसका यहा के सराफा-बाजार पर पूरा ।।। पत्य हो। पर यह प्रस्ताव ही रहा। १८६७ मे फिर इस विषय की चर्चा हुई—तीनो प्रेसिडेंसी बैंको को सम्मिलित कर एक अखिल भार बैंक कर देने की सलाह सरकार को दी गई, पर कुछ नतीजा न ।नव इसके बाद भी दो-एक मौको पर यह प्रश्न सरकार के सामने लाया पर इससे परिस्थिति मे कुछ भी अन्तर न पडा। चेम्बरलेन-कमी॰ सदस्य अध्यापक (वर्त्तमान लार्ड) केन्स ने, दूसरे सदस्य सर अर्नेस्ट के सहयोग से, इस सम्बन्ध मे एक स्कीम तैयार की, पर महासमर ।७ के कारण इसपर विचार भी न हो सका। शान्ति स्थापित हो फिर ऐसी केन्द्रीय बैंक के प्रश्न की ओर लोगो का ध्यान गया और यह दीखने लगा कि कुछ-न-कुछ होके ही रहेगा। सफलता की ८। समय सबसे व्यावहारिक उपाय यही समझा गया कि तीनो प्रेसि का एकीकरण कर दिया जाय। अन्त मे इसी एकीकरण से इम्पी॰ सृष्टि हुई। इससे सम्बन्ध रखनेवाला विधान सितम्बर १९२० हुआ और २७ जनवरी १९२१ से अमल मे लाया गया।

पर अभीष्ट-सिद्धि न हो सकी। इम्पीरियल बैंक मे उन सब बातो का समावेश न था जो किसी देश या राष्ट्र की नीति को नियात्मक रूप देनेवाली सबसे प्रधान बैंक में होनी चाहिए। उसमे कई दोष नजर आने लगे। इम्पीरियल बैंक न तो सरकारी बैंक थी, न यथार्थत सार्वजनिक। वह कुछ शेयरहोल्डरो के हाथ की चीज थी जिसमे अगरेजो का प्राधान्य था—जिसकी नीति-रीति भारतीय वाणिज्य-व्यवसाय की दृष्टि से पूर्णत सन्तोषजनक नही कही जा सकती थी। जो बैंक सर्वोपरि हो—जो वास्तव मे इस व्यवसाय-चक्र की धुरी का काम करे—उसे ऐसा काम-काज नही करना चाहिए जिससे और बैंको की प्रतियोगिता हो। पर इम्पीरियल बैंक पर इस प्रकार का कोई नियत्रण नही था—व्यवसाय के क्षेत्र मे वह प्राय और बैंको के ही समान थी, जिसका अर्थ होता है कि जो उनसे प्रतियोगिता करती थी उसी पर उनके सरक्षण की जिम्मेवारी थी। सेण्ट्रल अर्थात् केन्द्रीय बैंक को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह कुल सरकारी रोकड रखे और नोटो के प्रसार का प्रबन्ध करे। इम्पीरियल बैंक को कुल रोकड रखने का अधिकार प्राप्त नही था—उदाहरणार्थ, गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व सरकार अपने हाथ मे ही रखती थी। नोटो के प्रसार का काम भी उसे नही सौंपा गया था, इसलिए पेपर करेन्सी रिजर्व भी उसके दायरे से बाहर था। कुछ ही समय बाद यह सिफारिश की जाने लगी कि भारतवर्ष मे एक ऐसी नई बैंक स्थापित की जाय जो विशुद्ध सेण्ट्रल या रिजर्व (निधि) बैंक का काम करे—जिसपर करेन्सी और एक्सचेज-सम्बन्धी पूरी जिम्मेवारी हो—और जिसे यह जिम्मेवारी पूरी करने के लिए सरकार से विशेष अधिकार प्राप्त हो। हिल्टन यग कमीशन की यह एक खास सिफारिश थी—यद्यपि १९३४ से पहले रिजर्व बैंक-सम्बन्धी विधान न बन सका।

सरकार की ओर से जो मसविदा १९२७ में पेश किया गया वह व्यवस्थापिका परिषद् को आपत्तिजनक जचा—खास कर इसलिए कि उसके अनुसार रिजर्व बैंक सरकारी बैंक न हो कर, शेयर-होल्डरो की बैंक होती और उसके डाइरेक्टरो अथवा सचालको की नियुक्ति उस प्रकार न होती जो भारतीय हित की दृष्टि से वाछनीय कहा जा सकता था। सरकार अन्त

में इस बातपर राजी हो गई कि रिजर्व बैंक शेयर-होल्डरो की बैंक न होकर सरकारी बैंक हो, पर डाइरेक्टरो की नियुक्ति के प्रश्न पर एक राय न हो सकी। अर्थ-सदस्य ने एक दूसरा मसविदा परिषद् के सामने रखा और कुछ लोगो को ऐसा दीखने लगा कि इसके आधार पर समझौता हो जायगा। पर भारत-सचिव को समझौते की बात मजूर नही थी, और उन्होने भारत-सरकार को उस दिशा मे आगे बढने से रोक दिया। अर्थ-सदस्य को परिषद् मे यह कहना पडा कि डाइरेक्टरो के प्रश्न पर घोर मतभेद होने के कारण सरकार इस अधिवेशन मे प्रस्तुत बिल पर और कुछ विचार करना-कराना मुनासिब नही समझती।

कुछ ही समय बाद उसकी ओर से दूसरा बिल प्रकाशित किया गया। इसमे कितनी ही नई बाते थी, पर बैंक को सरकारी बैंक बनाने की व्यवस्था नही थी। इस विषय मे सरकार को उसी पुराने पहलू पर लौट जाना पडा था कि बैंक शेयर-होल्डरो की हो। साथ ही, यह भी व्यवस्था थी कि व्यवस्थापिका परिषद् या सभा के सदस्य इस बैंक के डाइरेक्टर न हो सकेगे। पर परिषद् के अध्यक्ष ने अर्थ-सदस्य को यह बिल विचारार्थ उपस्थित करने की अनुमति नही दी। कारण यह था कि न तो इन्होने पुराने बिल को बाकायदा वापस लिया था, न अभी इतना समय बीत पाया था कि वह बिल निरस्त या निर्जीव समझा जाय। विवश होकर अर्थ-सदस्य को सरकार की ओर से फिर उसी पुराने बिल को विचारार्थ उपस्थित करना पडा। पर ऐसा करते ही पुराना विरोध फिर जोर-शोर के साथ उठ खडा हुआ और सरकार को प्रत्यक्ष हो चला कि जो वह चाहती थी वह न हो सकेगा। लेहाजा १० फरवरी १९२८ को उसकी ओर से यह कहकर कि परिषद् के रुख को देखते हुए इस दिशा मे और आगे बढने से कोई लाभ नजर नही आता—इस विषय की चर्चा यही समाप्त कर दी गई।

१९३१ मे सेण्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उसमे इस बात पर जोर दिया गया था कि रिजर्व बैंक यथाशीघ्र स्थापित की जाय। फिर लन्दन की राउण्ड टेबल कान्फरेस (गोलमेज परिषद्) की फेडरल स्ट्रकचर कमेटी ने भी प्राय यही सिफारिश दोहराई। १९३३

मे राजनैतिक सुधारो के सम्बन्ध में, सरकारी की ओर से एक वयान निकला। उसमें कहा गया था कि केन्द्र मे अर्थ-विभाग-सम्बन्धी जिम्मेवारी भारत-वासियो को सौंप देने की दृष्टि से रिजर्व वैंक का होना अनिवार्य है—और वह रिजर्व वैंक ऐसी होनी चाहिए जिसपर किसी प्रकार का राजनैतिक दवाव न पड सके। इस विपय पर फिर से विचार करने के लिए एक कमेटी वैठी। इसकी रिपोर्ट अगस्त १९३३ मे निकली और इसकी सिफारिशो के आधार पर रिजर्व वैंक-सम्बन्धी तीसरा विल ८ सितम्वर को दोनो व्यवस्थापिका सभाओ मे पेश किया गया। इसपर विचार होता गया और इतिहास की पुनरावृत्ति की नौवत नही पहुची। कुछ हेर-फेर के साथ इस विल ने अन्त मे विधान का रूप धारण किया और ६ मार्च १९३४ को इसे वडे लाट की स्वीकृति मिल गई। १ अप्रैल १९३५ को रिजर्व वैंक की स्थापना हुई।

रिजर्व वैंक शेयर-होल्डरो की वैंक है। इसकी पू जी है पाच करोड रुपए, और प्रत्येक शेयर सौ रुपए का है। कुछ शेयर भारत-सरकार इसलिए अपने हाथ मे रखती है कि अगर कोई शख्स सेण्ट्रल वोर्ड का डाइरेक्टर चुना जाय और उसके पास कम-से-कम उतने शेयर न हो जितने डाइरेक्टर के पास होने चाहिए, तो सरकार इन शेयरो मे से कुछ उसके हाथ वेच कर उसकी कमी पूरी कर दे। शेयर-होल्डर अलग-अलग प्रातो या प्रदेशो में विभक्त हैं। और प्रत्येक प्रात या प्रदेश का अपना खास रजिस्टर है। ये रजिस्टर वम्वई, कलकत्ता, दिल्ली और मद्रास मे रखे जाते हैं। इस वात के लिए खास विधान है कि रिजर्व वैंक के शेयर-होल्डर वही हो सकते हैं जो भारतवर्ष (या वर्मा*) के निवासी हैं या जो ब्रिटिश प्रजा की परिभापा के अन्तर्गत हैं। व्यक्तियो के साथ कम्पनियो को भी शेयर-होल्डर होने का हक हासिल है।

---

* १ली अप्रेल १९३७ से वर्मा भारतवर्ष से अलग कर दिया गया। इसके क्या कारण थे यह बताना यहा अप्रासगिक होगा। पर राजनैतिक पृथक्करण के बावजूद भी रुपए का स्थान वहा पूर्ववत् ही बना रहा। निर्णय यह हुआ कि मुद्रा-सम्बन्धी व्यवस्था की दृष्टि से दोनो देश एक

मूल-विधान में संशोधन करके अब यह व्यवस्था कर दी गई है कि बीस हजार रुपए से अधिक का कोई भी शेयर-होल्डर नही माना जा सकता। बैंक की पूंजी, सेण्ट्रल बोर्ड की सिफारिश और व्यवस्थापिका सभाओ की सिफारिश से घटाई-बढ़ाई जा सकती है। सेण्ट्रल बोर्ड के लिए जरूरी है कि सिफारिश करने से पहले भारत-सरकार की अनुमति प्राप्त कर ले। पूंजी के अलावा बैंक के पास पाच करोड का रिजर्व भी है। शेयर-होल्डरो को जो डिविडेंड या मुनाफा मिल सकता है वह सरकार द्वारा ३॥ प्रतिशत नियत है। उतना दे देने पर बचत होने की सूरत में उसका एक हिस्सा शेयर-होल्डरो को मिलेगा और बाकी सरकार ले लेगी।

बैंक का सचालन और प्रवन्ध डाइरेक्टरो के सेण्ट्रल बोर्ड-द्वारा होता है। इसके १६ सदस्य होते हैं; यथा (क) एक गवर्नर और दो डिप्टी गवर्नर, जो भारत-सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं, (ख) चार डाइरेक्टर, जिन्हें भारत-सरकार मनोनीत करती है, (ग) आठ डाइरेक्टर, जो शेयर-होल्डरो का प्रतिनिधित्व करते है—बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली की ओर से छ और मद्रास तथा रगून की ओर से दो, (घ) एक सरकारी अफसर, जिसे भारत-सरकार मनोनीत करती है। सेण्ट्रल बोर्ड के अलावा पाच लोकल बोर्ड हैं—प्रत्येक प्रात या प्रदेश के लिए एक। इन लोकल बोर्डो के कुछ सदस्य शेयर-होल्डरो द्वारा निर्वाचित होते है, और कुछ सेण्ट्रल बोर्ड-द्वारा मनोनीत। लोकल बोर्डों का काम है सेण्ट्रल बोर्ड को सलाह देना और जो जिम्मेवारी उसके द्वारा सौंपी जाय उसे पूरा करना।

बैंक का सर्वोच्च पदाधिकारी या कर्मचारी उसका गवर्नर है जो सेंट्रल बोर्ड का अध्यक्ष भी है। गवर्नर और डिप्टी गवर्नर भारत-सरकार-द्वारा

ही क्षेत्र समझे जायँगे और व्यवस्थापक का पद भारतवर्ष की रिजर्व बैंक को प्राप्त होगा।

बर्मा पर जापान का आधिपत्य हो जाने से पहले एक रजिस्टर रंगून में भी रखा जाता था। इस समय बर्मा की मुद्राप्रणाली जापान के अधीनस्थ और देशो की-सी हो चली है।

स्टर्लिंग में अदा होनेवाली	
सिक्यूरिटीज या सरकारी कागज	७३४,८३,९६,०००
	७७९,२५,३९,०००
(ख) रुपए	१२,८१,८४,०००
रुपए मे अदा होनेवाली	
सिक्यूरिटीज या सरकारी कागज	५८,३२,६५,०००
जोड़	८५०,३९,८८,०००

वैकिंग विभाग

देनदारी—	
पूजी	५,००,००,०००
रिजर्व फण्ड	५,००,००,०००
डिपॉजिट	
(क) सरकारी	
(१) भारत-सरकार	१३,८७,४०,०००
(२) बर्मा-सरकार	५०,७८,०००
(३) दूसरी सरकारी रकमें	९,८९,८२,०००
(ख) बैंको के	९०,१७,३९,०००
(ग) दूसरो के	७,१६,५७,०००
चुकनेवाले बिल	३,३७,८७,०००
दूसरी देनदारी	६,८१,२८,०००
जोड़	१४१,८१,११,०००

सम्पत्ति—	
नोट	९,५९,७२,०००
रुपए	१७,९३,०००
रेजगारी	१,६०,०००
हुडिया—जो खरीदी या डिस्कूट की गई	
(क) देशी	.....

(ख) विदेशी	....
(ग) सरकारी ट्रेजरी बिल	३,२५,०००
रोकड जो विदेशो में है	१२०,६०,००,०००
सरकार को दिया गया कर्ज	२६,००,०००
दूसरो को दिए गए क़र्ज	१८,७५,०००
जो रकम शेयरो में या और चीजो में लगी हुई है	७,६८,५३,०००
दूसरी सम्पत्ति	३,२५,३३,०००
	१४१,८१,११,०००

नोट-प्रसार का जो काम पहले सरकार खुद किया करती थी वह अब रिजर्व बैंक के जिम्मे है। हा, बैंक-द्वारा निकाले गए नोटो के भुगतान की गारण्टी सरकार ने दे रखी है। इस काम के सुचारु रूप से सम्पादन के लिए भारतवर्ष छ सर्कलो मे विभक्त है, यथा—कलकत्ता, कानपुर, लाहौर, बम्बई, कराची और मद्रास।

ऊपर नोट-प्रसार विभाग का जो तलपट दिया गया है उसमे नोट-सम्बन्धी देनदारी ८ अरब ५० करोड ३९ लाख ८८ हजार रुपए की दिखाई गई है—अर्थात् उस तारीख को इतने रुपए के नोट खडे थे और इनमे से प्राय: साढे नौ करोड के नोट बैंक के अपने बैकिंग-विभाग मे थे। जब चलन मे नोटो का परिमाण बताया जाता है तब ऐसे नोटो को छोड कर। हा, सरकारी खजाने मे या दूसरी बैंको के पास जो नोट होते है वे शामिल कर लिए जाते है।

नोटो की पुश्ती के लिए बैंक के रिजर्व या कोष में जो धन है उसमें सबसे पहली चीज है सोना। इस समय जो कुछ सोना है वह इसी देश में है, अन्यत्र नही। पुश्ती के लिए जहा सोना प्राय ४४॥ करोड का था वहा स्टर्लिग सिक्यूरिटीज थी प्राय ७३५ करोड की। इधर लडाई छिडने के बाद भारत-सरकार ने एक रुपए के नोट जारी किए है। ये नोट भी तलपट के "रुपए" में शामिल है —अर्थात् कुछ हद तक नोटो की पुश्ती नोटो से ही की जा रही है।

वर्तमान अवस्था में मुद्रा-सम्बन्धी विस्तार या सकोच करने का उपाय है नोटो का परिमाण बढा या घटा देना—और यह इस प्रकार किया जा सकता है :—

अगर पुस्ती के लिए रुपए (जिनमें एक रुपए के नोट भी शामिल हैं), सोना या किसी प्रकार की सिक्यूरिटीज (कागज) बढा दी जायँ और दूसरी ओर उतने नोट जारी कर दिए जायँ, तो यह मुद्रा-सम्बन्धी विस्तार होगा। जब रिजर्व बैंक को ऐसा विस्तार करना होता है तब वह अपने बैंकिंग-विभाग से सिक्यूरिटीज को उठा कर नोट-प्रसार-विभाग में डाल देती है और उसके मद्दे नोट जारी करके बैंकिंग-विभाग को दे देती है। इसके लिए यह भी किया जा सकता है कि नए ट्रेजरी बिल निकाल दिए जायँ और उनके मद्दे नोट जारी कर दिए जायँ। ये ट्रेजरी बिल बैंक की तिजोरियो मे पडे रहेगे और जो नोट जारी होगे उनकी पुस्ती करेगे। जब मुद्रा-सम्बन्धी सकोच करना होता है तब बैंक नोट-प्रसार-विभाग से सिक्यूरिटीज को उठाकर बैंकिंग-विभाग में डाल देती है और उस विभाग से जो नोट मिलते हैं उन्हे रद्द कर देती है—क्योंकि नोट-प्रसार-विभाग मे सिक्यूरिटीज की जगह नोट नही रखे जा सकते। यह भी हो सकता है कि सरकार ट्रेजरी बिलो का भुगतान कर दे और इस प्रकार नोट-प्रसार-विभाग मे जो नोट आवे वे रद्द कर दिए जायँ—अर्थात मुद्रा-सम्बन्धी सकोच या कमी पैदा कर दी जाय। पहले करेन्सी और बैंकिंग-सम्बन्धी सूत्र अलग-अलग हाथो मे थे। करेन्सी का काम स्वय सरकार देखा करती और जहा तक बैंकिंग का सरोकार है वह इम्पीरियल बैंक से अपने साधन का काम लेती। अब परिस्थिति भिन्न है। सारे सूत्र रिजर्व बैंक के हाथ में आ गए हैं। करेन्सी, एक्सचेंज, बैंकिंग—इन सबसे सम्बन्ध रखनेवाली सरकारी नीति को क्रियात्मक रूप उसीके द्वारा मिलता है। प्रबन्ध-सम्बन्धी जहा पहले अनेकता थी वहा अब एकता है, और इस एकता के कारण अब वह समन्वय हो चला है जिसका पहले अभाव-सा था।

ऊपर सक्षेप मे बताया जा चुका है कि करेन्सी के क्षेत्र मे रिजर्व बैंक के कर्तव्य क्या हैं। यहा बैंकिंग के क्षेत्र मे उसके कर्तव्य का दिग्दर्शन कराना है।

रिजर्व बैंक वास्तव मे बैंको की बैंक है—इस सारे व्यवसाय की उसे धुरी या मेरुदण्ड समझिए। देश मे जितनी ऐसी बैंके है जो कुछ महत्व रखती है और जो रिजर्व बैंक की सूची या शेड्यूल मे दाखिल हो चुकी है—उन सबको एक निश्चित रकम इसके पास रखनी पडती है। वह रकम क्या होगी, यह प्रत्येक बैंक की अपनी देनदारी पर निर्भर है। अगर देनदारी ऐसी है कि पावनेदार के तलब करते ही चुका देनी चाहिए तो उसे उस देनदारी का कम-से-कम ५ प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा रखना होगा। और अगर देनदारी चुकाने के लिए समय या मुद्दत मिलने की गुंजाइश है तो उस बैंक को पाच की जगह दो प्रतिशत ही जमा कराना होगा। रिजर्व बैंक का जो तलपट ऊपर दिया गया है उसमे "बैंको के डिपॉजिट" प्राय ९० करोड है। इसमे खास कर वह रकमे शामिल है जो शेड्यूल्ड बैंको को—अपनी-अपनी देनदारी के अनुसार—रिजर्व बैंक के पास जमा करानी पडती है। और बैंको की तरह रिजर्व बैंक ब्याज पर डिपॉजिट नही ले सकती। उस प्रतिबन्ध का उद्देश है उसे दूसरी बैंको की प्रतियोगिता करने से रोकना। इस प्रकार रिजर्व बैंक के पास डिपॉजिट रखना इन बैंको के लिए अपनी हिफाजत का बीमा है। गाढे समय मे किसी भी बैंक को कर्ज के रूप मे मदद के लिए रिजर्व बैंक के पास दौडना पडेगा और उसके पास डिपॉजिट के रूप मे जितना अधिक धन जमा होगा उतना ही अधिक वह सहायतार्थियो की सहायता कर सकेगी।

यहा 'शेड्यूल्ड' या तालिकान्तर्गत बैंको के विषय मे कुछ और कहने की आवश्यकता है।

जब से रिजर्व बैंक की स्थापना हुई, यहा की बैंके दो श्रेणियो मे विभाजित हो चली है—एक तो वे, जो रिजर्व बैंक की तालिका के अन्तर्गत है, दूसरी वे जो उसके बाहर है। कोई भी बैंक—कुछ खास शर्ते पूरी करने पर—तालिका मे दाखिल हो सकती है। एक शर्त यह है कि वह ब्रिटिश भारत मे काम-काज करनेवाली कम्पनी हो, दूसरी शर्त यह कि उसके पास कम-से-कम पाच लाख रुपए की पूजी और रिजर्व हो। ऐसी बैंको की संख्या ३१ मार्च १९४१ को ६४ थी। इनमे ५ बर्मा मे काम करनेवाली बैंके थी।

सबसे बड़ी शेड्यूल्ड बैंक इम्पीरियल बैंक है। बैंकिंग क्षेत्र में इसका खास अपना स्थान है। कभी यह इस देश की सेण्ट्रल बैंक होने का हौसला रखती थी। आज भी यह कई कामों में एजेण्ट की हैसियत से रिजर्व बैंक का प्रतिनिधित्व करती है। इसके बाद विदेशी 'एक्सचेंज बैंकों' का नम्बर है। इनकी संख्या २० है, और ये मुख्यतः विदेशी हुंडियों के लेन-देन का काम करती हैं। उनके बाद आती हैं इस देश की पांच बड़ी बैंकें, जिनके नाम हैं—सेण्ट्रल बैंक ऑव् इण्डिया, बैंक ऑव् इण्डिया, इलाहाबाद बैंक, बैंक ऑव् बड़ौदा, और पंजाब नैशनल बैंक। इनमें प्रत्येक की जगह-जगह शाखाएँ हैं और प्रत्येक के पास पांच करोड़ से अधिक डिपॉजिट है। बाकी बैंकों का नम्बर इन सबके बाद आता है और इनमें कुछ तो बड़ी हैं, पर कुछ बहुत ही छोटी या साधारण।

अब रिजर्व बैंक और शेड्यूल्ड बैंकों के बीच के सम्बन्ध पर एक नजर डालनी है।

प्रत्येक शेड्यूल्ड बैंक को रिजर्व बैंक के पास अपनी देनदारी के हिसाब से डिपॉजिट रखना पड़ता है, यह बात ऊपर बताई जा चुकी है। इसका असली उद्देश्य यह नहीं कि सर्वसाधारण का जो रुपया शेड्यूल्ड बैंकों के पास जमा है उसे सुरक्षित किया जाय, क्योंकि दो या पांच प्रतिशत के हिसाब से डिपॉजिट लेने से वह उद्देश्य पूरा होने का नहीं। उद्देश्य दरअसल यह है कि रिजर्व बैंक को इस देश की बैंकिंग प्रणाली या बैंकिंग व्यवसाय पर कुछ नियंत्रण रखने का अधिकार दिया जाय। प्रत्येक शेड्यूल्ड बैंक के लिए यह जरूरी है कि वह भारत-सरकार को तथा रिजर्व बैंक को अपनी स्थिति से अभिज्ञ रखे। इसके लिए उसे प्रति सप्ताह (और अवस्था-विशेष में प्रतिमास) निर्दिष्ट प्रकार से तैयार करके अपना एक तलपट भेजना पड़ता है। न भेजने पर रिजर्व बैंक को अधिकार है कि वह उस बैंक के और उसके संचालकों के विरुद्ध मुनासिब कार्रवाई करे।

पर रिजर्व बैंक शासक होने के साथ सहायक भी है। शेड्यूल्ड बैंकों के लिए कानून ने यह सुविधा कर दी है कि जरूरत पड़ने पर वे रिजर्व बैंक से कर्ज ले सकती है। यह कर्ज उन्हें कुछ खास तरह की सिक्यूरिटीज और

देने के लिए बाध्य नही जो उसके पास जमा रहता है। पर सार्वजनिक कर्ज-सम्बन्धी काम करने के लिए उसे सरकार से पुरस्कार या कमीशन मिलता है।

विभिन्न आर्थिक विषयो पर—खास कर सार्वजनिक कर्ज लेते समय—भारत-सरकार और प्रातीय सरकारे रिजर्व बैंक से सलाह मागा करती है, और सलाह देने से पहले रिजर्व बैंक प्रत्येक विषय पर व्यापक दृष्टि से विचार कर लेती है।

रिजर्व बैंक का एक खास विभाग किसानो के कर्ज से सम्बन्ध रखने वाली समस्या के हल के लिए है। इस देश के लिए यह प्रश्न कितना महत्वपूर्ण है यह बताने की आवश्यकता नही। रिजर्व बैंक-द्वारा सारे विषय की समीक्षा-परीक्षा की गई है और यह ऐलान किया गया है कि अगर सहकारी या कोऑपरेटिव बैंके हमारी शर्ते पूरी कर सकती है तो हम उन्हे उधार देने को तैयार है।

रिजर्व बैंक की जिम्मेवारियो मे एक का सम्बन्ध एक्सचेज को १८ पेंस के करीब टिकाए रखने से है। इसके लिए वह कुछ निर्दिष्ट सीमा के भीतर स्टर्लिंग की खरीद-बिक्री करने को बाध्य है। जब स्टर्लिंग बेचेगी तब १७$\frac{४९}{६४}$ पेंस से नीची रेट से नही—अर्थात् एक्सचेज इससे नीचे नही जा सकता। जब स्टर्लिंग खरीदेगी तब १८$\frac{३}{१६}$ पेंस से ऊची रेट से नही—अर्थात् एक्सचेज इससे ऊपर नही जा सकता।

साधन-सम्पन्न होते हुए भी रिजर्व बैंक को कानूनी मर्य्यादा के भीतर चलना पडता है और वह अपने साधनो का उपयोग केवल कमाई की दृष्टि से नही कर सकती। उसे अपने धन को बराबर ऐसे रूप मे रखना पडता है कि आवश्यकता पडने पर उसे शीघ्र-से-शीघ्र, बिना नुकसान उठाए, मुद्रा मे परिणत कर सके। जो औरो की हिफाजत के लिए है उसे अपनी हिफाजत का सबसे पहले ध्यान रखना पडता है।

१२

साहूकार की समस्या

३ सितम्बर १९३९ को—प्रथम महासमर छिडने के प्राय २५ वर्ष बाद—द्वितीय महासमर की आग धधक उठी और उसकी लपट मे इस देश को फिर आ जाना पडा। उस आग मे भारतीय धन-जन की काफी बडी आहुति पड चुकी है, और अभी पता नही कि हमे इस आहुति को कब तक जारी रखना पडेगा। कहा गया है कि हमारा यह त्याग यज्ञ-कुड मे होम-द्रव्य डालने के समान फल-प्रद होगा। इसमे कहा तक सचाई है, यह भविष्य ही बता सकता है।

अभी तक हमारे त्याग का सबसे बडा नतीजा यह हुआ है कि जहा हम इगलैण्ड के कर्जदार थे वहा अब साहूकार बन गए है। पर इसका यह अर्थ नही कि हमारी सुख-समृद्धि बढ गई है या हमारी दीनता-हीनता कम हो गई है। साहूकार होते हुए भी हमे खाने-पीने को—पहनने को पहले से कम मिल रहा है। इस अभाव के प्रश्न ने इधर कही-कही बडा ही भीषण रूप धारण कर लिया है। कागजी जमा-खर्च मे हम साहूकार जरूर साबित होते है, पर इस साहूकारी की बुनियाद हमारी फाकाकशी है—अर्थात् स्टर्लिंग के रूप मे हम जो धन जमा कर सके है वह पेट काट कर। उस स्टर्लिंग के सम्बन्ध मे तरह-तरह के प्रश्न उठ रहे है—तरह-तरह की आशकाए हो रही है। पर उनकी आलोचना से पहले कुछ और घटनाओ का उल्लेख आवश्यक है।

महासमर छिडते ही सोने के मुकाबिले स्टर्लिंग का विनिमय-मूल्य नीचे गिर पडा। अगस्त मे हुडी की दर ४ ६८ डालर के आसपास थी। सितम्बर मे सरकार को यह दर ४ ०३ के आसपास बाध देनी पडी। लन्दन मे सोने का बाजार २ से ४ सितम्बर और बम्बई मे ४ से ७ सितम्बर तक

बन्द रहा। ५ सितम्बर को इंगलैण्ड मे सोने की खरीद-बिक्री की मनाही कर दी गई। भारतवर्ष मे यह नियम कर दिया गया कि बिना रिजर्व बैंक से लाइसेंस प्राप्त किए कोई भी सोने को न तो बाहर से यहा मगा सकेगा और न यहा से बाहर भेज सकेगा। देश के भीतर सोने की खरीद-बिक्री पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नही किया गया। तब से यहा सोने के दाम पर सामरिक घटनाओ के (जिनमे आशाए और आशकाए भी शामिल है) असर पड़ते रहे है और उनके अनुसार वह घटता-बढता रहा है। मुख्य बात यह है कि आयात और निर्यात-सम्बन्धी नियन्त्रण के कारण यहा का बाजार बाहर के बाजार से पृथक्-सा हो गया है। अब यह आवश्यक नही कि बम्बई मे सोने का दाम लन्दन या न्यूयार्क के दाम का अनुसरण करे। एक औंस खालिस सोने का दाम लन्दन मे १६८ शिलिंग और न्यूयार्क मे ३५ डॉलर चला आ रहा है। पर यहा भारतवर्ष मे दाम उत्तरोत्तर बढता* ही गया है। बम्बई में इधर ऊंचे-से-ऊंचा दाम इस प्रकार रहा है —

	फी तोला रु० आ० पा०
१९३८—३९	३७–१०–६
१९३९—४०	४३– ८–०
१९४०—४१	४८– ८–०
१९४१—४२	५८– ४–०
१९४२—४३	७२– ०–०

चादी का दाम भी बढता ही गया है। उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि इस प्रकार हुई है —

*पुस्तक छपते-छपते (दिसबर, १९४३) बाजार में कुछ मन्दी आ गई है और सोने-चादी के दाम गिरने लगे है। २३ दिसबर को दाम थे— सोना ७०॥) और चादी ११३॥)। इसका एक कारण तो रिजर्व बैंक की बिकवाली है, दूसरा लोगो की यह धारणा है कि महासमर का अन्त अब दूर नहीं है।

१९४२ मे फेडरेशन आव् इण्डियन चेम्बर्स (भारतीय व्यापारी-महासभा) ने इस प्रकार की बिक्री का विरोध करते हुए सरकार को एक आवेदन-पत्र भेजा था, जिसमे लिखा था कि—

"फेडरेशन की कमेटी को यह मालूम नही कि चादी की बिक्री के बारे मे भारत-सरकार और ब्रिटिश-सरकार के बीच क्या समझौता हो चुका है। इस विषय मे सर्वसाधारण को कुछ भी बताया नही जाता और सारी कार्रवाई गुप्त रखी जाती है। कमेटी को इस बात का भी पता नही कि भारत-सरकार लन्दन मे जो चादी बेचती है वह २३॥ पेस की दर से ही या उससे नीचे दाम मे भी। अच्छा होता अगर सरकार स्पष्ट और प्रामाणिक रूप से यह बता देती कि कितनी चादी इगलैण्ड को बेची जा चुकी है, और किस दाम मे।

"युद्ध-सम्बन्धी उद्योग-धन्धो मे चादी का उपयोग अनिवार्य-सा हो गया है, इसलिए इगलैण्ड तथा दूसरे मित्र-राष्ट्रो को इसकी जो सख्त जरूरत है उसे महसूस करते हुए भी हम यह कह देना चाहते है कि जब उस चादी का दाम और भी ऊचा मिल सकता है तब उसे इतने नीचे दाम मे बेच देना इस देश की सम्पत्ति को लुटा देना है।

"हमारी मुद्रा-प्रणाली मे चादी का विशेष स्थान रहा है। इधर सरकार ने रुपए में चादी की मात्रा $\frac{11}{12}$ से घटा कर $\frac{1}{2}$ कर दी है। रुपए मे अब तक जनता का जो विश्वास चला आया है उसको इस कार्रवाई से आघात पहुचने की सम्भावना है। आज नही तो कल सरकार को इस विषय पर पुनर्विचार करना पडेगा और रुपए मे चादी की मात्रा बढाकर फिर वही $\frac{11}{12}$ कर देनी पडेगी। इस दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि सरकार के पास जो कुछ भी चादी हो उसे वह बचाकर रखे, या किसी मित्र-राष्ट्र के हाथ बेचना आवश्यक भी हो तो ऐसे दाम मे बेचे कि लडाई के बाद जब बाजार मे चादी खरीदनी पडे तब उसे किसी तरह का घाटा न हो।"

अमेरिका मे चादी का दाम १० जुलाई १९३९ से प्राय ३५ सेण्ट (फी औंस खालिस चादी) चला आ रहा था। १९४२ मे अमेरिका का मेक्सिको से चादी के दाम के बारे मे नया समझौता हुआ। इसके फल-

है। पर मुद्राओं के विनिमय की दर निर्धारित कर देने के वाद सरकार या रिजर्व वैंक इस विषय मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करती और मुद्राओ की अदला-बदली या खरीद-बिक्री अनियन्त्रित तथा अवाधित रूप मे हुआ करती है ।

पर असाधारण समय मे—विशेषत ऐसे महासमर के समय मे—यह स्थिति नही रह सकती । कई कारणो मे सरकार के लिए इस विनिमय को नियन्त्रित करना—इसपर प्रतिबन्ध लगाना—आवश्यक हो जाता है । आधुनिक लडाई जिन उपायो मे लडी जाती है उनमे आर्थिक व्यवस्था या योजना का बहुत ऊचा स्थान है । इस व्यवस्था या योजना के लिए वडी तैयारिया करनी पडती है—वडी वदिशे वाधनी पडती है । सामान जुटाने मे जो पिछड गया, समझ लीजिए, उसकी हार हो चुकी । और इतने वडे पैमाने पर सामान जुटाना कोई आसान काम नही । यथासभव एक देश को दूसरे से सहायता लेनी ही पडती है—जिसका अर्थ है कि उनके वीच लेन-देन के भुगतान के लिए मुद्राओ का विनिमय अनिवार्य हो जाता है ।

पर यह विनिमय पहले की तरह अनियन्त्रित रूप से होता रहे तो कोई भी देश अपनी आर्थिक स्थिति को अपने काबू मे नही ला सकता। इगलैण्ड का उदाहरण देते है । उसे अमेरिका मे तरह-तरह के सामान खरीदने के लिए डॉलर चाहिए । ऋण लेने की वात छोड दी जाय तो डॉलर प्राप्त करने का प्रधान उपाय यही हो सकता है कि जिन लोगो ने वहा माल बेच रखा है और जिन्हे वहा की मुद्रा मे भुगतान मिला है उन्हे अपने डॉलर सरकार के हवाले कर देने को मजबूर किया जाय । अगर ऐसा नही होता तो वे अपने डॉलर वाजार मे वेच देगे और इनका सभवत ऐसा उपयोग होगा जिसे राष्ट्रीय दृष्टि से दुरुपयोग कहा जा सकता है । हो सकता है कि कोई पैसेवाला अपना पैसा इगलैण्ड से उठा कर अमेरिका ले जाना चाहता था और उसने स्टर्लिग देकर इन डॉलरो को खरीद लिया। हो सकता है कि किसी व्यापारी ने अमेरिका मे कुछ ऐसा माल मगा रखा था जो अमीरो के ठाटवाट को और भी वढाने वाला था और उसने इन डॉलरो को खरीद कर अपना देना चुका दिया। हो सकता है, कोई शख्स सैर-सपाटे के लिए अमेरिका जाना चाहता था या

करना पडता है। जबतक वह निर्दिष्ट रीति से यह आश्वासन नही देता कि वह नियमो की पूरी पाबन्दी कर चुका है या करने जा रहा है तबतक उसे बाहर माल भेजने की इजाजत ही नही मिल सकती। अगर आश्वासन देने के बाद वह किसी नियम का उल्लघन करता है तो कठोर दण्ड का भागी बन जाता है। उसे आरम्भ मे ही यह बताना पडता है कि दाम के भुगतान के बारे मे क्या तय पाया है और यह भुगतान कौन-सी बैक के द्वारा हुआ है या होनेवाला है। फिर उसे विदेश मे माल मगानेवाले के पास सारे कागजात किसी निर्दिष्ट बैक की मार्फत ही भेजने पडते है। माल मगानेवाला जब भुगतान कर देगा तब बैक सारे कागजात उसके हवाले कर देगी और वह जहाज से माल छुडा सकेगा। वह बैक फिर रिजर्व बैक को यह सूचित कर देगी कि भुगतान मिल चुका और उस विदेशी मुद्रा का रिजर्व बैक जो उपयोग मुनासिब समझेगी, करेगी। ऐसे नियन्त्रण के कारण न तो कोई यहा से माल के रूप मे अपना पूजीपल्ला ही बाहर भेज सकता है, न भुगतान में मिली हुई विदेशी मुद्रा का मनमाना उपयोग ही कर सकता है।

यह नियन्त्रण दो-तरफा है, अर्थात् माल भेजनेवाले को ही नही, माल मगानेवाले को भी अब रिजर्व बैक-द्वारा अनुशासित होना पडता है। माल भेजनेवाला तो सरकार को विदेशी मुद्रा दिलाता है, पर माल मगानेवाला उससे विदेशी मुद्रा मागता है— इसलिए आयात-सम्बन्धी नियन्त्रण को निर्यात-सम्बन्धी नियन्त्रण से भी कठोर समझना चाहिए। १९४० मे ही यह नियम कर दिया गया कि बिना सरकार से अनुमति प्राप्त किए कोई भी व्यापारी अमुक-अमुक वस्तु को विदेश से यहा न मगा सकेगा। व्यापार के अलावा और कामो के लिए पैसा बाहर भेजने पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिए गए। १९४२-४३ मे आयात-सम्बन्धी नियन्त्रण और भी सख्त कर दिया गया। अब सरकार जिस चीज को मौजूदा हालत में जरूरी समझती उसीको मगाने की अनुमति मिल सकती थी। इसका उद्देश केवल इतना ही नही था कि विदेश में जो धन प्राप्त हो उसका अनावश्यक वस्तुओ के दाम चुकाने मे दुरुपयोग न होने पावे। और प्रकार के दुरुपयोगो को रोकने के उद्देश से भी आयात-सम्बन्धी नियन्त्रण कठोर

कर दिया गया। अनावश्यक वस्तुओं के निर्माण में अमेरिका की उत्पादन-शक्ति का दुरुपयोग संभव था। फिर, यह भी संभव था कि ऐसी वस्तुओं को वहां से यहां लाने में उस स्थान का दुरुपयोग हो जो जहाजों में मिल सकता था। वास्तव में जहाजों की बड़ी कमी हो रही थी, जितने जहाजों की जरूरत थी उतने मिल नहीं रहे थे। ऐसी स्थिति में आयात को उन्हीं वस्तुओं तक परिमित कर देने का नियम हो गया जो सरकार की दृष्टि में आवश्यक* थीं—बल्कि इस आवश्यकता का भी श्रेणी-विभाजन कर दिया गया और जिस वस्तु की आवश्यकता ऊंचे दर्जे की न हो, उसका आना असम्भवप्राय हो गया।

बैंक आव् इंगलैण्ड ने डॉलर तथा कुछ दूसरी मुद्राओं में पौंड का विनिमय-मूल्य बांध दिया था। पर यह विनिमय-मूल्य ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर ही मान्य हो सकता था। साम्राज्य के बाहर पौंड का मूल्य इन बातों पर निर्भर था कि उसकी मांग के मुकाबिले उसकी 'बिकवाली' कैसी थी और लड़ाई के नतीजे के बारे में बाहरी दुनिया का ख्याल क्या था। इसलिए पौंड की दो दरें रहने लगीं— एक तो बैंक आव् इंगलैण्ड-द्वारा नियंत्रित या निर्धारित दर, दूसरी वह दर जो न्यूयार्क-जैसे अनियंत्रित या स्वतन्त्र बाजार में प्रचलित थी। उस स्वतन्त्र बाजार में पौंड की दर नियन्त्रित दर से नीची या सस्ती रहने लगी—मसलन, जिस समय बैंक आव् इंगलैण्ड-द्वारा निर्धारित दर ४.०३॥ डॉलर थी उस समय न्यूयार्क की बाजार-दर सिर्फ ३.०२ डॉलर थी। इसका एक नतीजा यह हुआ कि भारतवर्ष से अमेरिका जानेवाले माल का दाम डॉलर-मुद्रा में न चुक कर स्टर्लिंग में चुकने लगा। मान लीजिए किसीने यहां से १३।-)। अर्थात् १ पौंड का माल अमेरिका भेजा। वहां अगर सरकारी दर से भुगतान होता है तो माल मंगानेवाले को ४.०३॥ डॉलर देने पड़ते हैं। इस हालत में डॉलर

---

*यह दूसरी बात है कि क्या आवश्यक है और क्या अनावश्यक, इस सम्बन्ध में सरकार का निर्णय कभी-कभी वास्तविकता से दूर—बहुत दूर रहता है।

तो सरकार ले लेगी और यहा से माल भेजनेवाले को रुपए मिल जायगे। पर चूकि न्यूयार्क मे बाजार-दर से पौंड ३ ०२ डॉलर मे ही मिल रहा है, इसलिए वहा माल मगानेवाला उतने मे एक पौंड खरीद कर इगलैण्ड मे दाम चुका देता है और यहा के व्यापारी को १३।-)। मिल जाता है। इस तरीके से भुगतान होने पर सरकार को डॉलर नही मिलते और उस हद तक उसकी भुगतान-सम्बन्धी अपनी कठिनाई बढ जाती है। यही कारण है कि कुछ समय बाद सरकार ने विभिन्न उपायो का अवलम्बन कर उन छिद्रो को प्राय बन्द कर दिया जिनके द्वारा डॉलर-मुद्रा उसकी पहुच से बाहर निकलती जा रही थी।

ब्रिटिश भारत की प्रजा की जो रकम डॉलर के रूप मे जमा थी उसे सरकार ने दिसम्बर १९४० मे स्वायत्त कर ली। जिनके डॉलर ले लिए गए उन्हे बदले मे यहा रिजर्व बैंक मे रुपए दिला दिए गए। निर्ख था १०० डॉलर = ३३० रुपए। १० मार्च १९४१ को सरकार इस दिशा मे एक कदम और आगे बढी। जिन लोगो ने अमेरिका मे कुछ खास सिक्यूरिटीज खरीद रखी थी उनके लिए भी यह लाजिमी कर दिया गया कि वे अपने कागज सरकार के हवाले कर दे और बदले मे उसी निर्ख से रुपए ले ले। पिछले दिन के बाजार-भाव से उन सिक्यूरिटीज की डॉलरो मे जो कीमत हुई उसका यहा रुपयो मे भुगतान कर दिया गया।

रुपए के विनिमय-मूल्य मे सरकार ने किसी प्रकार का हेर-फेर नही किया है और हुडी की दर प्राय १,८ पेंस रहती आई है। चादी का दाम काफी ऊँचा होते हुए भी एक्सचेंज बढा कर इतिहास की पुनरावृत्ति नही की गई है। पाठको को याद होगा कि पिछली लडाई मे चादी की तेजी का नाम लगाकर रुपए के विनिमय-मूल्य को १६ से २४ पेंस (सोना) कर दिया गया था। कहा गया था कि जब रुपए की चादी की कीमत बढ रही है, तब उसका विनिमय-मूल्य बढाए बिना वह चलन मे किस प्रकार रखा जा सकता है? वास्तव मे रुपया प्रतीक-मुद्रा का काम करता था, इसलिए चादी चाहे जितनी महँगी हो रुपए की कीमत मे हेर-फेर नही होना चाहिए था। जैसा कि उस समय भी सरकारी नीति के आलोचको ने कहा था—

अगर चादी महगी हो चली है तो कुछ समय के लिए या तो रुपए मे चादी की मात्रा घटा दीजिए या कागजी रुपए से ही काम चलाइए। अगर गज लोहे के छड का हो और लोहा महँगा हो जाय तो गज किसी और सस्ती चीज का काम मे लाया जायगा या समस्या हल करने के नाम पर गज की नाप ही सोलह मे बत्तीस गिरह कर दी जायगी ? मगर उस समय सरकार पर उस दलील का कुछ भी असर नही हुआ और वह अपने मनकी ही करके रही। इस बार भी चादी का वही हाल है, पर रुपए के विनिमय-मूल्य ने उसमे बाजी ले जाने की कोशिश नही की है। पहले रुपए मे १६५ ग्रेन खालिस चादी होती थी। अब वह ९० ग्रेन कर दी गई है—अर्थात् लम्बाई नापनेवाला गज कुछ हद तक लोहे का बना रहा, पर लोहा महगा होने के कारण उसकी चौडाई या मुटाई आधी कर दी गई*। किसी भी हालत मे चादी के दाम के घटने-बढने का कोई असर हमारे प्रतीक के विनिमय-मूल्य पर नही पडना चाहिए। गनीमत है कि इस बार वह मूल्य बढाया नही गया है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस महासमर मे हमारी आर्थिक स्थिति की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण बात यह हुई है कि विदेश मे हमने अपना ऋण चुकाकर अब कुछ पूजी-पत्ला इकट्ठा कर लिया है।

पहले हम इगलैण्ड के कर्जदार थे—अब इगलैण्ड हमारा कर्जदार है। यह परिवर्तन इस कारण हुआ है कि इगलैण्ड हमसे जो कुछ ले रहा है उसकी पूरी कीमत चुकाने मे असमर्थ है, लेहाजा उसने हमसे उधार लेना शुरु किया है। हमने इस सिलसिले मे पहले अपना कर्ज उतारा, फिर उसे उधार देते गए। यो इस लडाई के जमाने मे हम कर्जदार से साहूकार बन गए।

स्टर्लिंग मे हमारा कर्ज या देना कब कितना था यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा। इसमे १८ पेंस के हिसाब से पौंड स्टर्लिंग के रुपए कर दिए गए है —

---

*देखिए फुटनोट, पृष्ट १७२ और १७३

मार्च के अन्त में—	करोड रुपए
१९१४	२६५ ८१
१९१९	३०४ ०८
१९२४	३९७ ७६
१९२९	४७२ ७८
१९३४	५१२ १५
१९३९	४६९ १०
१९४३	५७ ४१

अर्थात् लडाई छिडने से पहले जहा लन्दन मे हमारा देना प्राय ४६९ करोड था वहा मार्च १९४३ के अन्त मे प्राय ५७॥ करोड ही रह गया था। बाकी देना या कर्ज हम अपने सिर से उतार चुके थे। और इसके बाद लन्दन मे हमारा जो पावना हो चला था उसके भी, उसी १८ पेंस की दर से, मार्च १९४३ के अन्त मे प्राय ५११ करोड रुपए होते थे। जबसे लडाई छिडी तबसे ३१ मार्च १९४३ तक का हिसाब इस प्रकार था —

जमा	करोड रुपए
१—अगस्त १९३९ मे रिजर्व बैंक के पास स्टर्लिंग	६४
२—समय-समय पर रिजर्व बैंक ने जो स्टर्लिंग बाजार मे खरीदा	३८७
३—ब्रिटिश सरकार से जो भुगतान स्टर्लिंग मे मिला	५७१
	१,०२२

खर्च	
१—मार्च १९४३ के अन्त तक भारतवर्ष का कर्ज चुकाने मे स्टर्लिंग लगा	३८०
२—दूसरी देनदारी चुकाने मे स्टर्लिंग लगा	१३१
	५११

बाकी ५११ करोड रुपए का स्टर्लिंग मार्च १९४३ के अन्त मे रिजर्व बैक के पास लन्दन मे जमा था।

ऊपर के जमा-खर्च मे रिजर्व बैक-द्वारा स्टर्लिंग की खरीद ३८७ करोड रुपए दिखाई गई है। बाजार मे स्टर्लिंग बेचनेवाले वे ही हो सकते है जिन्होने अपना माल या श्रम बेच कर इगलैण्ड मे उसे हासिल किया है। साधारणत यहा जितने रुपए का माल बाहर से आता है उससे अधिक का माल यहा से बाहर जाता है। ऐसी स्थिति मे जिस हद तक यह आधिक्य होता है उस हद तक दूसरे देश हमारे देनदार बन जाते है। अगर बात इतनी ही होती तो हम आरम्भ से ही साहूकार होते और कभी हमारे इगलैण्ड के कर्जदार बनने की नौबत न आती। पर होना यह रहा कि व्यापार मे हमारा जो कुछ पावना निकला उसे तो इगलैण्ड ने ले ही लिया, जमा-खर्च के मुताबिक हमे उल्टा देनदार बना दिया।

ईस्ट इडिया कम्पनी की अपनी पूजी उसके कारोबार के लिए काफी नही थी, इसलिए बगाल मे उसे बराबर जगत्सेठ की कोठी से कर्ज लेना पडता था। अन्त मे जगत्सेठ के लाखो रुपए डूब भी गए, क्योकि प्रभुता हो जाने पर कम्पनी के सचालको ने अपना देना चुकाने से इनकार कर दिया। अब इस देश का बाकायदा दोहन होने लगा—हमारे विदेशी शासक हमारी पराधीनता से जहा तक फायदा उठा सकते थे उठाने लगे। फिर एक दिन कम्पनी को रगमच से हटना पडा और शासन की बागडोर ब्रिटिश सरकार ने खुद अपने हाथ मे ले ली। पर अब हमारा बोझ और भी भारी हो चला। कम्पनी को जो हर्जाना दिया गया, इस देश के आधिपत्य की जो कीमत चुकाई गई और परिस्थिति को काबू मे लाने के लिए इगलैण्ड को जो खर्च करना पडा उस भारी रकम के देनदार हम ठहराए गए। और फिर तो यह सिलसिला चला कि हम माल-ब-माल इगलैण्ड से लेने की अपेक्षा कही अधिक माल इगलैण्ड को देते गए, और फिर भी ऋण से हमारा पिण्ड न छूटा, बल्कि हम देनदारी के दलदल मे फसते ही गए।

श्रीबिड़लाजी ने इस विषय का विवेचन करते हुए एक जगह दिखाया है कि १८९८ और १९२० के बीच हमने बाहर से जितना

रुपए का माल लिया उसने प्राय २८ अरब रुपए अधिक का माल बाहर भेजा। इस माल में सोना-चादी शामिल नही है। इतने समय में बाहर से प्राय १४ अरब की सोना-चादी यहा आई। तो इस हिसाब से हमारा १४ अरब पावना रहा। पर असलियत मे हम इस रकम से हाथ धो चुके थे और इगलैण्ड के काफी बडे देनदार बन चुके थे। १९२९ मे हमारी इस देनदारी का तखमीना प्राय १० अरब रुपया किया गया था। यह देनदारी स्टर्लिंग-ऋण के ही रूपमे नही रही है। अगरेजो ने हमे यहा भी जो कुछ उधार दे रखा है या यहा वाणिज्य-व्यवसाय मे जो कुछ लगा रखा है उस सबको इस देनदारी के अन्तर्गत समझिए।

जब से यह सिलसिला चला हम उस स्टर्लिंग को जो, आयात से निर्यात अधिक होने के कारण, हमे भुगतान मे मिलता गया है, भारत-सचिव को यह कह कर अर्पित करते आए है कि—

"लीजिए—अपनी दरिद्रता को बरकरार रखते हुए हम जो कुछ बचा सके है उसे स्वायत्त कीजिए। हमारे देश मे जितनी सरकारी नौकरिया अपने भाईबन्द को दे सकते है देते जाइए और इस रकम से उनकी पेन्शने चुकाइए—उन्हे ऊचे से ऊचा भत्ता दीजिए। यह जरूरी नही कि सरहदी लडाइयो का ही खर्च हमसे वसूल किया जाय, क्योकि हमारे देश की सरहद वही है जहा इगलैण्ड को लडाई लडनी हो। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार या हित-रक्षा के लिए भारतवर्ष के बाहर लडी हुई कितनी ही लडाइयो का खर्च हमसे वसूल किया जा चुका है—आगे भी ऐसे सिलसिले मे आप जो चाहे हमारे नाम लिख कर वसूल कर सकते है। वेतन, पेन्शन, पुरस्कार, भत्ता, लडाई-खर्च—इनके अलावा और भी जिस मद मे चाहे इस स्टर्लिंग का उपयोग कर सकते है। लाल-समुद्र या भारत-समुद्र मे काम करनेवाली किसी ब्रिटिश कम्पनी को हर्जाना देना है? इगलैण्ड मे किसी पागलखाने को इमदाद पहुचाना है? लन्दन मे आए हुए तुर्की के सुल्तान के मनोरजन के लिए नाच-रग का आयोजन करना है? आपके बस की बात है कि जो बोझ चाहे हम पर लाद दे, जिस रकम के लिए चाहे हमें देनदार बना दे और सूद लगा कर उसे हमसे पाई-पाई वसूल कर ले।"

आज भारतवर्ष लडाई से पहले की अपेक्षा अधिक दीन और दुखी है। अपने को भूखा रखकर हमने मित्र-राष्ट्रो को अन्न दिया है—अपने को नग्न रखकर हमने उनके लिए वस्त्र जुटाया है। यही बात और दिशाओ मे भी समझनी चाहिए। हमारे कारखाने बडी ही कठिनाइयो का सामना करते हुए चल रहे है। विशेषज्ञो की कमी है। जो कच्चा माल मिलता भी है उसे कारखाने तक पहुँचाने मे सौ-सौ दिक्कते उठानी पडती है। कल-पुरजो की घिसाई का कोई ठिकाना नही। और नियत्रण के नाम पर तरह-तरह की अडचने अलग डाली जाती है। फिर इतनी कठिनाइयो के होते हुए भी कारखानेवाले जो माल तैयार कर पाते है उसका काफी बडा अश सरकार ले लेती है। ऐसी स्थिति मे यही कहा जा सकता है कि हमें स्वय उपवास कर अपने भोजन की सामग्री दूसरो को दे देनी पडती है।

उस सामग्री की कीमत हमे न तो जिन्सो मे मिली है, न सोने-चादी मे। उलटा हमारी ही चादी इगलैड को बेच दी गई है। हमे जो डॉलर प्राप्त होते है वे भी हमसे ले लिए जाते है। हमे कीमत चुकाई जाती है स्टर्लिग में, क्योकि इगलैड उसे किसी भी दूसरे रूप मे चुकाने मे असमर्थ है। ३१ मार्च १९४३ तक हमे ५७१ करोड रु० का भुगतान मिल चुका था। इधर और भुगतान मिला है। सब ले-देकर ३१ दिसम्बर १९४३ को रिजर्व बैक के नोट-प्रसार-विभाग मे प्राय ७३५ करोड रुपए का स्टर्लिग जमा था। इसके अलावा उसके बैकिंग विभाग मे, इस देश के बाहर, प्राय. १२० करोड रुपए रोकड और सिक्यूरिटीज के रूप मे थे। याद रखने की बात है कि हमने अपना प्राय सारा स्टर्लिग-ऋण चुका दिया है, और अब हम इगलैड के कर्जदार नही बल्कि साहूकार है। जब तक लडाई जारी रहेगी, इगलैड का उधार लेना जारी रहेगा और हमारे पावने की रकम बढती ही जावेगी।

अब हमारे सामने प्रश्न यह उपस्थित है कि हमने वहा जो कुछ जमा किया है या करते जायेगे उसे कब और किस रूप में यहा ला सकेगे?

जब हम इगलैंड के कर्जदार थे तब उसे यह चिन्ता रहती थी कि कही शक्तिशाली होने पर भारतवासी अपना देना चुकाने से इनकार न कर दे, और उसकी ओर से बराबर इस बात पर जोर दिया जाता था कि स्वराज्य-सम्बन्धी विधान या सघटन मे उसके हित के सरक्षण के लिए खास व्यवस्था होनी चाहिए। अब वह तो निश्चिन्त हो गया और तरह-तरह की चिन्ताए हमको होने लगी है। आर्थिक क्षेत्र में इगलैंड की आज तक की करतूतो को देखते हुए, हमारा यो चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। पर इस विषय के विवेचन मे हम यह मानकर ही आगे बढ सकते है कि इगलैंड न तो जोर-जबर्दस्ती करेगा न टाट उलटेगा—बल्कि हमसे जो कुछ ले चुका है या लेता जा रहा है उसे एक दिन पाई-पाई वापस कर देगा।

श्रीबिडला जी ने 'कर्जदार से साहूकार' नामक पुस्तिका* मे बताया है कि इस सिलसिले मे हमारी माग क्या होनी चाहिए। वह लिखते है—

"ब्रिटिश सरकार से हमारी पहली माग यह होनी चाहिए कि हमारी स्टर्लिंग की बचत रकम, जो अभी है या बाद को इकट्ठी होगी, किसी तरह नष्ट न की जायगी, इसका वह हमे आश्वासन दे।

"पिछली लडाई का अनुभव इस सिलसिले मे सर्वथा सुखद नही कहा जा सकता। यह बात छिपी नही है कि पिछली लडाई के बहुत से खर्च, जो ब्रिटिश सरकार को देने चाहिए थे वे हिन्दुस्तान के मत्थे मढे गए। अगर हिन्दुस्तान अपने भाग्य का निर्णय स्वय कर सकता, तो जितनी रकम उसे लडाई के खर्च के हिसाब मे मिली थी उससे कही ज्यादा रकम मिलती। परन्तु जो मिला था वह भी बाद मे योही बन्दर-बाट मे गायब हो गया।

"...अगर हिन्दुस्तान सावधान न रहा तो इतिहास की पुनरावृत्ति हो सकती है। अत हम बराबर सावधान रहना चाहिए और यह माग करनी चाहिए कि जिस खर्चे मे हमारी अपनी सीमाओ की रक्षा का सीधा

---

* प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल

सम्बन्ध नही है वह हिन्दुस्तान के नाम न लिखा जाय, न तो भविष्य में पेंशन चुकाने के लिए आज ही ब्रिटिश सरकार को एक मोटी रकम दे दी जाय और न युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण के लिए कोई रकम अलग कर दी जाय। हमारी रकम पर हमारा पूरा कब्जा रहे, क्योंकि हमारी रकम हमारी अपनी है। किसीको हमसे यह कहने का अधिकार नही होना चाहिए कि अपने धन का हम क्या उपयोग करे, और क्या न करे। इस मामले में इससे कम कुछ भी हमको स्वीकार नही हो सकता।

'परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात इस बात की सावधानी रखना है कि भविष्य मे हमारे बचे हुए स्टर्लिंग की कीमत कम न हो जाय।"

इस विषयको कुछ विस्तार से समझाने की आवश्यकता है।

मान लिया कि स्टर्लिंग के बदले हमे स्टर्लिंग ही मिलेगा, पर हो सकता है कि आज स्टर्लिंग की जो क्रय-शक्ति है वह कल न रहे—आज स्टर्लिंग से जितना माल खरीदा जा सकता है कल उतना न खरीदा जा सके। उस हालत में हमको बडी हानि उठानी पडेगी। जब हमने इगलैंड को कर्ज दिया उस समय स्टर्लिंग की जिन्सो के रूप मे जो कीमत थी वह कीमत बनी रही तब तो चिन्ता की कोई बात नही, पर अगर वह कीमत गिर गई—अर्थात् स्टर्लिंग के बदले जिन्से कम मिलने लगी—तो हमको क्षतिग्रस्त होना पडा। श्रीबिडलाजी का कहना है कि उस अवस्था में ब्रिटिश सरकार को हमारी क्षतिपूर्ति करने को तैयार रहना चाहिए। इसकी व्यवस्था यो हो सकती है कि हमारा जो स्टर्लिंग जमा हो उसकी मालियत जिन्सो मे मुकर्रर कर दी जाय और कर्ज चुकाने के समय अगर वह मालियत कम हो तो हमे और रकम देकर वह कमी पूरी कर दी जाय ताकि हमे कोई घाटा उठाना न पडे। स्टर्लिंग की क्रय-शक्ति मे क्या कमी हुई है यह 'इण्डेक्स नम्बर्स' अर्थात् 'सूचक अंको' से जाना जा सकता है और तदनुसार क्षति-पूर्ति की जा सकती है। मान लीजिए, जिस समय इगलैंड को हमने कर्ज दिया उस समय वहा जिन्सो के दामो का 'इण्डेक्स नम्बर' १२५ था, और जिस समय वह कर्ज चुका उस समय 'इण्डेक्स नम्बर' था २५०। तो इसके माने हुए कि इस बीच मे

होगी। यत्रादि-जैसे साधनो के दाम ऊचे रहने की तो और भी अधिक सभावना है, क्योकि ऐसी चीजे इगलैण्ड से विशेषत बाहर जानेवाली है। और भारतवर्ष को अपनी उत्पादन-शक्ति वढाने के लिए—नए कल-कारखाने खोलने के लिए इगलैण्ड से प्राय ऐसी ही चीजे चाहिए।

पर हम मालियत की ऐसी घटा-वढी के झमेले मे पडे ही क्यो? राष्ट्र की ओर से जुआ खेलने या दाव लगाने का किसीको अधिकार नही है। हमारी माग तो यही होनी चाहिए कि हमने मालियत के रूप में जो कुछ दिया है हमे वह वापस मिलना चाहिए—न कम, न ज्यादा। जहा आग लगने या जहाज डूबने की सभावना कम—वहुत कम—होती है वहा भी कुशल व्यवसायी या व्यापारी बीमा कराए विना नही रहते। वे कभी ऐसा तर्क नही करते कि जब सभावना इतनी कम है तब बीमा कराने के खर्च का वोझ क्यो उठाया जाय? फिर हमारी माग यह क्यो न हो कि इगलैण्ड मे जमा होनेवाली हमारी रकम का ब्रिटिश सरकार बीमा कर दे—अर्थात् स्टर्लिग की मालियत घटने की सूरत मे हमारी क्षति-पूर्ति करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ले। कौन कह सकता है कि यह प्रस्ताव किसी भी अश मे अनुचित या अनुपयुक्त है?

इगलैण्ड का स्टर्लिग ऋण तो हमने चुका दिया। पर इस देश मे उसने अपना जो धन वाणिज्य-व्यवसायमे लगा रखा है—और इस प्रकार हमे कर्ज दे रखा है—वह अभीतक हम नही चुका पाए है। कनाडा, दक्षिण अफ्रीका जैसे साम्राज्यान्तर्गत दूसरे देशो ने, ऐसी ही परिस्थिति से लाभ उठाकर, अपने इस प्रकार के ऋण को वहुत वडी हद तक चुका दिया है। पर वहा की तरह यहा भी यह तभी हो सकता है जब कि सरकार ब्रिटिश व्यवसायियो या पूजीपतियो को अपना-अपना भुगतान लेकर हमारा वोझ हलका करने को वाध्य करे।

मुख्य वात यह है कि सारा ऋण चुका देने के वाद हमारा जो पावना निकले वह हमे जिन्सो के—अर्थात् उत्पादन-सम्वन्धी साधनो के—रूप मे अनतिविलम्ब चुका दिया जाय। इसमें न कोई अडचन डाली जाय, न कोई आनाकानी हो।

(१) हमारी मुद्रा-नीति का प्रधान लक्ष्य यहा के किसानो को तथा अन्य उत्पादको को अधिक-से-अधिक लाभ पहुचाना होता—न कि ब्रिटिश व्यवसायियो या कर्मचारियो को।

(२) १८९३ मे चादी की टकसाल बन्द न की जाती।

(३) कभी सोने का मान या स्टैण्डर्ड ग्रहण भी किया जाता तो दूसरे देश को लाभ पहुचाने के उद्देश से किसी विकृत रूप मे नही।

(४) सोना भारतवर्ष मे सचित किया जाता, सात समुद्र-पार इगलैण्ड मे नही। और इस बात का बराबर ध्यान रखा जाता कि हमारे नोटो की पुश्ती के लिए हमारे पास अधिक-से-अधिक सोना हो।

(५) भारतवर्ष मे ब्रिटिश माल की खपत बढाने तथा ब्रिटिश कर्मचारियो को लाभान्वित करने के उद्देश से रुपए का विनिमय-मूल्य कृत्रिम उपायो से ऊचा न किया जाता। और इन प्रयत्नो की सफलता के लिए वह भयानक गिरावटी नीति काम मे न लाई जाती जिससे समय-समय पर हमारी अमित हानि हुई है।

(६) रुपए का विनिमय-मूल्य १८९३ मे १६ पेंस (सोना) न किया जाता, पर एक बार कर देने पर उसमें ये हेरफेर हर्गिज न किए जाते —

१९१९ मे २४ पेंस (सोना)
१९२७ मे १८ पेंस (सोना)

(७) २४ पेंसवाली दर को टिकाने के लिए उन दामो उलटी हुंडिया न बेची जाती और गिरते हुए को उठाने के प्रयत्न मे हमारे करोड रुपए बरबाद न किए जाते।

(८) १९३१ मे जब रुपए का सोने से पल्ला छूट गया तब उसका स्टर्लिंग से गठबन्धन न किया जाता।

(९) मन्दी का दौर-दौरा होने पर ऐसी मुद्रा-नीति बरती जाती जो दामो को ऊपर उठाने मे सहायक होती—न कि वैसी जिसने उन्हे और भी नीचे गिरा दिया।

(१०) अरबो रुपए का सोना इस देश से बाहर न जाने दिया जाता।

खोल देने के पक्ष मे कैसे हूं ? मैं उत्तर देता हू कि यह प्रश्न एक्सपोर्ट या इम्पोर्ट का नही, यह तो देश की भलाई का प्रश्न है। देश की उत्पादन-शक्ति बढ जाय तो एक्सपोर्टर और इम्पोर्टर दोनो ही फायदे में रहेगे। फर्क इतना ही है कि एक्सपोर्टर फौरन फायदा उठा लेगा और इम्पोर्टर को—अर्थात् मुझको कुछ देर ठहरना पडेगा।"* पर मि० ग्राहम-जैसे विचार रखनेवाले ब्रिटिश व्यापारी या पदाधिकारी विरले ही हुए हैं। कलकत्ते से लन्दन तक उदारता अथवा दूरदर्शिता का नितान्त अभाव-सा रहा है। इगलैण्ड के दृष्टिकोण में ऐसी सकीर्णता न होती तो वह, इस देश मे, छोटे स्वार्थ के सामने अपने वडे स्वार्थ को देखने मे असमर्थ न होता और भारतवर्ष को खुशहाल वना कर अपनी खुशहाली की नीव को आज से कही ज्यादा मजबूत बना लेता।

असलियत यह है कि उसने इस देश में ऐसी नीति से काम लिया जो हमारी खुशहाली को आगे न बढाकर पीछे धकेलनेवाली थी। खासकर यहा की मुद्रा-नीति ऐसी रखी गई जो इगलैण्ड की अपनी दृष्टि से श्रेयस्कर थी, न कि भारतवर्ष की।

अगर भारतवासी अपनी उत्पादन-शक्ति वढा लेते है तो यह इगलैण्ड के हक मे आर्थिक ही नहीं, राजनैतिक दृष्टि से भी बुरा होता है—इस कुविचार ने यहा की मुद्रा-नीति वैसी न होने दी जिससे यहा के उत्पादक-वर्ग को यथेष्ट सहायता मिल सकती थी—जो उद्योग-धधो का मुद्रा-सम्बन्धी अभाव दूर कर उन्हे आगे बढने के लिए उत्साहित कर सकती थी, जिससे मरुभूमि मे भागीरथी वहाई जा सकती थी और बालू को सोने में परिणत किया जा सकता था। पर यह सब न होकर हुआ कुछ और ही, कारण कि "रोपै पेड बबूल को, आम कहा ते होय ?"

उस मुद्रा-नीति का उद्देश हो गया रुपए की मालियत—चाहे जैसे हो—ऊंची-से-ऊची रखना, जिससे यहा रुपए कमानेवाले ब्रिटिश कर्मचारी या व्यापारी अपनी-अपनी कमाई को अधिक-से-अधिक स्टर्लिंग मे तबदील

---

* पृष्ठ १३४

कर सके—जिससे ब्रिटिश माल यहां सस्ता बिक स अधिक-से-अधिक खपत हो सके।

पर इगलैण्ड के लाभ का अर्थ था भारतवर्ष की ह की मालियत बढती है तब यहा दाम गिरते है। यह स नुकसान से बचने के लिए हम अपने दाम बढा सके।, । नही बढी है या हमारे प्रतियोगी पुराने दामो मे ही म। तो हमे ऊचे दाम मिल ही कैसे सकते है ? तो बाहर । ही बने रहे और हमारे प्रतीक की कीमत या मालियत बढ उत्पादको को कम रुपए मिलने लगे। उनकी लागत । रही जो पहले थी। लगान वही देना पडता है, कर वही दे महाजन को सूद वही देना पडता है। और सबसे बडी ब मजूरी भी वही देनी पडती है। अगर उत्पादक मजूरो से प कि रुपए का विनिमय-मूल्य बढने के कारण यहा गए है, अब आप लोग अपनी मजूरी म कटौती मजूर कीजि मानते नही। झगडा बढता है तो हडताल होती है, कल-कार। हो जाते है। यो भी उत्पादक ऐसी अवस्था मे एक हद तक ट काम-काज जारी रख सकते है। जब वे देखेगे कि बोझ बेहद गया तब वे उसे जमीन पर पटक देगे और उत्पादन के धधे मे ०। लेगे। उद्योग-धधो के बन्द होने से बेकारी बढेगी, धन-धान्य की घटेगी, लोग और भी दीन-हीन-विपन्न हो जायगे। सरकार की मुद्रा के कारण यहा ऐसी स्थिति एक नही, अनेक बार उत्पन्न हो चुकी

जब-जब यहा सरकार ने मुद्रा की मालियत—या यो कहिए कि दर—ऊची बाधी है तब-तब उसे अभीष्ट-सिद्धि के लिए गिरावट-नी अवलम्बन करना पडा है। किसी चीज की बाजार-दर १२ पैस है, सरकार चाहती है कि वह १६ पैस हो जाय, तो यह । स हो सकता। स्पष्ट है कि अगर उस चीज की पैदाइश सरकार के अपने हाथ म है वह उसमे कमी करके—उस वस्तु को दुर्लभ बनाके—बाजार म ऊची दर चढा सकती है।

बरसो से रुपए के सम्बन्ध मे सरकार यही करती आई है। १८९३ मे चादी की टकसाल का दरवाजा सर्व-साधारण के लिए बन्द कर दिया गया। अब मुद्रा का प्रसार सरकार की अपनी मर्जी पर रह गया। जब चाहे जितना करे, न करे। रुपए की वह जो कीमत मागती है, अगर लोग उसे देने को तैयार नही है तो उन्हें अपनी बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए रुपए मिलने के नही। हा, मुद्रा-प्रसार रोक कर ही सरकार सन्तुष्ट नही हुई। जब उसने देखा कि हाथ खीच लेने से ही काम नही चलता तब उसने, गिरावट की दिशा मे और आगे बढकर, तरह-तरह की कारसाजिया शुरू कर दी। उद्देश था मुद्रा के प्रसार को समेट लेना—चलन से जहा तक हो सके रुपयो को खेंच लेना। ऊचे-से-ऊचे व्याज पर कर्ज लेकर, बाजार मे रुपए की भीषण टान या तगी पैदा कर दी गई। जो रुपए नोटो के रूप मे आए वे जला दिए गए—जो चादी के रूप मे आए वे गला दिए गए।

मुद्रा के अभाव के कारण दाम गिरे, और दाम गिरने से तरह-तरह के सकट उपस्थित हो गए। उत्पादन की गति या तो बन्द हो गई या बिलकुल रुक गई, किसानो की मुसीबत खास तौर से बढ गई। आय कम हो जाने के कारण लोगो की क्रय-शक्ति क्षीण हो गई और देश भर मे दुख-दारिद्य का विस्तार हो गया। ऐसी स्थिति मे सरकार की अपनी आय कम हुए विना कब रह सकती थी ? पर जब उसकी आय घटी तब करो के रूप मे प्रजा का बोझ और भी भारी कर दिया गया। इस प्रकार हर ओर से वही तग-तबाह की गई।

पर इस गिरावट-नीति के अवलम्बन का एक कुफल और हुआ। जब रुपए की दर ऊची कर दी जाती है अर्थात् स्टर्लिंग सस्ता कर दिया जाता है तब स्वभावत स्टर्लिंग की माग बढ जाती है। यह माग उस हालत मे और भी अधिक होती है जब लोग समझते है कि इतनी ऊची दर को टिकाने मे सरकार कभी सफल न होगी।

मान लीजिए, आज १ रुपए के बदले सरकार ३० पेस स्टर्लिंग देने को तैयार है और बाजार का विश्वास है कि यह दर ठहरनेवाली नही

फिर एक बार लडाई छिडी और इगलैण्ड भारतवर्ष मे धन-जन-सम्बन्धी जितनी सहायता ले सकता था, लेने लगा। इगलैण्ड हम से जो कुछ लेता है उसकी कीमत सोने-चादी या डॉलर-जैसी मुद्रा मे चुकाने में असमर्थ है, इसलिए वह सारा भुगतान कागजी स्टर्लिंग मे करता है। भारत-सचिव को ब्रिटिश सरकार से जो स्टर्लिंग प्राप्त होता है वह उसे रिजर्व बैंक को देकर उससे यहा सरकार को रुपए दिला देते है। उस स्टर्लिंग से सिक्यूरिटीज खरीद कर रिजर्व बैंक की लन्दन-शाखा मे रख दी जाती है और यहा उनके मद्दे नोट निकाल कर चलन मे डाल दिए जाते है। लन्दन में प्राप्त होनेवाले स्टर्लिंग का एक हिस्सा भारतवर्ष के ऋण को चुकाने मे खर्च कर दिया गया है, फिर भी इस समय वहा प्राय ८५० करोड का स्टर्लिंग जमा है। यो भारतवर्ष कर्जदार से साहूकार बन गया है, और इस समय हमे चिन्ता है तो इस बात की, कि इगलैण्ड से हमारा यह पावना कब और किस रूप मे वसूल हो सकेगा।

ऊपर कहा जा चुका है कि उस स्टर्लिंग के मद्दे यहा नोटो के रूप मे रुपए जारी कर दिए गए है। इस समय नोट-प्रसार प्राय ८५० करोड है। लडाई से पहले यह प्राय २१७ करोड था। मुद्रा के परिमाण मे यह वृद्धि 'फुलावट' कही जा सकती है या नही ?

इसके उत्तर के लिए मीमासा-भाग का तृतीय अध्याय देखना चाहिए। वहा फुलावट की परिभाषा यह दी गई है—"आवश्यकता से अधिक • हद से बाहर नोटो का चलण", और बताया गया है कि "यह तरीका तभी काम मे लाया जाता है जब कि सरकार आर्थिक कठिनाइयो में फसी हुई होती है या दिवालिया बनने की राह पर होती है।"

भारत-सरकार की स्थिति ऐसी नही कही जा सकती। न तो वह आर्थिक कठिनाइयो मे फसी हुई है, न दिवालिया बनने की राह पर है। यहा जो नोट-प्रसार हुआ है उसे मीमासा-भाग के लेखक के शब्दो मे "स्वाभाविक विस्तार" कहना ही उपयुक्त होगा। यहा भारत-सरकार को आर्थिक सकट से उबारने के लिए नोट नही छापे गए है। यहा तो इतना ही हुआ है कि इस देश की उत्पादन-शक्ति बढ़ी है, दाम बढे है,

परिशिष्ट

१

जिन्सों का आयात और निर्यात*

साल	आयात	निर्यात	आयात से निर्यात अधिक
		लाख रुपए	
१९०९–१० से १९१३–१४ तक का सालाना औसत	१४५,८५	२२४,१२	७८,२७
१९१४–१५ से १९१८–१९ तक का सालाना औसत	१४७,८०	२२४,११	७६,३१
१९१९–२० से १९२३–२४ तक का सालाना औसत	२५४,०५	३००,९६	४६,९१
१९२४–२५ से १९२८–२९ तक का सालाना औसत	२४१,४३	३५१,९२	११०,४९
१९२९—३०	२४०,८०	३१७,९३	७७,१३
१९३०—३१	१६४,८०	२२५,६४	६०.८४
१९३१—३२	१२६,३७	१६०,५५	३४,१८
१९३२—३३	१३२,५९	१३५,४९	२,९०
१९३३—३४	११५,३६	१५०,६७	३५,३१
१९३४—३५	१३२,२९	१५५,२२	२२,९३
१९३५—३६	१३४,४२	१६४,२९	२९ ८७
१९३६—३७	१२५,२४	२०२,३७	७७,१३

*जो माल भारत-सरकार ने मगाया या बाहर भेजा वह इस तालिका के बाहर है।

१९३७—३८ से बर्मा ब्रिटिश भारतवर्ष का अग नहीं है।

१९२५–२६	+६,१३५,५८१	+३४,८५,४५,७९९
१९२६–२७	+३,३८५,५२९	+१९,४०,०५,४४८
१९२७–२८	+३,१८१,७५९	+१८,१०,००,०२३
१९२८–२९	+३,७८५,४४१	+२१,१९,८६,९७८
१९२९–३०	+२,५२३,५६२	+१४,२२,०८,३९६
१९३०–३१	+२,२४२,६५३	+१२,७५,१८,११५
१९३१–३२	–७,६२९,३७७	–५७,९७,२७,८४२
१९३२–३३	–८,३५३,८२९	–६५,५२,२७,९५६
१९३३–३४	–६,६९५,२९८	–५७,०५,३५,९६१
१९३४–३५	–५,६९४,८२०	–५२,५३,७४,६०७
१९३५–३६	–४,०१९,२६२	–३७,३५,५९,९५५
१९३६–३७	–३,०११,०३६	–२७,८४,६१,१२९
१९३७–३८	–१,७६६,८१७	–१६,३३,१८,१२९
१९३८–३९	–२,३८७,६४७	–२३,२६,०२,०६८
१९३९–४०	–४,१५५,३४३	–४४,६४,३०,४२२
१९००–०१ से १९३०–३१ तक ३१ वर्षों का जोड	+८९,२४४,५९२	+४,४७,७५,४७,८२९
१९३१–३२ से १९३९–४० तक ९ वर्षों का जोड	–४३,७१३,४२९	–३,८२,५२,३८,०६९

३

चांदी का आयात (+) या निर्यात* (–)

साल	औंस में वजन	रुपयों मे कीमत
१९००–०१ से १९०४–०५ तक का सालाना औसत	+५७,०४९,२७८	+१०,११,४१,९१४

* देखिए फुटनोट, तालिका २ (परिशिष्ट)

१९०५–०६ मे १९०९–१० तक का मालाना औसत	+८७,०३७,३७२	+१५,८५,४४,०३०
१९१०–११ मे १९१४–१५ तक का सालाना औसत	+६१,०११,३०१	+१०,६१,४१,३२३
१९१५–१६ मे १९१९–२० तक का सालाना औसत	+१०६,७२५,६१५	+२७,९६,३८,६२५
१९२०–२१ मे १९२४–२५ तक का सालाना औमत	+ ७३,६०८,६२३	+१५,७४,१३,८२७
१९२५–२६	+ ९३,३६३,७५४	+१७,१२,४१,१५०
१९२६–२७	+१२४,२४२,३४५	+१९,८६,८०,३३५
१९२७–२८	+ ९२,८२१,८१३	+१३,८३,६४,६२७
१९२८–२९	+ ६३,८२०,३०९	+ ९,७७,०६,९२६
१९२९–३०	+ ६२,५२०,५४४	+ ८,६२,१२,१९८
१९३०–३१	+ ८०,५३५,९३५	+१०,०७,९३,०५६
१९३१–३२	− ११,१४१,२८१	− ४२,१७,०८८
१९३२–३३	− २४,५१७,२९२	− २,०१,३०,९५१
१९३३–३४	− ५२,९८९,०९०	− ६,३५,७१,४२६
१९३४–३५	− ३८,६४३,८९४	− ५,४०,६४,८०२
१९३५–३६	+ १,५१६,०७८	− ५७,३४,७१९
१९३६–३७	+११०,१११,४६५	+१३,५९,१७,०२४
१९३७–३८	+ ११,९४५,२२३	+ १,५०,८२,८३५
भारतवर्ष	+ १५,७७८,९८४	+ १,५७,२४,२९०
वर्मा	− ६,०३१,९९२	− ४४,१९,५८९
१९३८–३९	+ ४,०३६,५७८	+ ५७,९१,६०६
भारतवर्ष	+ ११,८९९,९६०	+ १,६८,५२,७८०
बर्मा	− ८,३०३,२७५	− १,०७,९४,०६३
१९३९–४०	+ १३,८२२,००६	+ १,४८,४४,२८७
भारतवर्ष	+ १४,८०६,११७	+ ८५,६२,९७१
बर्मा	− ८०४,३६२	+ ८१,८०,९८६

४

नोट-प्रसार

लाख रुपए

(साल के अन्त मे)	कुल नोट	सार्वजनिक चलन मे
१८९९–१९००	२८,७४	२२,१०
१९०९–१०	५४,४१	३९,९९
१९१३–१४	६६,१२	४९,९७
१९१८–१९	१,५३,४६	१,३३,५८
१९१९–२०	१,७४,५२	१,५३,७८
१९२०–२१	१,६६,१६	१,४७,८८
१९२१–२२	१,७४,७६	१,५७,२३
१९२२–२३	१,७४,७०	१,६१,१०
१९२३–२४	१,८५,८५	१,६९,०६
१९२४–२५	१,८४,१९	१,६६,५५
१९२५–२६	१,९३,३४	१,६७,७१
१९२६–२७	१,८४,१३	१,६४,३१
१९२७–२८	१,८४,८७	१,७४,५३
१९२८–२९	१,८८,०३	१,७८,१०
१९२९–३०	१,७७,२३	१,५९,३०
१९३०–३१	१,६०,८४	१,४७,९३
१९३१–३२	१,७८,१४	१,६५,१७
१९३२–३३	१,७६,९०	१,५०,३४
१९३३–३४	१,७७,२२	१,६३,८८
१९३४–३५	१,८६,१०	१,६३ ५६
१९३५–३६	१,९५,५८	१,६८,८२
१९३६–३७	२,०४,००	१,९४,३०

१९३७–३८	भारतवर्ष	२०६,२०	१७८,२०
	बर्मा	७,८३	७,८३
१९३८–३९	भारतवर्ष	१९६,४७	१७८,३६
	बर्मा	१०,७६	१०,७४
१९३९–४०	भारतवर्ष	२३८,४३	२२५,१०
	बर्मा	१३,७८	१३,४५
१९४०–४१	भारतवर्ष	२५१,८१	२४०,५५
	बर्मा	१७,४४	१७,११
१९४१–४२	भारतवर्ष	३९२,७१	३८१,७३
	बर्मा	२८,३५	२८,३३
१९४२–४३	भारतवर्ष	६५५,११	६४३,५८

५

टकसालों में कब कितने (पूरे) रुपए ढले

		रुपए
चतुर्थ विलियम	१८३५	१६,३९,७८,५७२
विक्टोरिया,	१८४०, पहली बार	३१,१६,७०,९२४
"	१८४०, दूसरी बार	७६,६५,६०,९३७
"	१८६२	७०,६९,१२,१७९
"	१८७४	४,३५,२२,४००
"	१८७५	३,०९,९१,५४८
"	१८७६	४,०९,५०,३०१
"	१८७७	१३,४८,०६,०१२
"	१८७८	९,६५,८५,०३३
"	१८७९	८,८७,२८,२२९
"	१८८०	७,२१,८५,५१८
"	१८८१	५५,९७,५७७

"	१८८२		७,१४,८७,५६७
"	१८८३		२,३१,४६,१६१
"	१८८४		४,८४,८८,३२७
"	१८८५		९,९०,३०,२०३
"	१८८६		५,२०,२४,५३२
"	१८८७		८,८६,००,१४८
"	१८८८		७,०७,६८,०००
"	१८८९		७,४६,६८,३१०
"	१८९०		११,७६,४१,८६५
"	१८९१		६,४१,६९ ९०३
"	१८९२		१०,४६,५५,१२०
"	१८९३		७,८७,३०,३१०
"	१८९७		१५,२४,७७७
"	१८९८		७५,१९,४१३
"	१९००		११,८१,३९,४९९
"	१९०१		१०,९१,३५,९६१
"	१९०१	(१९०२ मे ढले)	९,३१,३९,३८४
सप्तम एडवर्ड	१९०३		२५,०००
"	१९०३		१०,२३,४७,५०६
"	१९०४		१६,०२,७८,९०८
"	१९०५		१२,७४,६०,१०६
"	१९०६		२६,३७,५०,४३३
"	१९०७		२५,२२,४९,८१६
"	१९०८		३,०९,३२,४९८
"	१९०९		२,२२,९७,३२६
"	१९१०		१,७६,८८,६७३
"	१९१०	(१९११ मे ढले)	५८,२३,२८६
पचम जॉर्ज	१९११		९४,४३,०४९

,,	१९१२		१२,४१,८९,२०६
,,	१९१३		१६,३२,६५,९५१
,,	१९१४		४,८३,७०,१५०
,,	१९१५		१,५२,७२,११८
,,	१९१६		२१,२९,००,२१०
,,	१९१७		२६,४७,८२,८७६
,,	१९१७	(१९१८ मे ढले)	१७,७४,०२५
,,	१९१८		४१,१८,७६,६०३
,,	१९१८	(१९१९ मे ढले)	४०,९४,००६
,,	१९१९		४२.३५,१२,२७८
,,	१९१९	(१९२० मे ढले)	१,४४,००,०३१
,,	१९२०		९,४५,३६,६२९
,,	१९२०	(१९२१ मे ढले)	६४,००,०६४
,,	१९२०	(१९२२ मे ढले)	५,६४,०००
,,	१९२०	(१९२३ मे ढले)	४९,३६,०५०
,,	१९२१		५१,१५,१२१
,,	१९२२		२०,५१,१५०
षष्ठ जॉर्ज	१९३८	(१९४० मे ढले)	९८,०२,१७८
,,	१९४०		२,३५,००,००२
,,	१९४१		२४,११,००.००१
,,	१९४२		२३,७१,००,००१
		जोड	६९८,७५,९७,९६१

१९२२ और १९४० के बीच नए रुपयो की ढलाई नही हुई।

ढलाई के जो आकडे ऊपर दिए गए है उनमे ऐसे सिक्के भी शामिल है जो समय-समय पर देशी रियासतो के लिए ढाले गए है।

६

चलन की घटा-बढ़ी

हर साल के अन्त मे यह हिसाब किया जाता है कि कितने नोट या रुपए चलन मे गए (Absorption of currency) और कितने चलन से निकल आए (Return of currency)। चलन से यहा मतलब सार्वजनिक चलन से है। रिजर्व बैंक की स्थापना से पहले इसे निश्चित करने का यह तरीका था —

(१) नोटो के सम्बन्ध मे यह देखा जाता था कि कितने नोट जारी किए जा चुके थे और साल के अन्त मे कितने सरकारी खजाने (Treasuries) और इम्पीरियल बैंक की प्रधान शाखाओ मे रह गए थे। जो बाकी बचता वह (सार्वजनिक) चलन मे समझा जाता।

उदाहरण—१९२८-२९ के आरम्भ मे (सार्वजनिक) चलन मे १,७४,५३ लाख रुपए के नोट थे। उसके अन्त मे चलन मे थे १,७८,१० लाख रुपए के नोट। तो इसके माने यह हुए कि उस साल और ३,५७ लाख रुपए के नोट चलन मे गए।

१९३४-३५ के आरम्भ मे (सार्वजनिक) चलन मे १,६३,८८ लाख के नोट थे। उसके अन्त मे चलन मे १,६३,५६ लाख के नोट थे। तो इसके माने यह हुए कि उस साल चलन से ३२ लाख के नोट वापस आ गए।

नोट ज्यादा जारी किए गए—उनका प्रसार बढा—लेकिन नए नोट सरकार के अपने खजाने मे ही पडे रहे तो (सार्वजनिक) चलन मे कोई वृद्धि नही हुई। इसी प्रकार अगर चलन से नोट वापस आए और करेन्सी रिजर्व मे न जाकर सरकारी खजाने मे पडे रहे तो नोट जितने जारी किए जा चुके थे उतने ही खडे रहे—उनके प्रसार मे किसी प्रकार की कमी नही हुई।

(२) रुपयो के सम्बन्ध मे यह देखा जाता था कि कितना सरकारी खजाने (Treasuries) और करेन्सी रिजर्व मे बच रहा, कितना टकसाल

से ढल कर आया और कितना गलाने या फिर से ढालने के लिए टकसाल भेजा गया। इस जोड़-बाकी हिसाब से यह पता चल जाता कि चलन मे कितना गया या चलन मे कितना वापस आया। (इम्पीरियल बैंक की प्रधान शाखाओं मे जो रुपया रहता वह इस हिसाब मे नही लिया जाता था, क्योंकि उसका परिमाण बहुत कम होता था।)

उदाहरण—१९३२-३३ के आरम्भ मे रोकड़ इस प्रकार थी:—

सरकारी खजाने मे	१,०० लाख रुपए
करेन्सी रिजर्व मे	१,०१,९६ ,, ,,
जोड़	१,०२,९६ ,, ,,

साल के अन्त मे रोकड़ इस प्रकार थी —

सरकारी खजाने मे	९३ लाख रुपए
करेन्सी रिजर्व म	९६,३४ ,, ,,
जोड़	९७,२७ ,, ,,

अर्थात् ५,६९ लाख रुपए (सार्वजनिक) चलन मे गए। पर उसी साल १३,२५ लाख रुपए टकसाल मे गलाने या फिर से ढालने के लिए भेजे गए। तो निष्कर्ष यह निकला कि उस साल (१३,२५—५,६९) अर्थात ७,५६ लाख रुपए चलन से निकल आए।

रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद से यह हिसाब इस प्रकार होने लगा है —

अब सरकारी खजाने (Treasuries) के नोट सार्वजनिक चलन के अन्तर्गत माने जाते है। कितने नोट चलन मे गए या कितने वापस आए, यह पता लगाने के लिए सिर्फ रिजर्व बैंक के प्रसार-विभाग (Issue Department) के नोटों की घटा-बढ़ी पर ध्यान दिया जाता है। इसी प्रकार, कितने रुपए चलन मे गए या कितने वापस आए—इसका पता अब रिजर्व बैंक के प्रसार-विभाग की रोकड़ की घटा-बढ़ी से ही चलता है।

कब कितनी करेन्सी चलन मे गई और कब कितनी उसमे से वापस आ गई (—) उसका लेखा नीचे दिया जाता है —

	लाख रुपए		
	रुपए*	नोट	जोड़
१९१४-१५ से १९१८-१९ तक ५ वर्षों का औसत	२२,०८	१६,७२	३८,८०
१९१९–२०	२०,०९	२०,२०	४०,२९
१९२०–२१	२५,६८	–५,९०	–३१,५८
१९२१–२२	–१०,४६	९,३५	–१,११
१९२२–२३	–९,५६	३,८७	–५,६९
१९२३–२४	७,६२	७,९६	१५,५८
१९२४–२५	३,६५	–२,५१	१,१४
१९२५–२६	–८,१७	१,१६	–७,०१
१९२६–२७	–१९,७६	–३,४०	–२३,१६
१९२७–२८	–३,७५	१०,२२	६,४७
१९२८–२९	–३,०३	३,५७	५४
१९२९–३०	–२१,७१	–१८,८०	–४०,५१
१९३०–३१	–२१,५८	–११,३७	–३२,९५
१९३१–३२	३,९३	१७,२४	२१,१७
१९३२–३३	–७,५६	–१४,८३	–२२,३९
१९३३–३४	–३०	१३,५४	१३,२४
१९३४–३५	–३,२१	–३२	–३,५३
१९३५–३६	–९,४१	५,२६	–४,१५
१९३६–३७	–२,४९	२५,५३	२३,०४
१९३७–३८	–६,५२	–८,२३	–१४,७५
१९३८–३९	–१२,६०	२,९८	–९,६२
१९३९–४०	१०,०८	४९,४५	५९,५३

*इसमें रेजगारी शामिल नहीं है। पर इधर भारत-सरकार-द्वारा जारी किए गए एक रुपए के नोट शामिल हैं।

१९४०-४१	३३,२३	१९,११	
१९४१-४२	७,१८	१५२,४०	१
१९४२-४३	४४,९७	२६१,८५	३
(केवल भारतवर्ष)			
१९१९-२० से १९३८-३९ तक २० वर्षों का जोड—	१,३०,५५	५२,०८	—
१९१९-२० मे १९३८-३९ तक २० वर्षों का औमत —	६,५३	२,६०	